इकाई-1 सीखना या अधिगम

Learning:

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.2अधिगम का अर्थ एवं परिभाषा
1.4अधिगम के सिद्धान्त-परिचय
1.5 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

सीखना या अधिगम एक बहुत ही व्यापक एवं महत्वपूर्ण शब्द है। मानव के प्रत्येक क्षेत्र में सीखना जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक पाया जाता है। दैनिक जीवन में सीखने के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। सीखना मनुष्य की एक जन्मजात प्रकृति है।प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में नए अनुभवों को एकत्र करता रहता है, ये नवीन अनुभव, व्यक्ति के व्यवहार में वृद्धि तथा संशोधन करते हैं। इसलिए यह अनुभव तथा इनका उपयोग ही सीखना या अधिगम करना कहलाता है। इस इकाई में आप अधिगम के विभिन्न सिद्धांतों का अध्धयन करेंगे तथा उनके शैक्षिक निहितार्थों को जान पाएंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

1. अधिगम का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगें।
2. अधिगम की परिभाषा दे पाएंगे।
3. अधिगम की विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगें।
4. अधिगम के सिद्धांतों की चर्चा कर पाएंगे।

1.3 अधिगम का अर्थ एवं परिभाषा Meaning and Definition ofLearning

अधिगम या सीखना एक बहुत ही सामान्य और आम प्रचलित प्रक्रिया है । जन्म के तुरन्त बाद से ही व्यक्ति सीखना प्रारम्भ कर देता है और फिर जीवनपर्यन्त कुछ ना कुछ सीखता ही रहताहै।

सामान्य अर्थ में 'सीखना' व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है। (Learning refers to change in behaviour) परन्तु सभी तरह के व्यवहार में हुए परिवर्तन को सीखना या अधिगम नहीं कहा जा सकता ।

वुडवर्थ के अनुसार,"नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया, सीखने की प्रक्रिया है। "

"The process of acquiring new knowledge and new responses in the process of learning." -Woodworth

गेट्स एवं अन्य के अनुसार, "अनुभव और प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में परिवर्तन लाना ही अधिगम या सीखना है।"

"Learning is the modification of behavior through experience and training."

क्रो एवं क्रो के अनुसार , "सीखना या अधिगम आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है।"

"Learning is the acquisition of habits knowledge and attitudes."

क्रॉनवेक के अनुसार, "सीखना या अधिगम अनुभव के परिणाम स्वरूप व्यवहार में परिवर्तन द्वारा व्यक्त होता है।"

"Learning is shown by a change in behavior as a result of experience."

मॉर्गन और गिलीलैण्ड के अनुसार, "अधिगम या सीखना, अनुभव के परिणाम स्वरूप प्राणी के व्यवहार में कुछ परिमार्जन है, जो कम से कम कुछ समय के लिए प्राणी द्वारा धारण किया जाता है।"

"Learning is some modification in the behaviour of the organism as a result of experience which is retained for at least certain period of time."

जी.डी. बोआज के अनुसार, "सीखना या अधिगम एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न आदतें, ज्ञान एवं दृष्टिकोण अर्जित करता है जो कि सामान्य जीवन की माँगोंकोपूरा करने के लिए आवश्यक है।"

"Learning is the process by which the individual acquires various habits, knowledge and attitudes that are necessary to meet the demand of life in general."

हिलगार्ड के अनुसार,"सीखना या अधिगम एक प्रक्रम है जिससे प्रतिफल परिस्थिति से प्रतिक्रिया के द्वारा कोई क्रिया आरम्भ होती है या परिवर्तित होती है, बशर्ते कि क्रिया में परिवर्तन की विशेषताओं को जन्मजात प्रवृत्तियों,परिपक्वता और प्राणी की अस्थाई अवस्थाओं के आधार पर ना समझाया जा सकता हो।"

"Learning is the process by which an activity originates or is changed through reacting to an encountered situation, provided that the characteristics of the change in activity cannot be explained on the basis of native tendencies, maturation or temporary status of organism."

ब्लेयर,जोन्स और सिम्पसन के अनुसार,"व्यवहार में कोई परिवर्तन जो अनुभवों का परिणाम है और जिसके फलस्वरूप व्यक्ति आने वाली स्थितियों का भिन्न प्रकार से सामनाकरता है-अधिगम कहलाता है।"

"Any change of behaviour which is a result of experience and which causes people to face later situation differently may be called learning." – Blair, Jones and Simpson

सरटैन,नार्थ, स्ट्रेंज तथा चैपमैन के अनुसार के अनुसार:- " सीखना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अनुभूति या अभ्यास के फलस्वरूप व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थाई परिवर्तन होता है।"

Learning may be defined as the process by which a relatively enduring change in behavior occurs as experience or practice".

मार्गन, किंग, विस्ज तथा स्कॉपलर के अनुसार:- ''अभ्यास या अनुभूति के परिणामस्वरूप व्यवहार में होने वाले अपेक्षाकृत स्थाई परविर्तन को सीखना कहा जाता है।''

Learning can be defined as any relatively permanent change in behavior that occurs as a result of experience".

ऊपर की परिभाषाओं एवं अनेक अन्य मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई लगभग समान परिभाषाओं का यदि एक संयुक्त (analysis) विश्लेशण किया जाए , तो सीखने का स्वरूप बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। इस तरह के विश्लेषण करने पर हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :-

i. सीखना व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है (Learning is the change in behaviour):- प्रत्येक सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन होता है। अगर परिस्थिति ऐसी है जिसमें व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन नहीं होता है, तो उसे हम सीखना नहीं कहेंगें। व्यवहार में परिवर्तन एक अच्छा एवं अनुकूली (adaptive) परिवर्तन भी हो सकता है या खराब में कुसमंजित (Maladaptive) परिवर्तन भी हो सकता है।

ii. व्यवहार में परिवर्तन अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप होता है (The change in behaviour occurs as a function of practice or experience) :- सीखने की प्रक्रिया में व्यवहार में जो परिवर्तन होता है, वह अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप होता है।

iii. व्यवहार में अपेक्षाकृतस्थाईपरिवर्तन होता है (There is relatively permanent change in behaviour) :- ऊपर दी गई परिभाषाओं में इस बात पर विशेष रूप से बल डाला गया है कि सीखने में व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थाई परिवर्तन होता है।

1.4अधिगम के सिद्धान्त-परिचय

सीखने के आधुनिक सिद्धांतों को निम्नलिखित दो मुख्य श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-

a. व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धान्त (Behavioural Associationist Theories)
b. ज्ञानात्मक एवं क्षेत्र संगठनात्मक सिद्धान्त (Cognitive Organisational Theory)

विभिन्न उद्दीपनों के प्रति सीखने वाले की विशेष अनुक्रियाएँ होती हैं। इन उद्दीपनों तथा अनुक्रियाओं के साहचर्य से उसके व्यवहार में जो परिवर्तन आते हैं उनकी व्याख्या करना ही पहले प्रकार के सिद्धांतों का उद्देश्य है। इस प्रकार के सिद्धांतों के प्रमुख प्रवर्तकों में

थोर्नडाइक, वाटसन और पैवलोव तथा स्किनर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जहाँ थोर्नडाइक द्वारा प्रतिपादित विचार प्रणाली को संयोजनवाद (Connectionism) के नाम से जाना जाता है, वहाँ वाटसन और पैवलोव तथा स्किनर की प्रणाली को अनुबन्धन या प्रतिबद्धता (Conditioning) का नाम दिया गया है।

दूसरे प्रकार के सिद्धान्त सीखने को उस क्षेत्र में, जिसमें सीखने वाला और उसका परिवेश शामिल होता है, आए हुए परिवर्तनों तथा सीखने वाले द्वारा इस क्षेत्र के प्रत्यक्षीकरण किए जाने के रूप में देखते हैं। ये सिद्धान्तसीखने कीप्रक्रियामें उद्देश्य (Purpose), अन्तर्दृष्टि (Insight) और सूझबूझ (Understanding) के महत्व को प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार के सिद्धांतों के मुख्य प्रवर्तकों में वर्देमीअर (Werthemier), कोहलर (Kohler), और लेविन (Lewin) के नाम उल्लेखनीय है।

इससे अगली इकाई में आप व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धांतों का अध्ययन करेंगे।

1.5 निबंधात्मक प्रश्न

1. अधिगम की परिभाषा बताईये?

2. अधिगम के सिद्धांतों से आप क्या समझते हैं?

इकाई 2 - अधिगम सिद्धांत (Learning Theories)

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 अधिगम के व्यवहारवादी सिद्धान्त
2.3.1 थॉर्नडाइक का प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त
2.3.2 स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबन्धन का सिद्धान्त
2.4 अधिगम का संज्ञानात्मकवाद सिद्धांत
2.4.1 ज्याँ पियाजे
2.5 अधिगम के सामाजिक रचनावादी सिद्धांत
2.5.1 वाइगोत्स्की
2.5.2 बॅण्डुरा
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

सीखना या अधिगम एक बहुत ही व्यापक एवं महत्वपूर्ण शब्द है। सीखना मनुष्य की एक जन्मजात प्रकृति है। नए ज्ञान को अर्जित करना तथा विभिन्न प्रकार के एकत्रित ज्ञान, व्यवहार , कौशलों ,मूल्यों तथा जानकारियों को संश्लेषित करना अधिगम या सीखना कहलाता है। अधिगम केवल ज्ञान का एक संग्रह न होकर एक प्रक्रिया है।मानव के प्रत्येक क्षेत्र में सीखना जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त ा तक पाया जाता है। दैनिक जीवन में सीखने के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। सीखना एक साथ नहीं होता न ही एकाएक होता है यह तो पूर्व ज्ञान की सहायता से निर्मित व विकसित होता है । प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में नए अनुभवों को एकत्र करता रहता है, ये नवीन अनुभव, व्यक्ति के व्यवहार में वृद्धि तथा संशोधन करते हैं। इसलिए यह अनुभव तथा इनका उपयोग ही सीखना या अधिगम करना कहलाता है। इस

इकाई में आप अधिगम के विभिन्न सिद्धांतों का अध्धयन करेंगे तथा उनके शैक्षिक निहितार्थों को जान पाएंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

1. थॉर्नडाइक के सीखने के सिद्धान्त का वर्णन कर पाएंगे।
2. स्किनर के क्रिया अनुबंधन के सिद्धान्त का वर्णन कर पाएंगे।
3. ज्याँ पियाजे के अधिगम के संज्ञानात्मकवाद सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे।
4. वाइगोत्स्की के अधिगम के सामाजिक रचनावादी सिद्धांत को स्पष्ट कर सकेंगे ।
5. बॅण्डुरा के अधिगम के सामाजिक रचनावादी सिद्धांत का वर्णन कर सकेंगे।
6. अधिगम के विभिन्न सिद्धांतों के शैक्षिक निहितार्थ लिख पाएंगे।
7. अधिगम के विभिन्न सिद्धांतों के मध्य अंतर स्पष्ट कर पाएंगे।

अधिगम के सिद्धान्त

सीखने के आधुनिक सिद्धांतों को निम्नलिखित तीन मुख्य श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-

a. व्यवहारवादी सिद्धान्त (Behaviorism)
    i. थॉर्नडाइक
    ii. स्किनर
b. संज्ञानात्मक सिद्धान्त (Cognitivism)
    i. ज्याँ पियाजे
c. सामाजिक संरचनावाद सिद्धांत (Social Constructivism)
    i. लेव वाइगोत्स्की
    ii. बॅण्डुरा

इस इकाई में आप अधिगम के विभिन्न सिद्धांतों का अध्ययन करेंगे।

2.3 अधिगम के व्यवहारवादी सिद्धान्त

2.3.1 थॉर्नडाइक का अधिगम का प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त

थॉर्नडाइक(Thorndike) को प्रयोगात्मक पशु मनोविज्ञान (experimental psychology) के क्षेत्र में एक प्रमुख मनोवैज्ञानिक माना गया है। उन्होंने सीखने के एक सिद्धान्त का प्रतिपादन (1898) में किया।

थॉर्नडाइक ने सीखने की व्याख्या करते हुए कहा है कि जब कोई उद्दीपक (stimulus) व्यक्ति के सामने दिया जाता है तो उसके प्रति वह अनुक्रिया (response) करता है। अनुक्रिया सही होने से उसका संबंध (connection) उसी विशेष उद्दीपक (stimulus) के साथ हो जाता है। इस संबंध को सीखना (learning) कहा जाता है तथा इस तरह की विचारधारा को संबंधवाद (Connectionism) की संज्ञा दी गई है। थॉर्नडाइक के अधिगम के सिद्धांत को प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धांत (Theory of Trial and Error) तथा सबन्धवाद के नाम से जाना जाता है। थॉर्नडाइक ने अपने सिद्धांत को प्रतिपादित करने के लिए एक प्रयोग किया ।

इस प्रयोग में एक भूखीबिल्ली को एक बॉक्स में बंद कर के रखा गया। इस बॉक्स के अन्दर एक चिटकिनी लगी थी, जिसको दबाने से दरवाजा खुल जाता था। दरवाजे के बाहर भोजन रख गया। चूँकि बिल्ली भूखी थी, अत: उसने दरवाजा खोलकर भोजन खाने की पूरी कोशिश करनी शुरू कर दी। प्रारंभ के प्रयासों (trials) में जब बिल्ली को बॉक्स के अन्दर रखा गया, तो बहुत सारे अनियमित व्यवहार जैसे उछलना, कूदना, आदि होते पाए गए। इसी उछल-कूद में अचानक उसका पंजा चिटकिनी पर पड़ गया जिसके दबने से दरवाजा खुल गया और बिल्ली ने बाहर निकलकर भोजन खा लिया। बाद के प्रयासों (trials) में बिल्ली द्वारा किए जाने वाले अनियमित व्यवहार अपने आप कम होते गए तथा बॉक्स में रखने के तुरन्त बाद बिल्ली सही अनुक्रियाकरते पाई गई।

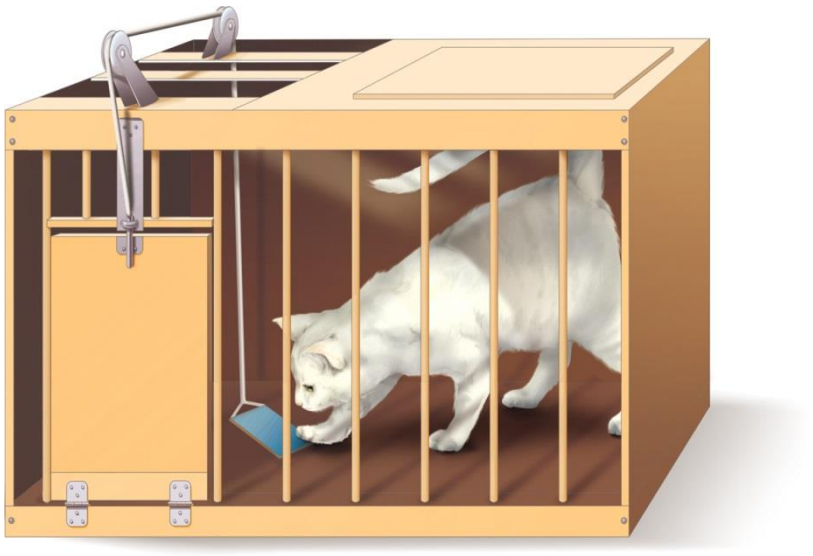

थॉर्नडाइक ने सीखने के सिद्धान्त में तीन महत्वपूर्ण नियमों का वर्णन किया है जो निम्नांकित है:-

- **(i) अभ्यास का नियम (Law of exercise)**
- **(ii) तत्परता का नियम (Law of readiness)**
- **(iii) प्रभाव का नियम (Law of effect)**

इन सभी का वर्णन निम्नांकित है:-

1. **अभ्यास का नियम (Law of exercise) :-**

   यह नियम इस तथ्य पर आधारित है कि अभ्यास से व्यक्ति में पूर्णता आती है (Practice makes man perfect) । हिलगार्ड तथा बॉअर (Hilgard& Bower, 1975) ने इस नियम को परिभाषित करते हुए कहा है "अभ्यास नियम यह बतलाता है कि अभ्यास करने से (उद्दीपक तथा अनुक्रिया का) संबंध मजबूत होता है (उपयोग नियम) तथा अभ्यास रोक देने से संबंध कमजोर पड़ जाता है या विस्मरण हो जाता है (अनुपयोग नियम)" इस व्याख्या से बिलकुल ही यह स्पष्ट है कि जब हम किसी पाठ या विषय को बार-बार दुहराते है तो उसे सीख जाते हैं। इसे थॉर्नडाइक ने उपयोग का नियम (law of use) कहा है। दूसरी तरफ जब हम किसी पाठ या विषय को दोहराना बंद कर देते हैं तो उसे भूल जाते हैं। इसे इन्होंने अनुपयोग का नियम (law of disuse) कहा है।

2. तत्परता का नियम (Law of Readiness) :- इस नियम को थॉर्नडाइक ने एक गौण नियम माना है और कहा है कि इस नियम द्वारा हमें सिर्फ यह पता चलता है कि सीखने वाले व्यक्ति किन-किन परिस्थितियों में संतुष्ट होते हैं या उसमें खीझ उत्पन्न होती है। उन्होंने इस तरह की निम्नांकित तीन परिस्थितियों का वर्णन किया है-
   i. जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए तत्पर रहता है और उसे वह कार्य करने दिया जाता है, तो इससे उसमें संतोष होता है।
   ii. जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए तत्पर रहता है परन्तु उसे वह कार्य नहीं करने दिया जाता है, तो इससे उसमें खीझ (annoyance) होती है।
   iii. जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए तत्पर नहीं रहता है परन्तु उसे वह कार्य करने के लिए बाध्य किया जाता है, तो इससे भी व्यक्ति में खीझ (annoyance) होती है।

   ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि संतोष या खीझ होना व्यक्ति के तत्परता (readiness) की अवस्था पर निर्भर करता है।
3. प्रभाव का नियम (Law of Effect):- थॉर्नडाइक के सिद्धान्त का यह सबसे महत्वपूर्ण नियम है। इस नियम के अनुसार व्यक्ति किसी अनुक्रिया या कार्य को उसके प्रभाव के आधार पर सीखता है। किसी कार्य या अनुक्रिया का प्रभाव व्यक्ति में या तो संतोषजनक (satisfying) होता है या खीझ उत्पन्न करने वाला (annoying) होता है।प्रभाव संतोषजनक होने पर व्यक्ति उस अनुक्रिया को सीख लेता है तथा खीझ उत्पन्न करने वाला होने पर व्यक्ति उसी अनुक्रिया को दोहराना नहीं चाहता है। फलत: उसे वह भूल जाता है।

   इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि प्रभाव नियम के अनुसार व्यक्ति किसी अनुक्रिया को इसलिए सीख लेता है क्योंकि व्यक्ति में उस अनुक्रिया को करने के बाद संतोषजनक प्रभाव (satisfying effect) होता है।

   इन प्रमुख नियमों के अलावा भी थॉर्नडाइक ने सहायक नियमों (subordinate laws) का भी प्रतिपादन किया परन्तु ये सभी नियम बहुत महत्वपूर्ण नहीं हो पाए क्योंकि वे स्पष्ट रूप से प्रमुख नियमों से ही संबंधित थे। संक्षेप में इन सहायक नियमों का वर्णन इस प्रकार है:-
   i. बहुक्रिया (Multiple Response)- इस नियम के अनुसार किसी भी सीखने की परिस्थिति में प्राणी अनेक अनुक्रिया (response) करता है जिसमें से प्राणी उन अनुक्रिया को सीख लेता है जिससे उसे सफलता मिलती है।

ii. तत्परता या मनोवृत्ति (Set or Attitude)- तत्परता या मनोवृत्ति से इस बात का निर्धारण होता है कि प्राणी किस अनुक्रिया को करेगा, किस अनुक्रिया को करने से कम संतुष्टि तथा किस अनुक्रिया को करने से अधिक संतुष्टि आदि मिलेगी।

iii. सादृश्य अनुक्रिया (Response by Similarity or Analogy)- इस नियम के अनुसार प्राणी किसी नई परिस्थिति में वैसी ही अनुक्रिया को करता है जो उसके गत अनुभव या पहले सीखी गई अनुक्रिया के सदृश होता है।

iv. साहचर्यात्मक स्थानान्तरण (Associative Shifting):- इन नियम के अनुसार कोई अनुक्रिया जिसके करने की क्षमता व्यक्ति में है, एक नए उद्दीपक (stimulus) से भी उत्पन्न हो सकती है। यदि एक ही अनुक्रिया को लगातार एक ही परिस्थिति में कुछ परिवर्तन के बीच उत्पन्न किया जाता है तो अन्त में वही अनुक्रिया एक बिल्कुल ही नए उद्दीपक से भी उत्पन्न हो जाती है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. थॉर्नडाइक के सीखने के सिद्धांत को _____ के नाम से जाना जाता है।
2. थॉर्नडाइक ने सीखने के तीन महत्वपूर्ण नियमों के नाम लिखिए।
3. जब हम किसी पाठ या विषय को बार-बार दुहराते है तो उसे सीख जाते हैं, इसे थॉर्नडाइक ने _____ कहा है।
4. जब हम किसी पाठ या विषय को दोहराना बंद कर देते हैं तो उसे भूल जाते हैं, इसे थॉर्नडाइक ने _____ कहा है।

2.3.2 स्किनर का क्रियाप्रसूत अनुबन्धन का सिद्धान्त (Operant ConditioningTheory of Skinner)

स्किनर (1938) द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तसक्रिय अनुबन्धन या क्रिया प्रसूत अनुबन्धन कहा जाता है। सक्रिय अनुबंधन की अवधारणा यह है कि प्राणी को वांछित उद्दीपक या परिणाम प्राप्त करने या कष्टदायक उद्दीपक से बचने के लिए प्रत्याशित, उचित या सही अनुक्रिया (व्यवहार) पहले स्वयं प्रदर्शित करनी होती है। अर्थात उद्दीपक या परिस्थिति के निमित्त प्राणी द्वारा किया जाने वाला व्यवहार ही परिणाम का स्वरूप निर्धारित करता है। इसी कारण इसेसक्रिय अनुबंधन कहते हैं (Hulse et. al. 1975)। इसी आधार पर इसे क्रियाप्रसूत अधिगम (Operant learning) भी कहा जाता है (Hilgard and Bower, 1981)।

स्किनर का प्रयोग

स्किनर ने चूहों पर प्रयोग किया। प्रयोग करने के लिए उन्होंने एक विशेष बक्से के आकार का एक यंत्र बनाया जिसे उन्होंनेक्रियाप्रसूत अनुबन्धन कक्ष की संज्ञा दी, लेकिन बाद में इसको स्किनर बाक्स (Skinner Box) कहा गया।

स्किनर के लीवरबाक्स में लीवर को दबाने पर प्रकाश या किसी विशेष आवाज होने के साथ-साथ भोजन-तश्तरी में थोड़ा-सा भोजन आ जाता है। प्रयोग के अवलोकनों को लिपिबद्ध करने के लिए लीवरका सम्बन्ध एक ऐसी लेखन व्यवस्था (Recoding System) में रहता है जो प्रयोगकेबीच में समय के साथ-साथ लीवर दबाने की आवृत्ति की संचयी ग्राफ (Cumulative Graph) के रूप में अंकित करती रहती है।

प्रयोग हेतु स्किनर ने एक भूखे चूहे को स्किनर बाक्स में बंद कर दिया। प्रारम्भ में चूहाबाक्स में इधर-उधर घूमता रहा तथा उछल-कूद करता रहा। इसी बीच में लीवर दब गया, घण्टी की आवाज हूई और खाना तश्तरी में आ गया। चूहा तुरन्त भोजन को नहीं देख पाता है लेकिन बाद में देखकर खा लेताहै। इसी तरह कई प्रयासों के उपरान्त वह लीवर दबाकर भोजन गिराना सीख जाता है। इस प्रयोग में चूहा लीवर दबाने के लिए स्वतन्त्र होता है वह जितनी बार लीवर दबाएगा घण्टी की आवज होगी और भोजन तश्तरी में गिर जाएगा। स्किनर ने भोजन प्राप्त करने के बाद से समय अन्तराल में लीवर दबाने के चूहे के व्यवहार का विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाला कि भोजन रूपी पुनर्वलन (Reinforcement) चूहे को लीवर दबाने के लिए प्रेरित करता है एवं पुनर्बलन के फलस्वरूप चूहा लीवर दबाकर भोजन प्राप्त करना सीख जाता है। अर्थात क्रिया प्रसूत (Operant Response) के बाद पुनर्बलित उद्दीपक (Reinforcement Stimulus) दिया जाता है तो प्राणी उसे बार-बार दोहराता है और इस प्रकार से मिले पुनर्बलन से सीखने में स्थायित्व आ जाता है।

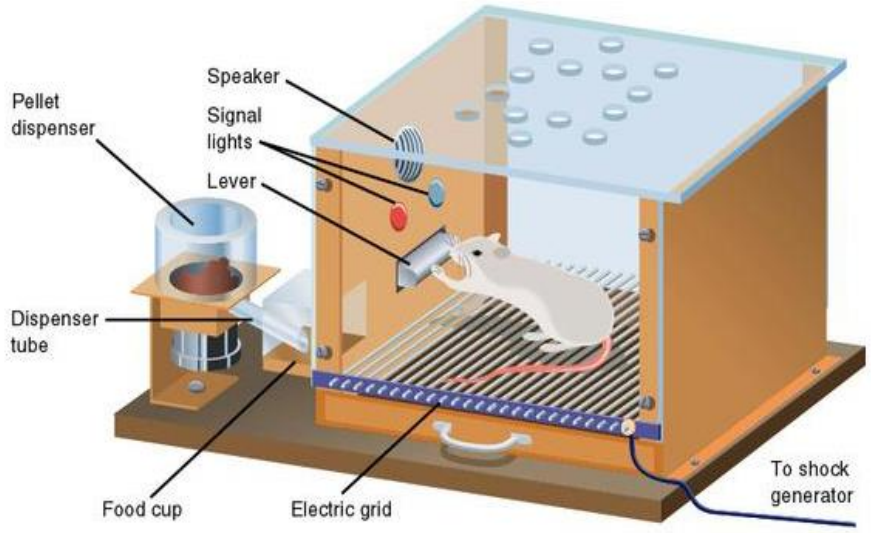

सक्रिय अनुबंधन में पुनर्बलन (Reinforcement in Operant Conditioning)

नैमित्तिक अनुबंधन, सक्रिय अनुबंधन या संक्रियात्मक अनुबंधन में पुनर्बलन की विशेष भूमिका होती है। जैसे-उचित या सही व्यवहार (अनुक्रिया)किएजाने पर धनात्मक पुनर्बलन (Positive Reinforcement) की आपूर्ति की जाती है या अनुचित व्यवहार किए जाने पर नकारात्मक पुनर्बलन(दण्ड) का उपयोग किया जाता है ताकि उसकी पुनरावृत्ति न हो सके। प्रबलनों को चार वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. **धनात्मक पुनर्बलन (Positive Reinforcement) - कोई भी सुखद वस्तु या उद्दीपक जो उचित व्यवहार होने पर प्रयोज्य को प्राप्त होता है। जैसे-अच्छे अंक प्राप्त करना। यह सम्बन्धित व्यवहार के प्रदर्शन की संभावना में वृद्धि करता है।**
2. **नकारात्मक पुनर्बलन (Negative Reinforcement) - किसी उचित व्यवहार के प्रदर्शित होने पर कष्टप्रद वस्तु की आपूर्ति रोक देना। इससे उचित व्यवहार के घटित होने की संभावना बढ़ती है। जैसे-शरारत कर रहे किसी बच्चे को तब जाने देना जब वह नोक-झोंक बन्द कर दे।**
3. **धनात्मक दण्ड (Positive Punishment) - किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर किसी कष्टप्रद वस्तु या उद्दीपक को प्रस्तुत करना। जैसे-परीक्षा में कम अंक प्राप्त करने पर छात्रा की प्रशंसा न करना या निन्दा करना। इससे अनुचित व्यवहार की पुनरावृत्ति की संभावना घटती है।**
4. **नकारात्मक दण्ड (Negative Punishment) - किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर सुखद वस्तु की आपूर्ति रोक देना। इससे अनुचित व्यवहार की संभावना घटती है। जैसे-उदण्ड व्यवहार कर रहे बालक को टीवी देखने से रोक देना।**

पुनर्बलन अनुसूची (Schedule of Reinforcement)

पुनर्बलन की आपूर्ति कई रूपों में की जा सकती है।

1. **स्थिर अनुपात सूची (Fixed Ratio Schedule) - निश्चित संख्या में अनुक्रिया करने पर पुरस्कार देना।**
2. **परिवर्तनीय अनुपात अनुसूची (Variable Ratio Schedule) - भिन्न-भिन्न संख्या में अनुक्रियाएँ करने पर पुरस्कार देना।**

3. स्थिर अन्तराल अनुसूची (Fixed Interval Schedule) - एक निश्चित अन्तराल पर पुरस्कार की आपूर्ति करना।
4. परिवर्तनीय अन्तराल अनुसूची (Variable Interval Schedule) - भिन्न-भिन्न अन्तरालों पर पुनर्बलन या पुरस्कार की आपूर्ति करना।प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधन की प्रक्रियाओं में कुछ विशेष प्रकार की घटनाएँ प्राप्त होती हैं। इन्हें अनुबंधन के गोचर कहा जाता हैं।

क्रिया प्रसूत अनुबन्ध के शैक्षिक निहितार्थ
Educational Implications of Operant Conditioning

क्रिया प्रसूत अधिगम का शिक्षा में कई प्रकार से प्रयोग होता है।

1. इस अधिगम में अभ्यास द्वारा क्रिया पर विशेष बल दिया जाता है। यह आवश्यक है कि शिक्षक बालक को उचित कार्य के लिए समय-समय पर पुनर्बलन देते रहें।
2. इस सिद्धान्त के माध्यम से शिक्षक बालक के सीखे जाने वाले व्यवहार को स्वरूप प्रदान करता है।
3. बालकों में शब्द भण्डार को बढ़ाने के लिए क्रियाप्रसूत अधिगम सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता है।
4. काम की समाप्ति पर या सफलता मिलने पर प्रसन्नता होती है जिससे संतोष प्राप्त होता है और जो क्रिया को बल देता है।
5. क्रिया प्रसूत सिद्धान्त मन्द बुद्धि वाले तथा मानसिक रोगियों को आवश्यक व्यवहार के सीखने में सहायता देता है।
6. क्रिया प्रसूत अधिगम में सीखी जाने वाली क्रिया को कई छोटे-छोटे सोपानों में बाँट लिया जाता है। शिक्षा में इस विधि का प्रयोग करके सीखने की गति तथा सफलता में वृद्धि की जा सकती है।
7. सीखने के अन्तर्गत अभिक्रमित सम्बन्धी विधि प्रकाश में आई है जिसको कि क्रिया प्रसूत अनुबन्ध द्वारा गति दी जा सकती है।
8. स्किनर के अनुसार यदि व्यक्ति को कार्य के परिणामों की जानकारी होती है तो उसके सीखने में इसका काफी प्रभाव पड़ता है उसका व्यवहार प्रभावित होता है। घर के कार्य में संशाधन का भी छात्र के सीखने की गति तथा गुण पर प्रभाव पड़ता है।
9. स्किनर का यह सिद्धांत अभिप्रेरणा पर बल देता है। अत: शिक्षक का कार्य हे कि वह बालकों को, विषय-वस्तु के उद्देश्य को स्पष्ट करके, उद्देश्य पूर्ति के लिए प्रोत्साहित करता रहे। बालक सदैव क्रियाशील रहें इसके लिए उन्हें प्रेरणा प्रदान करनी चाहिए।

10. शिक्षक को बालक को सिखाने के लिए अभ्यास एवं पुनरावृत्ति जैसी विधियों पर विशेष बल देना चाहिए।

आलोचनाएँ

1. मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि पशुओं पर किए गए प्रयोगों के आधार पर उसकी समानता सामाजिक अधिगम परिस्थितियों से कैसे की जा सकती है।
2. क्रिया-प्रसूत (Operant) और उत्तेजक या उद्दीपन प्रसूत (Respondent) में भ्रम रहता है जिससे क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन और उद्दीपन प्रसूत अनुबन्धन में साफ अन्तर नहीं किया जा सकता है।
3. स्किनर क्रिया-कलाप और अधिगम (Performance and Learning) में कोई अन्तर नहीं करते हैं जबकि कई मनोवैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पुनर्बलीकरण सीखने की अपेक्षा अक्ष्यत: क्रिया-कलाप को प्रभावित करता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5. क्रिया प्रसूत अनुबंधन में _____की विशेष भूमिका होती है।
6. कोई भी सुखद वस्तु या उद्दीपक जो उचित व्यवहार होने पर प्राप्त होता है_____कहलाता है।
7. किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर सुखद वस्तु की आपूर्ति रोक देना _____ कहलाता है।

2.4 अधिगम कासंज्ञानात्मकवाद सिद्धांत

2.4.1 पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत

ज्याँ पियाजे (Jean Piaget 1896-1980) संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र में कार्य करने वाले मनोविज्ञानिकों में सर्वाधिक प्रभावशाली माने जाते हैं। पियाजे का जन्म, 9 अगस्त1896 को स्विट्जरलैंड में हुआ था। उन्होंने जन्तु-विज्ञान में पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की।विकासात्मक मनोविज्ञान के अनेक सिद्धांतों में से एक बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्धान्त ज्याँ पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त है। संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन में ज्याँ पियाजे का अभूतपूर्व योगदान है। पियाजे ने अपने सिद्धान्त में शैशवावस्था से वयस्कावस्था के बीच चिन्तन-क्रिया में जो विकास होते हैं उनकी व्याख्या की है। इस सिद्धांत को ज्याँ

पियाजे द्वारा प्रतिपादित किया गया ओर इसमें यह परिकल्पना की गई कि मानव शिशु विकसित होने के क्रम में चार स्तरों से गुजरता है। सामान्यतया यह चार अवस्थाएं विशेष आयु वर्ग से सम्बंधित होती हैं। जिन चार अवस्थाओं को ज्याँ पियाजे द्वारा प्रतिपादित किया गया है, इनका विवरण निम्नवत प्रस्तुत है –

1. इन्द्रीय जनित गामक अवस्था (Sensory Motor Stage)- संज्ञानात्मकविकास की यह अवस्था जन्म से लेकर 02 वर्ष की आयु तक चलती है। इस अवस्था में शिशु की मानसिक क्रियाएँ उसकी इन्द्रियों से जुड़ी हुई गामक क्रियाओं के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। बोलचाल की भाषा को उपयोग न कर सकने के कारण शिशु इस उस वस्तु को दिखाकर अपने को व्यक्त करने का प्रयास करते हैं। शिशु अपनी समझ को व्यक्त करने के लिए विभिन्न गामक क्रियाओं का उपयोग करते हैं। यही कारण है कि इस अवस्था में जो वस्तु उसके सामने होती है उसी का उसके लिए अस्तित्व होता है ।आँखों से ओझल होते ही वस्तु क अस्तित्व भी नहीं रहता है ।यही कारण है कि इस अवस्था में शिशु 'खिलौने को बन्दर ले गया' जैसी बातों को मानने लगता है। इसी प्रकार किसी वस्तु को किसी चीज से ढ़क कर छुपाने पर वह शिशु उसको बाद में ढूढ़ने का प्रयास भी करता है।
2. पूर्व- संक्रियात्मक अवस्था (Pre-Operational Stage 02-07 Years)- संज्ञानात्मक विकास की पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था लगभग दो साल से प्रारंभ होकर सात साल तक चलती है। इस अवधि में शब्दों , वाक्यों क उपयोग कर शिशु/ बच्चा अपनी बात कहना शुरू कर देता है संज्ञानात्मक विकास की पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था लगभग दो साल से प्रारंभ होकर सात साल तक होती है। इस प्रकार अभिव्यक्ति का माध्यम गामक क्रियाओं के स्थान पर भाषा बनाने लगती है। इस अवस्था में मानसिक विकास की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं –
    i. इस अवस्था में संप्रत्यय निर्माण (Concept Formation) की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। बच्चे अपने वातावरण में विद्यमान वस्तुओं के नाम ओर उनमें अंतर समझना प्रारम्भ कर देते हैं। उदाहरण – चार पैरों वाली प्राणियों के दो वर्गों जैसे 'कुत्ता और गाय ' में अंतर कर सकना प्रारम्भ हो जाता है।
    ii. निर्जीव व सजीव वस्तुओं में अंतर कर सकना प्रारम्भ हो जाता है। प्रारम्भ में बच्चे खिलौनों को भी सजीव समझते हैं बाद में वे सब समझ जातें हैं कि निर्जीव वस्तुओं को सर्दी व गर्मी नहीं लगती है। इसी प्रकार उनकी समझ में आ जाता है कि गुड़िया या खिलौनों को भूख नहीं लगती है और वे दूध नहीं पीते हैं ।इसको प्याजे ने जीववाद कहा है।में बालक निर्जीव वस्तुओं को भी सजीव समझने लगता है उनके अनुसार जो भी वस्तुएँ हिलती हैं या घूमती हैं

वे वस्तुएँ सजीव हैं। जैसे सूरज, बादल, पंखा ये सभी अपना स्थान परिवर्तन करते हैं, व पंखा घूमता है, इसलिए ये सभी सजीव हैं।

iii. इस अवस्था में बच्चे अत्यधिक आत्मकेंद्रित (Egocentrism) होते हैं । उनको लगता है कि आस-पास की सभी चीजें केवल उन्हीं के लिए हैं ।अपने माता-पिता को वो केवल अपना ही मानते हैं तथा उन पर दूसरों का अधिकार नहीं समझते हैं ।बाद में धीरे- धीरे आत्मकेंद्रित रहने की स्थिति से वे सामाजिकता की ओर बढ़ना प्रारम्भ कर देते हैं। साथ ही दूसरों के साथ चीजों को लेना देना प्रारम्भ हो जाता है और वे दूसरों को भी अपना जैसा समझना शुरू कर देते हैं ।

iv. इस अवस्था में बच्चे कल्पनाशील होते हैं परन्तु इस कल्पना से कुछ नई चीज बनाने की क्षमता उनमें नहीं होती है । अपने द्वारा बनाए गए कागज़ के हवाई जहाज को वो वास्तविक हवाई जहाज समझते हैं । इस अवस्था में उन्हें परियों और जादू की कहानियाँ अच्छी लगाने लगती हैं । तर्क पर आधारित चिंतन करने की क्षमता उनमें नहीं होती है और वे केवल हवाई किले बनाते हैं ।

v. पियाजे के अनुसार इस उम्र के बच्चों में तार्किक चिन्तन की कमी रहती है, जिसे पियाजे ने संरक्षण का सिद्धान्त (Law of conservation)कहा है।
उदाहरण के लिए :-दो अलग-अलग आकार प्रकार के कांच के बर्तनों में समान मात्रा में रखे गए दूध को इस अवस्था के बच्चे समान या बराबर नहीं मान पाते हैं। कम चौड़ाई के लंबे बर्तन में रखे समान मात्रा के दूध को बच्चे अधिक चौड़ाई के छोटे बर्तन में रखे समान मात्रा के दूध के बराबर नहीं मान पाते हैं ।

समान मात्रा बटनों को ढेर बनाकर दिखाने तथा उन्हीं बटनों को फैलाकर दिखाने पर बच्चे फैले हुए बटनों को अधिक मानते हैं।

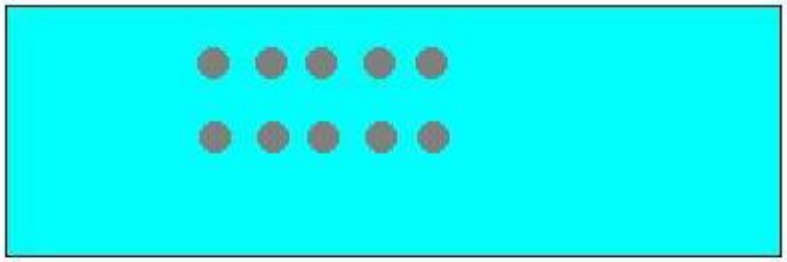

(a)

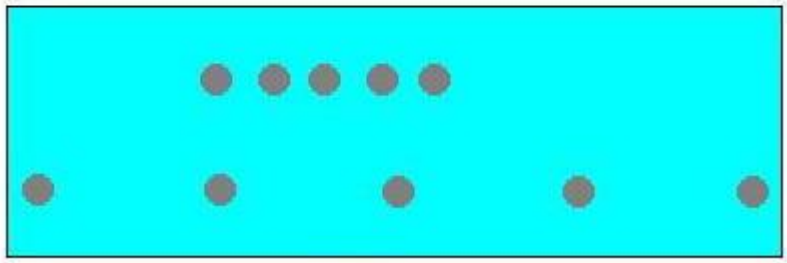

(b)

अपने घर से दोस्त के घर की 2 km की दूरी को और अपने उसी दोस्त के घर से अपने घर की दूरी को बराबर मानने की समझ उनमें नहीं होती है।

3. मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (Concrete Operational Stage) - यह अवस्था 7 साल से 11 साल तक चलती है।इस अवस्था में मानसिक विकास की विशेषताएँ निम्नवत हैं –
   i. विभिन्न प्रकार के संप्रत्ययों की समझ स्पष्ट हो जाती है।गाय, पेड़, जंगल , खेत , तालाब आदि संप्रत्यय स्पष्ट हो जाते हैं। वस्तुओं को पहचानना , उनको अलग- अलग वर्गों में विभाजित करना तथा वस्तुओं में अंतर कर सकने की क्षमता विकसित हो जाती है।
   ii. इस अवस्था में बच्चे चीजों के बीच की समानता , अंतर , सम्बन्ध और दूरी को समझेने लगते हैं। वे 05 आमों और 10 आमों के संबंधों का समझाना प्रारम्भ कर देतें हैं। दो अलग-अलग वर्गों के प्राणियों में अंतर स्पष्ट होने लगता है। वे समझने लगते हैं कि कुछ प्राणी 'गाय' होते हैं कुछ प्राणी 'कुत्ता ' होते

हैं तथा कुछ 'बिल्ली' होते हैं। इस अवस्था में वस्तुओं के सामने ना होने पर भी वे उन पर अमूर्त रूप से विचार प्रारम्भ कर देते हैं।

iii. उनके विचार करने के तरीके में क्रमबद्धता तथा तार्किकता आनी प्रारम्भ हो जाते है।उनकी कल्पनाशीलता धीरे- धीरे यथार्थ पर आधारित होने लगती है ।

iv. पलट कर के सोचने की समझ तथा संख्या तथा परिमाण के आधार पर सही समझ भी धीरे- धीरे विकसित होने लगती है। अधिक या कम बटनों को वे संख्या के आधार पर समझना प्रारम्भ कर देते हैं।उनकी समझ में यह बात भी आ जाती है कि समान मात्रा का दूध अलग- अलग आकार के के बर्तनों में होने के बाद भी बराबर होता है।इतना होने पर भी इस अवस्था में मानसिक क्रियाएं अधिकांशत मूर्त या स्थूल रूप में ही उपयोग में लाई जाती है।

4. अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था (Period of Formal Operations) – यह संज्ञानात्मक विकास की अंतिम अवस्था है जो लगभग 11-15 की आयु तक होती है। इस अवस्था की मानसिक विकास के महत्वपूर्ण बिंदु निम्नवत हैं-

i. संप्रत्ययों की समझ पूर्ण रूप से विकसित हो जाती है भाषाई दक्षता एवं सम्प्रेषण तक पहुँचने के लिए विचार, सोच , तर्क , कल्पना, निरीक्षण, परिक्षण , अवलोकन, प्रयोग आदि करने के योग्य हो जाता है।

ii. स्मरण करने की योग्यता रटने के स्थान पर तर्क एवं समझ पर निर्भर करने लगती है।

iii. चिंतन करने के लिए चीजों का मूर्त रूप में दिखाना आवशयक नहीं रह जाता है। अ, बी, स, द एक चतुर्भुज है, गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत आदि की कल्पना संभव हो जाती है।वस्तुओं का निर्माण करने के लिए कल्पनाशक्ति क प्रयोग प्रारम्भ हो जाता है। तथ्यों , सूचनाओं से होते हुए नियमों और सिद्धांतों की समझ विकसित होने लगती है। सृजनात्मकता के लिए आवश्यक योग्यताएं जैसे खोज करना, रचना करना, मौलिक चिंतन करना आदि बौद्धिक योग्यताएं विकसित हो जाती हैं।

पियाजे द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धांत के शैक्षिक निहितार्थ निम्न हैं –

i. सीखने के प्रक्रिया सहज सरल व सुगम बन सके इस के लिए यह आवश्यक है कि बच्चों की आयु के अनुरूप शिक्षण व्यवस्था का आयोजन किया जाए।

ii. प्रारम्भ में भाषा आधारित शब्दों से जुड़े संप्रत्ययों को अधिकाधिक मूर्त रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

iii. अवस्था आधारित विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए पाठ्यवस्तु का निर्धारण एवं पाठ्य सामग्री का निर्माण किया जाना चाहिए।

iv. औपचारिक शिक्षा 07वर्ष से प्रारम्भ करनी चाहिए। इस व्यवस्था के अंतर्गत मूर्त चिंतन से अमोर्ट चिंतन की ओर बढ़ने के अवसर उपलब्ध कराने के प्रयास किए जाने चाहिए।

v. निरीक्षण, प्रयोग, तथा खोज करने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए ।

vi. वस्तुओं की पहचान तथा सम्प्रत्ययों के समझ विकसित करने के उपरान्त सूचनाओं तथा तथ्यों के आधार पर नियमों एवं सिद्धांतों की समझ विकसित करने हेतु उपयुक्त प्रयास किए जाने चाहिए।

vii. विद्यालयों एवं कक्षा-कक्षों में ऐसा वातावरण सृजित किया जाना चाहिए जिससे 11-15 वर्ष की आयु के विद्यार्थी कर की सीखना, निष्कर्षों तथा परिणामों तक पहुँचने के लिए आगमन तथा निगमन विधियों का उपयोग करना, क्रमबद्ध तरीके से तार्किक चिंतन करने की योग्यता प्राप्त कर सकें।

viii. इस कार्य को करने हेतु सुसज्जित प्रयोगशालाओं के साथ- साथ शैक्षिक भ्रमणों, योजना विधि, विज्ञान संग्रहालय तथा प्रकृति से प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित करने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

---

8. ज्याँ पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास की _____अवस्थाएँ होती हैं।
9. संज्ञानात्मक विकास _____ अवस्था जन्म से लेकर 02 वर्ष की आयु तक चलती है।
10. पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था _____ से _____ तक चलती है।
11. पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था में _____की प्रक्रिया शुरू हो जाती है।
12. संज्ञानात्मक विकास की अंतिमअवस्था को _____कहते हैं जो लगभग 11 साल से 15 साल की आयु तक होती है।

2.5 अधिगम के सामाजिक रचनावादी सिद्धांत

2.5.1 वाइगोत्स्की का सामाजिक संरचनावाद का सिद्धांत

लेव सिमनोविच वाइगोत्सकी(1896 -1934) सोवियत संघके मनोवैज्ञानिक थे । उन्होंने मानव के सांस्कृतिक तथा जैव-सामाजिक विकास का सिद्धान्त दिया जिसे सांस्कृतिक-ऐतिहासिक मनोविज्ञानकहा जाता है।उन्होंने बच्चों में उच्च संज्ञानात्मक कार्यों के विकास से सम्बन्धितएक सिद्धान्त प्रस्तुत किया। वाइगोत्स्की का सामाजिक दृषिटकोण संज्ञानात्मक विकास का एक प्रगतिशीलविश्लेषण प्रस्तुत करता है। वस्तुत: वाइगोत्सकी ने बालक के संज्ञानात्मकविकास में समाज एवं उसके सांस्कृतिक संबन्धों के बीच संवाद को एकमहत्त्वपूर्ण आयाम माना। ज्याँपियाजे की तरह वाइगोत्स्की का भी मत था कि बच्चे ज्ञान का निर्माण करते हैं लेकिनयह भाषा-विकास, सामाजिक-विकास, यहाँ तक कि शारीरिक-विकास केसाथ-साथ सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में होता है।इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक अन्त:क्रिया ही बालक की सोच व व्यवहार में निरन्तर बदलाव लाती है ।वाइगोत्स्की ने अपने सिद्धान्त में संज्ञान और सामाजिक वातावरण का मिश्रण किया।

लेव वाइगोत्स्की का मानना है कि मानव क्रियाएं सांस्कृतिक परिवेश में होती हैं और इन्हें इस परिवेश से पृथक कर नहीं समझा जा सकता है। उनका एक मुख्य विचार था कि हमारी मानसिक संरचनाएं एवं प्रक्रियाएं , हमारी अन्य व्यक्तियों से पारस्परिक अन्तर्क्रियाओं में खोजी जा सकती हैं। ये सामाजिक अंतर्क्रियाएं हमारे संज्ञानात्मक विकास को केवल प्रभावित ही नहीं करती हैं वरन ये हमारी संज्ञानात्मक संरचनाओं और चिंतन प्रक्रियाओं को सृजित भी करती हैं।

वाइगोत्स्की द्वारा लिखित सामग्री यह स्पष्ट करती है कि सामाजिक प्रक्रियाएं अधिगम एवं चिंतन को किस प्रकार निर्मित करती हैं ।इसके साथ ही वैयक्तिक चिंतन के सामाजिक स्रोतों तथा अधिगम एवं विकास में सांस्कृतिक उपकरणों की भूमिका को भी यह समझने का प्रयास करती हैं। विशेष रूप से भाषा को एक उपकरण के रूप में तथा विकास के उच्चतम क्षेत्र तक पहुँचाने की प्रक्रिया भी इनके द्वारा प्रस्तुत विचारों से समझी जा सकती है।

वाइगोत्स्की द्वारा प्रतिपादित सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धांत भाषा एवं चिंतन, कला, अधिगम तथा विकास का मनोविज्ञान एवं विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को शिक्षित करने से सम्बंधित है। इस रूसी मनोवैज्ञानिक के काम की रूस में कई वर्षों तक प्रतिबंधित

रखा गया क्योंकि इन्होंने पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों को भी संदर्भित किया था लेकिन पिछले 20 वर्षों से वाइगोत्स्की के विचार मनोविज्ञान एवं शिक्षा में महत्वपूर्ण समझे जा रहे हैं।

सांस्कृतिक उपकरण और संज्ञानात्मक विकास

वाइगोत्स्की के अनुससार संज्ञानात्मक विकास में सांस्कृतिक उपकरणों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस उपकरणों के उपयोग से एक समाज/ समूह के व्यक्ति पारस्परिक संवाद कर सकने में समर्थ होते हैं। साथ ही इनका उपयोग चिंतन करने, समस्या समाधान करने तथा ज्ञान के सृजन में भी होता है।

इन उपकरणों को तीन प्रकारों में वार्गीकृत किया जा सकता है

1. वास्तविक उपकरण – पैमाने, कम्प्यूटर्स आदि।
2. सांकेतिक उपकरण – अंक , भाषा , ग्राफ
3. सामग्रियां –प्रिंटिंग प्रेस ; खेती करने में काम आने वाले उपकरण ; लकड़ी, स्टील या प्लास्टिक का स्केल, अबेकस , ग्राफ पेपर, PDAs, कम्प्यूटर्स, इंटरनेट आदि।
4. मनोवैज्ञानिक उपकरण- चिन्ह, संकेताक्षर, अंक, गणितीय, संप्रत्यय, ब्रेल लिपि, सांकेतिक भाषा, मानचित्र, कला कृतियाँ, कूट- भाषा तथा बोलियां/ भाषाएं

वास्तव में दैनिक जीवन में काम आने वाली चीजें संज्ञानात्मक विकास में उपयोग में आती ही हैं।शून्य, अंश, घनात्मक राशि, ऋणात्मक राशि, युक्त अंक प्रणाली भी एक मनोवैज्ञानिक उपकरण के रूप में अधिगम तथा संज्ञानात्मक विकास में सहायक होती है। यह उपकरण चिंतन की प्रक्रिया को परिवर्तित करती है।

समीपस्थ विकास का क्षेत्र (Zone of Proximal Development)

यह वह क्षेत्र है जिसमें बालक सम्बंधित कार्य पर दक्षता प्राप्त कर सकता है यदि उसे यथोचित सहायता तथा मदद प्रदान जाए। यह बालक के विकास के वर्तमान स्तर तथा सहायता मिलने के उपरांत प्राप्त होने वाले विकास के स्तर के मध्य का क्षेत्र है।

बालक को शिक्षक (या किसी अन्य वयस्क, योग्य साथी) द्वारा प्रदान की जाने वाली सहायता 'स्केफोल्डिंग' (Scaffolding)कहलाती है। इसको एक 'ढाँचे' के रूप में समझा जा सकता है जिसका उपयोग बालक किसी एक समस्या का समाधान करने या किसी एक कार्य को संपादित करने में कर सकता है। यह सहायता मौखिक अनुबोधन (Prompting) तथा संकेतो/ इशारों के रूप में होती है। इसके अंतर्गत सूत्र (Clue), अनुसरण, प्रोत्साहन, उदाहरण आदि का उपयोग कर सीखने वाले को मदद की जाते है।

शिक्षण में वाईगोत्स्की के विचारों का उपयोग

जब विद्यार्थी नए कार्यों को प्रारम्भ कर रहे होते हैं या नए प्रकरणों को सीख रहे होते हैं तब निम्नलिखित का उपयोग कर उनकी सहायता की जा सकती है –

1. **प्रतिमान (Models),अनुबोधन (Prompting), वाक्य निर्मित करने हेतु संकेत/ इशारे, प्रशिक्षण (Coaching) , प्रतिपुष्टि (feedback)- धीरे-धीरे जब विद्यार्थी कार्य करने ने दक्ष होने लगते हैं तो इस प्रकार की सहायता को कम कर देना चाहिए तथा स्वनात्र रूप से कार्य करने ने अवसर उपलब्ध कराने चाहिए।**
2. **चिंतन में सहायक प्रभावी उपकरणों का समुचित उपयोग-**
    i. **शब्दकोष , विश्वकोष , कम्प्यूटर्स (सर्च स्प्रेडशीट, वार्ड प्रोसेसिंग प्रोग्राम्स आदि)**
    ii. **योजना निर्माण तथा समय प्रबंधन हेतु एपोईंटमेंट बुक याँ इलैक्ट्रोनिक नोट बुक**
3. **विद्यार्थियों के सांस्कृतिक ज्ञान भण्डार क उपयोग –**
    i. **विद्यार्थियों के परिवारों के क्रियाकलापों तथा उनसे जुड़ी जानकारियों का सम्यक उपयोग –कृषि, धनार्जन , पद्धतियाँ, उत्पादन के तौर- तरीके, गृह प्रबधन, दवा और बीमारी, धार्मिक क्रियाएं, पालन-पोषण की पद्धतियाँ, खान-पान संबंधी जानकारियों/ क्रियाएं।**
    ii. **उपर्युक्त जानकारियों से जुड़ी छोटी-छोटी परियोजनाओं के लिए विद्यार्थियों को अवसर प्रदान करने चाहिए तथा इन गतिविधियों का मूल्यांकन समाज में उपलब्ध विशेषज्ञों द्वारा करवाया जाना चाहिए।**
4. **विचार विमर्श /वाद-विवाद तथा समूह अधिगम -**
    i. **विद्यार्थियों को प्रश्न पूछने के लिए प्रेरित करना, उपयोगी स्पष्टीकरण प्रदान करना, संगी-साथियों से महत्वपूर्ण विषयवस्तु वार्तालाप के अवसर उपलब्ध करना।**
    ii. **सहयोगात्मक अधिगम कौशलों का उपयोग किया जाना चाहिए।**

ज्ञान का निर्माण

अधिगम और ज्ञान संबंधी अवधारणाएं –

वाईगोत्स्की के अनुसार ज्ञान का निर्माण सामाजिक अन्तर्क्रियाओं तथा अनुभवों पर आधारित होता है। संस्कृति, भाषा , विश्वासों, अन्य व्यक्तियों से अंतर्क्रिया, प्रत्यक्ष शिक्षण तथा प्रतिमानों (Models)से प्रभावित व छनित बाह्य जगत का प्रतिबिम्बन ही ज्ञान है ।

निर्देशित खोज, शिक्षण, प्रतिमान तथा कोचिंग के साथ- साथ व्यक्ति का पूर्व ज्ञान, उसके विश्वास तथा चिंतन अधिगम को प्रभावित करने हैं।

स्थित अधिगम (Situated Learning)

वास्तविक जगत में सीखना विद्यालय में अध्ययन करने जैसा नहीं है। इस बात पर विशेष बल देना 'स्थित अधिगम ' से परिलक्षित होता है। कौशल तथा ज्ञान उस परिस्थिति से जुड़े होते हैं जिनमें उनको सीखा गया होता है तथा इनको नई परिस्थिति में उपयोग में लाना कठिन होता है। विद्यालय में सीखी गई चीजों को विद्यालय से बाहर की स्थितियों में लागू करने के लिए विशेषज्ञ निर्देशक तथा प्रतिमानों से मदद की आवश्यकता होती है। अधिगम (या ज्ञान) के स्थानांतरण के कारण एक परिस्थिति में प्राप्त कौशल तथा ज्ञान दूसरी परिस्थितियों में कुछ शर्तों के साथ उपयोग में लाया जा सकता है। सीखने के स्थानांतरण का 'समान तत्वों का सिद्धांत' इसी अवधारणा की पुष्टि करता है।

2.5.2 बॅण्डुरा का सामाजिक अधिगम सिद्धांत (Social Learning Theory of Bandura)

ॲल्बर्ट बॅण्डुरा का जन्म 4 दिसंबर 1925 में हुआ।बॅण्डुरा एक प्रभावशाली सामाजिक संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक हैं। बॅण्डुरा द्वारा सामाजिक अधिगम सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया ।इस सिद्धांत में स्वनिर्देशित अधिगम के प्रत्यय को प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है। एक बालक /किशोर के रूप में बॅण्डुरा को अपने पिताके रूप में एक ऐसे प्रेरक का सानिध्य प्राप्त हुआ था जो विद्यालयी शिक्षा से वंचित रहने पर भी तीन भाषाओं को अपने स्वयं के प्रयास से पढ़ाना सीखने में सफल हुए थे।

इस सिद्धांत के समर्थक इस बात पर बल देतें हैं कि हम जो कुछ भी सीखतें हैं उसका अधिकांश भाग हम दूसरों को देखकर तथा दूसरों की बातों को सुनकर सीखतें हैं।

छोटे-छोटे बच्चे प्रारम्भ से ही दूसरों के व्यवहारों को ध्यानपूर्वक देखना शुरू कर देते हैं।आस-पास के लोग जैसे माता -पिता, परिवार के अन्य सदस्यों, शिक्षकों , समाज के अन्य वयस्क सदस्यों के व्यवहार को देखते हैं। बच्चे इस व्यवहारों का अनुसरण करना तथा तदनुरूप स्वयं भी व्यवहार करना प्रारम्भ कर देतें हैं।वास्तव में प्रत्यक्ष अनुभवों के साथ-साथ अप्रत्यक्ष अनुभवों का भी सीखने पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। इस सन्दर्भ में बॅण्डुरा लिखते हैं – "बच्चों को तैरना नहीं सिखाया जाता है, किशोरों को साइकिल, स्कूटर चलाना सिखाना नहीं पड़ता है, चिकित्सा शास्त्र के प्रारम्भिक स्तर के विद्यार्थियों को सर्जरी के मौलिक कौशलों की समझ अनुभवी सर्जनों को सर्जरी करते हुए देखकर प्राप्त होती है।"

स्वानुभव तथा वातावरणीय परिस्थितियों से प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित होने के साथ-साथ अवलोकन द्वारा सीखना विद्यार्थियों को इतर आयाम (extra dimension)तथा

अवसर प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति को सभी अनुभवों से गुजरना अनिवार्य नहीं है वह दूसरों के अनुभवों से भी लाभान्वित होता है।

सीखना कैसे होता है ?

सामाजिक अधिगम सिद्धांत के अनुसार सामाजिक वातावरण के सदस्यों के व्यावहारों का अवलोकन कर उनका अनुसरण करने से नए व्यवहारों की सीखा जाता है। बॅण्डुरा के अनुसार इस प्रकार के सीखने में निम्नलिखित प्रक्रियाएं या चरण सन्निहित होते हैं –

1. व्यवहार पर ध्यान देना तथा उसे समझना- इस प्रथम चरण पर व्यक्ति विशेष के व्यवहार के अवलोकन के अवसर सीखने वाले को प्रदान किए जाते हैं। यहाँ पर सम्पूर्ण व्यवहार या व्यवहार का एक विशेष पहलू विद्यार्थी के ध्यान को आकर्षित करता है तथा तब वह विद्यार्थी के ध्यान का केन्द्र बन जाता है।
2. व्यवहार का स्मरण रखना - इस दूसरे चरण में अवलोकित व्यवहार , मानसिक प्रतिबिम्ब (Mental Image) के रूप में विद्यार्थी के स्मृति पटल में संरक्षित हो जाता है।
3. स्मृति को कार्य में परिवर्तित करना –इस तीसरे चरण में अवलोकित और स्मृति में संरक्षित व्यवहार का विद्यार्थी द्वारा अपने दृष्टिकोण तथा अपनी आवश्यता के अनुसार विश्लेषण किया जाता है। तदोपरांत वह इस व्यवहार को अपनाकर कार्य करता है।
4. अनुकृत व्यवहार का पुनर्बलन (Reinforcement of Imitated Behavior)- इस अंतिम चरण में अनुकृत व्यावहार पुनर्बलित होता है। ऐसा होने पर अनुकृत व्यवहार विद्यार्थी द्वारा अंगीकृत कर लिया जाता है तथा भविष्य में उसके प्रदर्शित होने की निरंतरता बनी रहती है।

खेल के मैदान में खिलाड़ियों के व्यवहारों का अवलोकन, भोजनालय में विभिन्न व्यंजनों को बनाने की प्रक्रियाओं का अवलोकन , प्रभावी व्याख्यानों को देखने सुनने के अवसरों की उपलब्धता, श्यामपट पर सुन्दर लिखने की प्रक्रिया का अवलोकन आदि सीखनी की प्रक्रिया के प्रथम चरण से सम्बंधित हैं ।इस प्रकार के व्यवहारों के निरंतर अवलोकन से इनका विद्यार्थी के स्मृति पटल में मानसिक प्रतिबिम्ब के रूप में संरक्षित होना दूसरे चरण के अंतर्गत होता है।

तीसरे चरण में विद्यार्थी अपनी समझ तथा आवश्यकता के अनुसार व्यवहारों के इन विभिन्न प्रतिमानों में कुछ को प्रदर्शित करना प्रारम्भ कर देता है। अंतिम प्रदर्शन को कोच, शिक्षकों तथा दर्शकों द्वारा सराहे जाने पर; घर में कुछ विशिष्ट खाद्य पदार्थों को तैयार करने तथा उनकों परिवार के सदस्यों / मित्रों द्वारा स्वादिष्ट बताए जाने पर ; सुन्दर लेखन के

अवलोकन के स्वयं ऐसा कर सकने में समर्थ होने पर इन प्रदर्शित व्यवहारों का पुनर्बलन होता है। इस प्रकार पुनर्बलित व्यवहार विद्यार्थी द्वारा अंगीकृत कर लिए जाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि व्यवहार के विभिन्न प्रकार के प्रदर्शन, सीखने से एक विशेष क्रम से जुड़े हैं। हम अवलोकन करते हैं, अवलोकित व्यवहार को स्मृति पटल में संचित करते हैं , उसका अनुकरण करते हैं तथा उसके पुनर्बलित होने पर उसे अंगीकृत कर लेते हैं।

प्यार की अभिव्यक्ति , क्रोध का प्रदर्शन, संवेदनाओं की अभिव्यक्ति, पूर्वाग्रहों का प्राकट्य , बोलना, लिखना, विशेष खाद्य पदार्थों के प्रति रूचि, विशेष वेश-भूषा के प्रति लगाव, विभिन्न कार्यों को करने के लिए पहल करना या ऐसी पहल करने से बचना आदि सामजिक अधिगम सिद्धांत के अनुसार 'सीखने' की प्रक्रिया के संपादित होने को स्पष्ट करते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

13. _____ यह वह क्षेत्र है जिसमें बालक सम्बंधित कार्य पर दक्षता प्राप्त कर सकता है यदि उसे यथोचित सहायता तथा मदद प्रदान जाए।
14. वाइगोत्स्की के अनुसार ज्ञान का निर्माण _____ तथा अनुभवों पर आधारित होता है।
15. बालक को शिक्षक (या किसी अन्य वयस्क, योग्य साथी) द्वारा प्रदान की जाने वाली सहायता _____कहलाती है।
16. बॅण्डुरा के सामाजिक अधिगम सिद्धांत में स्वनिर्देशित अधिगम के प्रत्यय को प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है। (सत्य/ असत्य)
17. बॅण्डुरा के अनुसार सीखने में कौन कौन सी प्रक्रियाएं या चरण सन्निहित होते हैं ?

2.6 सारांश

अधिगम या सीखना एक बहुत ही सामान्य और आम प्रचलित प्रक्रिया है। जन्म के तुरन्त बाद से ही व्यक्ति सीखना प्रारम्भ कर देता है और फिर जीवनपर्यंत कुछ ना कुछ सीखता ही रहता है।

सामान्य अर्थ में 'सीखना' व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है। (Learning refers to change in behavior) परन्तु सभी तरह के व्यवहार में हुए परिवर्तन को सीखना या अधिगम नहीं कहा जा सकता।

थॉर्नडाइक ने सीखने की व्याख्या करते हुए कहा है कि जब कोई उद्दीपक व्यक्ति के सामने दिया जाता है तो उसके प्रति वह अनुक्रिया करता है। अनुक्रिया सही होने से उसका संबंध उसी विशेष उद्दीपक के साथ हो जाता है। इस संबंध को सीखना कहा जाता है तथा इस तरह की विचारधारा को संबंधवाद की संज्ञा दी गई है।

थॉर्नडाइक ने सीखने के सिद्धान्त में तीन महत्वपूर्ण नियमों का वर्णन किया है

1. अभ्यास का नियम (Law of Exercise)
2. तत्परता का नियम (Law of Readiness)
3. प्रभाव का नियम (Law of Effect)

अधिगम के विभिन्न सिद्धान्तों की तुलना में अनुबंधन पर अत्यधिक प्रायोगिक कार्य हुए हैं। अनुबंधन को ऐसे साहचर्यात्मक या अधिगम प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें नवीन प्रकार के उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्यों का निर्माण करना सीखा जाता है।

स्किनर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तसक्रिय अनुबन्धन या क्रिया प्रसूत अनुबन्धन कहा जाता है। सक्रिय अनुबंधन की अवधारणा यह है कि प्राणी को वांछित उद्दीपक या परिणाम प्राप्त करने या कष्टदायक उद्दीपक से बचने के लिए प्रत्याशित, उचित या सही अनुक्रिया (व्यवहार) पहले स्वयं प्रदर्शित करनी होती है। अर्थात उद्दीपक या परिस्थिति के निमित्त प्राणी द्वारा किया जाने वाला व्यवहार ही परिणाम का स्वरूप निर्धारित करता है। इसी कारण इसेसक्रिय अनुबंधन कहते हैं ज्याँ पियाजे संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र में कार्य करने वाले मनोविज्ञानिकों में सर्वाधिक प्रभावशाली माने जाते हैं। विकासात्मक मनोविज्ञान के अनेक सिद्धांतों में से एक बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्धान्त ज्याँ पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त है। पियाजे ने अपने सिद्धान्त में शैशवावस्था से वयस्कावस्था के बीच चिन्तन-क्रिया में जो विकास होते हैं उनकी व्याख्या की है। इस सिद्धांत को ज्याँ पियाजे द्वारा प्रतिपादित किया गया ओर इसमें यह परिकल्पना की गई कि मानव शिशु विकसित होने के क्रम में चार स्तरों से गुजरता है। सामान्यतया यह चार अवस्थाएं विशेष आयु वर्ग से सम्बंधित होती हैं।

लेव सिमनोविच वाइगोत्सकी (1896 -1934) सोवियत संघके मनोवैज्ञानिक थे। उन्होंने मानव के सांस्कृतिक तथा जैव-सामाजिक विकास का सिद्धान्त दिया जिसे सांस्कृतिक-ऐतिहासिक मनोविज्ञानकहा जाता है।उन्होंने बच्चों में उच्च संज्ञानात्मक कार्यों के विकास से सम्बन्धितएक सिद्धान्त प्रस्तुत किया। वाइगोत्स्की का सामाजिक दृषिटकोण संज्ञानात्मक विकास का एक प्रगतिशीलविश्लेषण प्रस्तुत करता है। वस्तुत: वाइगोत्सकी ने बालक के संज्ञानात्मकविकास में समाज एवं उसके सांस्कृतिक संबन्धों के बीच संवाद को एकमहत्त्वपूर्ण आयाम माना। ज्याँ पियाजे की तरह वाइगोत्स्की का भी मत था कि

बच्चेज्ञानका निर्माण करते हैं लेकिनयह भाषा-विकास, सामाजिक-विकास, यहाँ तक कि शारीरिक-विकास केसाथ-साथ सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक अन्त:क्रिया ही बालक की सोच व व्यवहार में निरन्तर बदलाव लाती है ।वाइगोत्स्की ने अपने सिद्धान्त में संज्ञान और सामाजिक वातावरण का मिश्रण किया।

बॅण्डुरा के सिद्धांत में स्वनिर्देशित अधिगम के प्रत्यय को प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है । इस सिद्धांत के समर्थक इस बात पर बल देतें हैं कि हम जो कुछ भी सीखतें हैं उसका अधिकांश भाग हम दूसरों को देखकर तथा दूसरों की बातों को सुनकर सीखतें हैं ।

छोटे-छोटे बच्चे प्रारम्भ से ही दूसरों के व्यवहारों को ध्यानपूर्वक देखना शुरू कर देते हैं ।आस-पास के लोग जैसे माता -पिता, परिवार के अन्य सदस्यों, शिक्षकों , समाज के अन्य वयस्क सदस्यों के व्यवहार को देखते हैं । बच्चे इस व्यवहारों का अनुसरण करना तथा तदनुरूप स्वयं भी व्यवहार करना प्रारम्भ कर देतें हैं। वास्तव में प्रत्यक्ष अनुभवों के साथ-साथ अप्रत्यक्ष अनुभवों का भी सीखने पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है ।

2.7 शब्दावली

1. अधिगम:यह वह प्रक्रिया है जिसमें एक उत्तेजना, वस्तु या परिस्थिति के द्वारा एक प्रत्युत्तर प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त यह प्रत्युत्तर एक प्राकृतिक या सामान्य प्रत्युत्तर है।
2. पुनर्बलन: ऐसी कोई वस्तु, कारक या उद्दीपक है जिसके प्रयुक्त किए जाने पर प्रक्रिया की सम्भाव्यता प्रभावित होती है।
3. संज्ञान (Cognition):मानसिक प्रक्रिया जिसका संबंध चिंतन , समस्या-समाधान, भाषा संप्रेषण तथा और भी बहुत सारी मानसिक प्रक्रियाओं से है।
4. संरक्षण (Conservation): वातावरण में परिवर्तन तथा स्थिरता को समझने और वस्तु के रंग-रूप में परिवर्तन तथा उसके तत्व के परिवर्तन में अन्तर करने की प्रक्रिया।
5. आत्मकेन्द्रिता (Egocentrism): खुद को केन्द्र में रखकर कोई निर्णय लेना।

2.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. थॉर्नडाइक के अधिगम के सिद्धांत को प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धांत तथा सबन्धवाद के नाम से जाना जाता है।
2. थॉर्नडाइक ने सीखने के तीन महत्वपूर्ण नियमों के नाम हैं-
   i. अभ्यास का नियम (Law of exercise)
   ii. तत्परता का नियम (Law of readiness)
   iii. प्रभाव का नियम (Law of effect)

3. उपयोग का नियम
4. अनुपयोग का नियम
5. अनुबन्धन
6. स्वाभाविक उद्दीपक
7. धनात्मक पुनर्बलन
8. चार
9. इन्द्रीय जनित गामक अवस्था
10. दो साल से सात सालतक
11. संप्रत्यय निर्माण
12. अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था
13. समीपस्थ विकास का क्षेत्र
14. सामाजिक अन्तर्क्रियाओं
15. 'स्केफोल्डिंग' (Scaffolding)
16. सत्य
17. बॅण्डुरा के अनुसार सीखने में निम्न प्रक्रियाएं या चरण सन्निहित होते हैं –
    i. व्यवहार पर ध्यान देना तथा उसे समझना-
    ii. व्यवहार का स्मरण रखना -
    iii. स्मृति को कार्य में परिवर्तित करना –
    iv. अनुकृत व्यवहार का पुनर्बलन

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता एस.पी. ;(2002) उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
2. शुक्ल ओ.पी.;(2002) शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ: भारत प्रकाशन।
3. चौहान, एस0 एस0 (2000) एडवान्स एजुकेशनल साइकोलोजी, विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
4. श्रीवास्तव, डी०एन० व प्रीति वर्मा (2008), बाल मनोविज्ञान, बाल विकास, वाराणसी, मोतीलाल बनारसी दास।
5. हर्लाक एलिजावेथ (1997) : विकास मनोविज्ञान, नई दिल्ली, प्रैंटिस हाल ऑफ इंडिया।
6. सिंह,ए0के0 (2007): उच्चतर मनोविज्ञान, वाराणसी, मोतीलाल बनारसी दास।
7. मंगल, एस0 के0 (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली, प्रैंटिस हाल ऑफ इंडिया।
8. सिंह,ए0के0 (2007): शिक्षा मनोविज्ञान, पटना, भारती भवन पब्लिसर्श।

9. https://www.learning-theories.com/vygotskys-social-learning-theory.html
10. https://www.simplypsychology.org/bandura.html

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. थॉर्नडाइक के अधिगम के सिद्धान्त की व्यख्या कीजिए।
2. क्रिया प्रसूत अनुबंधन सिद्धांत का वर्णन कीजिए।
3. क्रिया प्रसूत अनुबंधन में पुनर्बलन की विशेष भूमिका का वर्णन कीजिए।
4. पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत को स्पष्ट कीजिए।
5. अधिगम केसामाजिक रचनावादी सिद्धन्तों की व्याख्या कीजिए।

इकाई 3 - बुद्धि :- संप्रत्यय तथा परिभाषाएं एवं सिद्धांत (Intelligence- Concept, Definition and Theories)

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 बुद्धि का संप्रत्यय
3.4 बुद्धि की परिभाषाएँ
3.5 बुद्धि का द्विकारक सिद्धान्त
3.6 बुद्धि का बहु-कारक सिद्धान्त
3.7 बुद्धि का त्रितंत्र सिद्धान्त
3.8 सारांश
3.9 शब्दावली
3.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

ज्ञान को अर्जित करने तथा उपयोगकरने की योग्यता बुद्धि है। विद्यालय में सफलता, व्यावसाय में सफलता, सामाजिक समायोजन तथा सामान्य जानकारियों की प्राप्ति आदि सभी कुछ बुद्धि से सम्बन्धित है ।बुद्धि एक अस्पष्ट व अनिश्चित संप्रत्यय है। मनोविज्ञानिकों द्वारा बुद्धि को समझने व अर्थ स्पष्ट करने के भिन्न भिन्न प्रयास किए गए। पिछले साठ दशकों में मनोविज्ञानिकों द्वारा बुद्धि को समझने, बुद्धि की प्रकृति जानने व उसका मापन करने के लिए विभिन्न शोध कार्य किए गए। विद्यालयी जीवन को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों में बुद्धि सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है।

इस इकाई में आप बुद्धि के अर्थ से परिचित होंगे साथ ही साथ बुद्धि के विभिन्न सिद्धांतों के बारे में जान सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप:-

1. बुद्धि के अर्थ को समझ सकेंगे।
2. बुद्धि के संप्रत्यय को स्पष्ट कर सकेंगे।
3. बुद्धि की विभिन्न परिभाषाओं को लिख सकेंगे।
4. बुद्धि के द्वी कारक सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे।
5. बुद्धि के बहु-कारक सिद्धान्त को स्पष्ट कर सकेंगे।
6. बुद्धि के त्रितंत्र सिद्धान्त को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.3 बुद्धि का संप्रत्यय

बुद्धि को अंग्रेजी भाषा में 'Intelligence' कहा जाता है।अंग्रेजी भाषा का 'Intelligence' शब्द लैटिन भाषा के शब्द 'Intelligere' (a verb, एक क्रिया) से बना है जिसका तात्पर्य 'समझ ' है।एलफ्रेड बिने नाम के मनोवैज्ञानिक ने बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक के प्रारम्भ में बुद्धि को निर्णय लेने की योग्यता या सामान्य समझ के रूप में परिभाषित किया। थार्नडाइक के अनुसार बुद्धि परिस्थितियों से जूझने की व्यक्ति की क्षमता है। ज्याँ पियाजे बुद्धि को परिस्थितियों से अनुकूलन करने की योग्यता बताते हैं। वहीं सिरिल बर्ट बुद्धि को नमनीय समायोजन की क्षमता मानते हैं। डेविड वैशलर (1977)के अनुसार बुद्धि तार्किक ढंग से चिंतन करने की , उद्देश्यपूर्ण तरीके से कार्य करने तथा वातावरण के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से प्रतिक्रया करने की समग्र क्षमता है।

बुद्धि एक मानसिक योग्यता है जिसमें निम्नलिखित सन्निहित रहते हैं –

- अमूर्त चिंतन करने की योग्यता
- योजना बनाने की योग्यता
- समस्या समाधान की योग्यता
- तर्क करने की योग्यता
- जटिल विचारों की समझ

- तीव्र गति से सीखना
- अनुभव से सीखना

बुद्धि केवल पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने, संकीर्ण अकादमिक कौशल या परीक्षा में अधिक अंक प्राप्त करने तक सीमित नहीं है।

सरल शब्दों में बुद्धि चिंतन कौशलों की तथा अनुकूलन की योग्यता साथ ही यह जीवन के प्रतिदिन के अनुभवों से सीखना भी है।

वास्तव में बुद्धि का संप्रत्यय यह भी इंगित करता है कि भिन्न – भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से बुद्धिमान होते हैं। यदि एक प्रकार से विचार किया जाए तो निम्नलिखित में से कौन अधिक बुद्धिमान मान जाएगा ?

- अपने कर्मचारियों को प्रेरित करने वाला मैनेजर
- विश्वविद्यालय का शिक्षक
- पुल का निर्माण करने वाला इंजीनियर
- एक रचनाकार
- संगीत सम्मलेन में वाद्य यंत्र बजाने वाला संगीतज्ञ
- एक रेगिस्तान में पानी खोज निकालने वाला स्थानीय व्यक्ति

बुद्धि की प्रकृति

बुद्धि परिश्रम से प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं है। यह प्रकृति का उपहार है। बुद्धि स्मृति नहीं है ।एक बुद्धिमान व्यक्ति की स्मृति कमजोर भी हो सकती है ।बुद्धि एक ऐसा कौशल नहीं है जो एक कार्मिक सुनियोजित अभ्यास से प्राप्त कर ले। बुद्धि किसी एक व्यक्ति के अच्छे व्यवहार की गारंटी नहीं है। बुद्धि के प्रकृति को समझने केलिए ई. एल. थार्नडाईक तथा गैरेट द्वारा प्रस्तुत इसका वर्गीकरण उपयोगी है -

1. मूर्त बुद्धि (Concrete Intelligence)-यह एक व्यक्ति की वास्तविक स्थितियों की समझ संबंधी तथा उनके प्रति उपयुक्त प्रतिक्रया देने की योग्यता है। दैनिक जीवन की विभिन्न क्रियाओं में यह परिलक्षित होती है। मूर्त पदार्थों के उपयोग में एक प्रकार की बुद्धि ही कार्य करती है। इंजीनियर , तकनीशियन तथा वास्तुशिल्पियों में इस प्रकार की बुद्धि होती है।

2. अमूर्त बुद्धि (Abstract Intelligence)-शब्दों , अंकों तथा संकेतों के लिए उपयुक्त प्रतिक्रिया देने की योग्यता अमूर्त बुद्धि है । विद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले विषयों का ज्ञान प्राप्त करने में अमूर्त बुद्धि का उपयोग होता है। पुस्तकों तथा साहित्य का गहन अध्ययन करने से अमूर्त बुद्धि अर्जित होती है । अच्छे शिक्षकों, वकीलों , चिकित्सकों तथा दार्शिनिकों में एस प्रकार की बुद्धि होती है ।
3. सामाजिक बुद्धि (Social Intelligence)-दैनिक जीवन की सामाजिक परिस्थितियों के लिए उपयुक्त प्रतिक्रया देने की योग्यता में सामाजिक बुद्धि सन्निहित रहती है ।सामाजिक परिस्थितियों में यथोचित समायोजन करने की योग्यता सामाजिक बुद्धि से सम्बंधित है । मित्रता करने की कला तथा मित्रों को प्रभावित करने की योग्यता सामाजिक बुद्धि से ही संभव होती है ।नेताओं, मंत्रियों , कूटनीतिज्ञों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं की सामाजिक बुद्धि अधिक होती है ।

   उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि –

   - वातावरण से समायोजन करने की योग्यता बुद्धि है ।
   - विभिन्न वस्तुओं तथा विधियों के मध्य के संबंधों को समझने की योग्यता बुद्धि है।
   - समस्या समाधान की योग्यता बुद्धि है ।
   - स्वतंत्र रूप से चिंतन करने की योग्यता बुद्धि है ।
   - कम समय में अधिक सीखने की योग्यता बुद्धि है ।
   - स्वयं के अनुभवों तथा दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता बुद्धि है ।

बुद्धि एक जन्मजात योग्यता है । मानव प्राणियों में बुद्धि का वितरण समान नहीं है ।बुद्धि के सन्दर्भ में मानव समुदाय के सदस्य में अत्यधिक वैयक्तिक अंतर होते हैं।

बुद्धि का विकास (Development of Intelligence)

सामान्यतया यह माना जाता है कि किशोरावस्था तक बुद्धि में वृद्धि होती है तथा वृद्धावस्था में इसमें कमी आती है।14 वर्ष तक बुद्धि तीव्र गति से बढ़ती है तथा 14 से 22 वर्ष के मध्य कहीं पर यह गति रुक जाती है । टरमान का मानना था कि बुद्धि 16 वर्ष तक बढ़ती है जबकि बिने इसे 15 वर्ष मानते हैं ।

बुद्धि में वृद्धि किस उम्र तक होती है- यह अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है। यह निर्धारण अभी तक समस्या ही बना हुआ है।

बुद्धि – एक ऐतिहासिक विहंगावलोकन

फ्रांसिस गाल्टन जो अपने अर्द्ध – चचेरे भाई चार्ल्स डार्विन से प्रभावित थे, ने सर्वप्रथम बुद्धि क एक सिद्धांत प्रतिपादित किया था। उनका मानना था कि बुद्धि एक वास्तविकता है तथा इसका एक जीव- विज्ञानी आधार है। यह सिद्धांत आगे विकसित नहीं हो पाया।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक की शुरुआत से बुद्धि को समझने के प्रयास तब प्रारम्भ हुए जब एल्फ्रेड बिने ने फ्रांस के विद्यालयी बच्चों पर बुद्धि परीक्षण प्रशासित किए। उनका उद्देश्य सामान्य बुद्धि क बच्चों तथा कम सामान्य बच्चों की बुद्धि के अंतर को ज्ञात करने हेतु बुद्धि परीक्षण को निर्मित करना था। इस कार्य में उनके सहायक थियोडोर साइमन थे। इस बुद्धि परीक्षण को बिने- साइमन स्केल कहा गया है। इसे आधुनिक बुद्धि परीक्षणों का अग्रज कहा जाता है।

वर्ष 1904 में 'अमेरिकन जर्नल ऑफ साइकलोजी' में चार्ल्स स्पीयरमैन का लिखा हुआ एक आलेख 'जनरल इंटेलीजेन्स' (General Intelligence)प्रकाशित हुआ। इस आलेख के अनुसार विभिन्न बौद्धिक क्रियाओं में एक सामान्यतत्व विद्यमान रहता है जिसे 'g' अथवा general intelligence कहा गया। 1904 के तुरंत बाद किए गए शोध कार्यों के परिणामों से ज्ञात हुआ कि 'g'अनेक महत्वपूर्ण सामाजिक परिणामों से उच्चरूप से यह सह- सम्बंधित है तथा व्यवसाय में सफलता के पूर्वानुमान के लिए अकेला बेहतरीन कारक है। वर्ष 1904से डेविड वैशलर सामान्य बुद्धि (g factor) तथा बिने-साइमन स्केल के बड़े आलोचक के रूप में आभार कर सामने आए। वैशलर'अ- बौद्धिक कारकों' (non- intelligence factors) के प्रत्यय के प्रभावी समर्थक थे और उनका मानना था कि बिने- साइमन स्केल में इन कारकों को सम्मिलित नहीं करना अच्छा काम नहीं है। इन 'अ- बौद्धिक कारकों' के अंतर्गत विश्वास की कमी (lack of confidence), असफलता का भय (fear of failure) तथा अभिवृत्तियाँ आदि सम्मिलित हैं।

वैशलर ने सुझाव दिया कि जीवन में सफल होने के लिए आवश्यक योग्यता की प्राप्ति का अनुमान लगाने के लिए इन कारकों को बुद्धि- परीक्षण में सम्मिलित करना आवश्यक है।वैशलर ने बुद्धि को उद्देश्यपूर्ण ढंग से कार्य करने की क्षमता, तार्किक ढंग से चिंतन करने की योग्यता तथा अपने चारों ओर के वातावरण या परिस्थितियों के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से बरताव करना।

बुद्धि: तरल बुद्धि तथा ठोस बुद्धि (Intelligence: Fluid Intelligence and Crystallized Intelligence)

कैटल (Cattell, 1963)ने बुद्धि के इन दो प्रकारों पर चर्चा की है। तरल बुद्धि सामान्यतया जन्मजात मानी जाती है। हम इसको लेकर पैदा होते हैं। जन्म के समय से ही प्राप्त प्रमस्तिष्कीय रचनाएँ तरल बुद्धि का निर्धारण करती हैं। मानसिक क्षमता तथा प्रमस्तिष्कीय रचनाएँ विकास से निर्धारित होने वाली योग्यताएँ तरल बुद्धि में सन्निहित रहती हैं। बुद्धि के इस प्रकार में किशोरावस्था तक वृद्धि होती रहती है तथा यह बढ़ती हुई उम्र के साथ शनै: शनै: कम होती जाती है। मस्तिष्क में चोट लगने से तथा मस्तिष्क के किसी रोग से इस प्रकार की बुद्धि को हानि होने की आशंका रहती है।

ठोस बुद्धि संस्कृति द्वारा अनुमोदित समस्या- समाधान युक्तियों में परिलक्षित होती है। इस प्रकार की बुद्धि में जीवन पर्यन्त वृद्धि होती सकती है। इसका कारण यह है कि इसमें सीखने के कौशल तथा ज्ञान जो पुस्तकों के अध्ययन, सूचनाओं- तथ्यों की प्राप्ति तथा दैनिक-व्यावसायिक जीवन के विभिन्न अनुभव समाहित रहते हैं। समस्याओं के समाधान में तरल बुद्धि का उपयोग करने से ठोस बुद्धि में वृद्धि होती रहती है।कुछ कार्य ऐसे भी होते हैं जिनमें तरल बुद्धि तथा ठोस बुद्धि दोनों की आवश्यकता होती है। गणितीय चिन्तन करते समय इन दोनों प्रकार की बुद्धियों का उपयोग होता है।

3.4 बुद्धि की परिभाषाएँ

वैश्लर ने बुद्धि को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया है-

"बुद्धि किसी व्यक्ति के द्वारा उद्देश्यपूर्ण ढंग से कार्य करने, तार्किक चिन्तन करने तथा वातावरण के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से क्रिया करने की सामूहिक योग्यता है।"

"Intelligence is the aggregate or global capacity of the individual to act purposefully to think rationally and to deal effectively with his environment."- D. Wechsler

स्टर्न के अनुसार

''बुद्धि जीवन की नई परिस्थितियों तथा समस्याओं के अनुरूप समायोजन करने की सामान्य योग्यता है"

"Intelligence is the general adaptation to new conditions and problems of life.

बकिन्घम के अनुसार

“सीखने की योग्यता ही बुद्धि है”

“Intelligence is the ability to learn.”

स्टोडार्ड के अनुसार–

‘‘बुद्धि कठिनता, अमूर्तता जटिलता, मितव्ययता लक्ष्य की अनुकूलता, सामाजिक मूल्य व मौलिकता की उत्पत्ति से युक्त क्रियाओं को करने तथा शक्ति की एकाग्रता तथा संवेगात्मक दबावों का प्रतिरोध करने की आवश्यकता वाली परिस्थितियों में इन क्रियाओं को बनाए रखने की योग्यता है।’’

“Intelligence is the ability to undertake activities that are characterized by difficulty, complexity, abstractness, economy. Adaptiveness to a goal, social value, and the emergence of originals and to maintain such activities under conditions that demand a concentration of energy and resistance to emotional forces” -Stoddard

टरमन के अनुसार-

“व्यक्ति उतना ही बुद्धिमान होता है, जितनी उसमें अमूर्त चिन्तन की योग्यता है।

“An individual is intelligent in proportion as he is able to carry on abstract thinking.”

बर्ट के अनुसार–

“बुद्धि अपेक्षाकृत नई परिस्थितियों में समायोजन करने की जन्मजात क्षमता है”

“Intelligence is the innate capacity to adapt relatively to new situations.”

डियरबोन के अनुसार–

“बुद्धि अधिगम करने की क्षमता अथवा अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता है”

“Intelligence is the capacity to learn or to profit by experience”

बुद्धि की विशेषताएँ (Characteristics of Intelligence)

बुद्धि की प्रमुख विशेषताएँ निन्मवत हैं-

- बुद्धि बालक की अन्तर्निहित नैसर्गिक योग्यता है।
- न्यूनतम समय में अधिकतम सीखना बुद्धि से ही संभव है।
- बुद्धि के उपयोग से ही भविष्य संबंधी चिंतन करना तथा तदनुसार योजना बनाना संभव होता है।
- पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता बुद्धि है।
- सही तथा गलत में अंतर कर सकना बुद्धि है।
  (नोट : गीता)
- बुद्धि जन्म से लेकर किशोरावस्था तक विकसित होती है।
- लिंग के आधार पर बुद्धि के विकास में कोई उल्लेखनीय सांख्यिकीय अंतर नहीं होता है।
- बालक तथा बाकिलाओं में बुद्धि के सन्दर्भ में वैयक्तिक अंतर होते हैं।
- बुद्धि के निर्धारण में आनुवंशिकता की प्रभावी भूमिका है लेकिन बुद्धि के परिमार्जन हेतु उपयुक्त वातावरण आवश्यक है।

3.5 बुद्धि का द्वी कारक सिद्धांत (Two Factor Theory of Intelligence)

बुद्धि का द्वीकारक सिद्धांत चार्ल्स स्पीयरमैन(1863-1945) द्वारा दिया गया है। स्पीयरमैन ने द्वी कारक सिद्धान्त का प्रतिपादन 1904 में किया।इस सिद्धांत के अनुसार मानसिक योग्यताएँ तो तत्वों या दो कारकों से से मिलकर बनती हैं:-

i. सामान्य योग्यता –'g' factor
ii. विशिष्ट योग्यता –'s' factor

सामान्य कारक की विशेषताएँ

बुद्धि का सामान्य कारक 'g'मानव जीवन केसभी कार्यों में भाग लेता है।सामान्य कारक सभी कार्यों को प्रभावित करता है ।सामान्य कारक जन्मजात होता है।सामान्य कारक कम या अधिक मात्रा में सभी व्यक्तियों में पाया जाता है ।सामान्य कारक 'g'वह योग्यता है जो

हमें भाषा को सीखने में सहायता करता है तथा कौशलों को विकसित करने में, सहायता प्रदान करता है। सामान्य कारक 'g' की मात्रा प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न भिन्न पाई जाती है।

विशिष्ट कारक की विशेषताएँ

स्पीयरमैन के अनुसार बुद्धि का दूसरा तत्व 'विशिष्ट योग्यता' या 's' factor है। यह योग्यता जीवन के केवल विशिष्ट क्षेत्रों से जुड़ी होती है। उदाहरण के लिए गणित की योग्यता में जोड़ , घटा, गुणा व भाग 'सामान्य तत्व ' के अतिरिक्त किसी- किसी व्यक्ति में गणित की योग्यता अन्य की तुलना में अधिक पाई जाती है। यह उस व्यक्ति की विशिष्ट योग्यता है। सामान्य योग्यता का वितरण प्राय: प्रत्येक सामान्य व्यक्ति में पाया जा सकता है , परन्तु विशिष्ट योग्यता सभी में सामान रूप से नहीं पाई जाती है इसीलिए वह विशिष्ट योग्यता है। यही वह विशिष्ट योग्यता है जो कुछ व्यक्तियों को दूसरे व्यक्तियों से भिन्न बनाती है। इसीलिए कुछ व्यक्ति अच्छे वैज्ञानिक, चित्रकार , लेखक , गणितज्ञ इत्यादि बनते हैं।

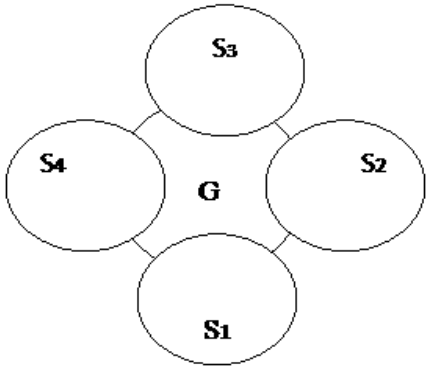

स्पीयरमैन का द्वी कारक सिद्धांत

3.6 बुद्धि का बहु कारक सिद्धांत (MultifactorTheory of Intelligence)

बुद्धि का बहु कारक सिद्धांत अमेरिकी मनोवैज्ञानिक ई० एल० थार्नडाईक द्वारा विकसित किया गया। थॉर्नडाइक के इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि विभिन्न कारकों का मिश्रण है। थॉर्नडाइक ने सामान्य कारक की सत्ता को नहीं माना बल्कि उन्होंने मूल कारक तथा सामान्य कारक दो कारकों के विचार को प्रस्तुत किया।थार्नडाईक के अनुसार बुद्धि कई तत्वों से मिलकर बनती है ओर हर एक तत्व में कोई ना कोई सूक्ष्म योग्यता होती है। थार्नडाईक के अनुसार सामान्य बुद्धि जैसी कोई चीज नहीं होती है वरन बुद्धि में कई विशिष्ट योग्यताएं,

स्वतंत्र योग्यताएं निहित रहती हैं जो कि भिन्न भिन्न प्रकार के कार्यों को संपादित करती हैं। इस सिद्धांत के अनुसार बुद्धि कई विभिन्न तत्वों के सम्मिश्रण से बनती है।

थार्नडाईकद्वारा बुद्धि की निम्न गुणों का वर्णन किया गया है-

1. स्तर (Level) –यह कसी एक समस्या के समाधान के कठिनाई के स्तर को दर्शाता है। उदाहरण के लिए यदि चीजों को कठिनाई के बढ़ते स्तर पर प्रस्तुत किया जाए तो जिस स्तर तक कोई एक व्यक्ति पहुँच सकता है वह उसके बुद्धि के स्तर को दर्शाता है ।
2. विस्तार (Range) - यह किसी एक कठिनाई के स्तर पर कार्यों को करने की संख्या को प्रदर्शित करताहै।यह किसी एक व्यक्ति के अनुभव ओर प्राप्त अवसरों के आधार पर परिवर्तित होता है। यह बुद्धि के स्तर के मापन क लिए महत्त्वपूर्ण है।
3. क्षेत्र (Area) - यह प्रत्येक स्तर पर स्स्थितियों की कुल संख्या को प्रदर्शित करता है जिन पर एक व्यक्ति प्रतिक्रियाएं देने के लिएसमर्थ होता है।
4. गति (Speed) - यह एक व्यक्ति की प्रतिक्रया देने की गति को प्रदर्शित करता है।

3.7 बुद्धि का त्रितंत्र सिद्धांत (Triarchic Theory of Intelligence)

रोबर्ट स्टर्नबर्ग (1985)ने बुद्धि क एक सिद्धांत प्रतिपादित किया जो बुद्धि के तीन प्रतिरूपों (Patterns)में अंतरों को स्पष्ट करता है :-

- विश्लेषणात्मक (Analytical)
- सृजनात्मक (Creative)
- व्यावहारिक/ प्रायोगिक (Practical)

i. विश्लेषणात्मक बुद्धि:- विश्लेषणात्मक बुद्धि विश्लेषण करने, आलोचना करने तथा मूल्यांकन करने में परिलक्षित होती है । इस बुद्धि से युक्त व्यक्ति 'विश्लेषक' (Analyzers) होते हैं।

ii. सृजनात्मक बुद्धि:- सृजनात्मक बुद्धि खोज करने , आविष्कार करने तथा सृजन करने में परिलक्षित होती है। इस बुद्धि से युक्त व्यक्ति 'सृजक' (Creators) होते हैं।

iii. व्यावहारिक/ प्रायोगिक:- व्यावहारिक/ प्रायोगिक बुद्धि सिद्धांतों को लागू करने, उनका उपयोग करने तथा उनको कार्यान्वित करने में परिलक्षित हटी है। इस बुद्धि से युक्त व्यक्ति 'व्यवसायी' (Practitioner) होते हैं।

स्टर्नबर्गका यह सिद्धांत बुद्धि को समझने के मनोमितीय तरीके (Psychometric Approach) के विपरीत संज्ञानात्मक तरीके (Cognitive Approach) को उपयोग में लाता है।

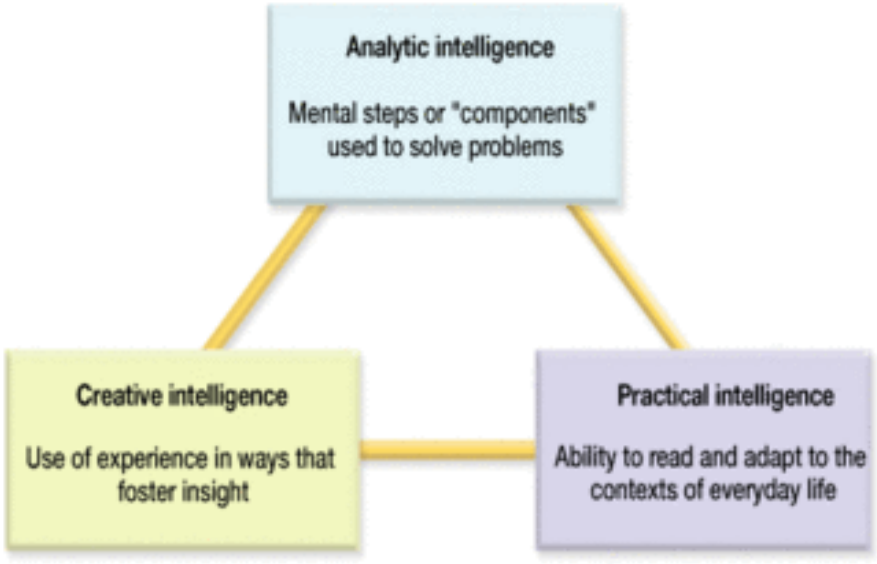

स्टर्नबर्गने मन की कार्यविधियों को घटकों की श्रेणियों से सम्बंधित कर विवेचित किया है। इस घटकों को निम्नलिखित तीन वर्गों में रखा गया-

i. मेटा घटक
ii. निष्पादन घटक
iii. ज्ञानार्जन घटक

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. बुद्धि की कोई दो विशेषताएँ लिखिए।

2. बुद्धि का द्विकारक सिद्धान्त दिया है-

   (क) बिने (ख) टरमन

   (ग) स्पीयरमैन (घ) गिलफोर्ड

3. थॉर्नडाइक ने बुद्धि के _____ प्रकार बताए।
4. बहु कारक सिद्धान्त का प्रतिपादन _____ने किया है।
5. स्टर्नबर्ग द्वारा बुद्धि का _____सिद्धांत प्रतिपादित किया है।
6. द्वी कारक सिद्धान्त का प्रतिपादन सन _____ में किया।
   a. 1903
   b. 1904
   c. 1905
   d. 1906
7. _____के अनुसार- "व्यक्ति उतना ही बुद्धिमान होता है, जितनी उसमें अमूर्त चिन्तन की योग्यता है।
8. कैटल ने बुद्धि के किन दो प्रकारों पर चर्चा की है ?
9. किसने सर्वप्रथम बुद्धि का सिद्धांत प्रतिपादित किया था?

3.8 सारांश

बुद्धि एक अस्पष्ट व अनिश्चित संप्रत्यय है। मनोविज्ञानिकों द्वारा बुद्धि को समझने व अर्थ स्पष्ट करने के भिन्न भिन्न प्रयास किए गए। पिछले साठ दशकों में मनोविज्ञानिकों द्वारा बुद्धि को समझने, बुद्धि की प्रकृति जानने व उसका मापन करने के लिए विभिन्न शोध कार्य किए गए। विद्यालयी जीवन को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों में बुद्धि सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है।

इस इकाई में बुद्धि के सिद्धान्तों में से बिने का एक कारक सिद्धान्त, स्पीयरमैन का द्विकारक सिद्धान्त, थॉर्नडाइक का बहुकारक सिद्धान्त, राबर्ट स्टर्नबर्ग क सिद्धांत आदि सिद्धान्तों का अध्ययन किया। इन सिद्धान्तों के एकमत होने का तो अर्थ ही नहीं है क्योंकि ये स्वयं अलग-अलग हैं परन्तु कालक्रमानुसार इस सिद्धान्तों का निर्माण हुआ है। बुद्धि को लेकर कोई भी सर्वसम्मत मत अभी तक सामने नहीं आया है।

3.9 शब्दावली

1. बुद्धि-ज्ञान को अर्जित करने तथा उपयोगकरने की योग्यता बुद्धि है।

2. जन्मजात - जन्म से ही उत्पन्न होने वाली।

3.10स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. बुद्धि की कोई दो विशेषताएँ हैं-
   i. बुद्धि बालक की अन्तर्निहित नैसर्गिक योग्यता है।
   ii. पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता बुद्धि है।
2. (ग) स्पीयरमैन
3. तीन
4. थॉर्नडाइक
5. त्रितन्त्रीय सिद्धांत
6. (b) 1904
7. टरमन
8. कैटल ने बुद्धि के इन दो प्रकारों पर चर्चा की है:-
   i. तरल बुद्धि
   ii. ठोस बुद्धि
9. फ्रांसिस गाल्टन ने

3.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Sousa, D.A. (2006). *How the brain learns.* California: Corwin Press.Prentice Hall of India Private Limited.
2. Mathur, S.S. (2007), Educational Psychology, Agra .Vinod Pustak Mandir.
3. गुप्ता एस.पी. ;(2002) उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
4. शुक्ल ओ.पी.;(2002) शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ: भारत प्रकाशन।
5. चौबे, एस.पी. तथा चौबे, ए. (2007) शैक्षिक मनोविज्ञान के मूल आधार, मेरठ, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।
6. भटनागर, सुरेश (2007): शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।

3.12निबंधात्मक प्रश्न

1. राबर्ट स्टर्नबर्ग के बुद्धि के सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

2. थार्नडाईक के बुद्धि के सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।
3. बुद्धि की दो परिभाषाएँ लिखिए। बुद्धि के किसी एक सिद्धांत का वर्णन कीजिए।
4. बुद्धि की प्रकृति को स्पष्ट कीजिए ? बुद्धि के द्वी कारक सिद्धांत की चर्चा कीजिए।

इकाई 4 सृजनात्मकता : संप्रत्यय , परिभाषाएँ तथा विशेषताएं

Creativity: Concept, Definition and Characteristics

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 सृजनात्मकता का अर्थ एवं परिभाषाएँ
4.4 सृजनात्मकता की विशेषताएँ
4.5 सृजनात्मकता के तत्व
4.6 सृजनात्मक प्रक्रिया
4.7 सृजनात्मक बालक कीविशेषताएँ
4.8 बालकों में सृजनात्मकता विकसित करना
4.9 सृजनात्मकतापरीक्षण
4.10 सारांश
4.11 शब्दावली
4.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
4.13 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.14 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

हम में से प्रत्येक व्यक्ति अनुपम है, इसलिए सभी प्राणियों में एक ही स्तर की सृजनात्मक योग्यता विद्यमान नहीं। हम में से कई व्यक्तियों में उच्च स्तरीय सृजनात्मक प्रतिभाएं होती है और यही व्यक्ति कला, साहित्य, विज्ञान, व्यापार, शिक्षण आदि विभिन्न मानवीय क्षेत्रों में संसार का नेतृत्व करते हैं।

अच्छी शिक्षा, अच्छी देखभाल, सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिएअवसरों की व्यवस्था, सृजनात्मकता को अंकुरित एवं पोषित करती है। इसमें माता-पिता समाज तथा अध्यापक अपनी भूमिका निभा सकते हैं। वे बच्चों के पालन-पोषण तथा उनकी सृजनात्मक योग्यताओं के विकास में सहायता दे सकते हैं। अतः शिक्षा-प्रक्रिया का उद्देश्य बच्चों में सृजनात्मक योग्यताओं का विकास करना होना चाहिए । इसके लिए अध्यापकों तथा माता-पिताओं को सृजनात्मकता के विकास के साधनों का परिचय प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है। इस इकाई में आप सृजनात्मकता और सृजनातमकता को विकसित करने के विषय में अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

1. सृजनात्मकता का अर्थ जान पाऐंगे।
2. सृजनात्मकता की विभिन्न परिभाषाऐं लिख सकेंगे।
3. सृजनात्मकताकी विशेषताओं के बारे में चर्चा कर सकेंगे।
4. सृजनात्मकता के तत्वों को स्पष्ट कर सकेंगे।
5. सृजनात्मक बालकों की विशेषताएँ लिख सकेंगे।
6. सृजनात्मकता को विकसित करने हेतु विभिन्न सुझावों की व्याख्या कर सकेंगे।

4.3 सृजनात्मकता का अर्थ एवं परिभाषाएँMeaning and Definitions of Creativity

सृजनात्मकता शब्द अंग्रेजी के क्रियेटिविटी का हिन्दी रुपांतरण है।सृजनात्मकता से अभिप्राय है रचना सम्बंधी योग्यता , नवीन उत्पाद की रचना।मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सृजनात्मक स्थिति अन्वेषणात्मक होती है।विभिन्न विद्वानों ने सृजनात्मकता की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए उसे अपनी-अपनी तरह से परिभाषित करनेका प्रयत्न किया है। कुछ प्रसिद्ध विद्वानों की परिभाषाओं पर हम विचार करेंगे।

जेम्स ड्रेवर के अनुसार- " सृजनात्मकता मुख्यतः नवीन रचना या उत्पादन में होती है।"

"Creativity is essentially found in new construction or production"James Drever

क्रो एवं क्रो- "सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को व्यक्त करने की मानसिक प्रक्रिया है"।

"Creativity is a mental process to express the original outcomes" Crow & Crow

स्टेगनर एवं कार्वोस्की- "किसी नई वस्तु का पूर्ण या आंशिक उत्पादन सृजनात्मकता है"।

ड्रैवडाहल- "सृजनात्मकता व्यक्ति की वह योग्यता हे जिसके द्वारा वह उन वस्तुओं या विचारों का उत्पादन करता है जो अनिवार्य रूप से नए हो और जिन्हें वह व्यक्ति पहले से न जानता हो"।

"Creativity is the capacity of a person to produce composition products or ideas which are essentially new or novel and previously unknown to the producer". Drevdhal

विल्सन, गिलफोर्ड एवं क्रिस्टेनसैन- सृजनात्मक-प्रक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई नवीन(कोई नई वस्तु, विचार या पुराने तत्वों का कोई नवीन संगठन या रूप) उत्पत्ति हो। यह नवीन उत्पत्ति किसी समस्या के समाधान में सहयोगी होनी चाहिए ।

स्किनर-"सृजनात्मक चिंतन का अर्थ है कि व्यक्ति की भविष्यवाणियाँ या निष्कर्ष नवीन, मौलिक, अन्वेषणात्मक तथा असाधारण हों। सृजनात्मक चिंतक वह है जो नए क्षेत्र की खोज करता है नए निरीक्षण करता है, नई भविष्यवाणियाँ करता है और नए निष्कर्ष निकालता है"।

यदि हम इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने का प्रयास करें तो ज्ञात होगा कि किसी नई वस्तु का निर्माण या किसी नई वस्तु की खोज इन तमाम परिभाषाओं का केन्द्रीय तत्व है। अतः हम आसानी के साथ इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि सृजनात्मकता व्यक्ति की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह किसी नए विचार या नई वस्तु का निर्माण करता है या किसी नई वस्तु की खोज करता है। इसके अंतर्गत व्यक्ति की यह योग्यता भी सम्मिलित है जिसके द्वारा वह पूर्व-प्राप्त ज्ञान का पुनर्गठन करता है।

4.4 सृजनात्मकता की विशेषाताएँ Characteristics of Creativity

1. **सृजनात्मकता सार्वभौमिक होती है। हममें से प्रत्येक व्यक्ति में कुछ-न-कुछ मात्रा में सृजनात्मकता अवश्य होती है।**

2. यद्यिप सृजनात्मक योग्यताएं प्रकृति-प्रदत होती हैं परन्तु प्रशिक्षण या शिक्षा द्वारा उनको विकसित किया जा सकता है।
3. सृजनात्मक अभिव्यक्ति द्वारा किसी नई वस्तु को उत्पन्न किया जाता है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह वस्तु पूर्ण रूप से नई हो। पृथक रूप से दिएगए तत्वों से नए एवं ताजा समिश्रण का निर्माण करना,पहले से ज्ञात तथ्यों या सिद्वांतो का पुनर्गठन करना, किसी पूर्व-ज्ञात शैली में सुधार करना-आदि उतने ही सृजनात्मक कार्य हैं जितना रसायन विज्ञान का कोई नया तत्व ढूंढना या गणित का कोई नया सूत्र खोजना। 'सृजनात्मकता'में केवल इस बात के प्रति सावधान रहने की आवश्यकता है कि किसी ऐसी वस्तु की पुनरावृति नहीं होनी चाहिए जिसका व्यक्ति को पहले से ज्ञान हो।
4. कोई भी सृजनात्मक-अभिव्यक्ति सृजक के लिए आनंद तथा संतुष्टि का स्रोत होती है। सृजक जो देखता या अनुभव करता है उसे अपने तरीके से प्रकट करता है। सृजक अपनी रचना द्वारा ही अपने आप की अभिव्यक्ति करता है। सृजक अपने ही तरीके से वस्तुओं, व्यक्तियों तथा घटनाओं को लिखता है। अतः यह आवश्यक नहीं कि रचना प्रत्येक व्यक्ति को वही अनुभव एवं वही संतोष प्रदान करे जो रचनाकर को प्राप्त हुआ हो।
5. सृजक वह व्यक्ति है जो अपने अहं को इस प्रकार प्रकट करता हो, यह में री रचना है,यह में रा विचार है, मैंने इस समस्या को हल किया है। अतः निर्माणात्मक क्रिया में अहं अवश्य निहित रहता है।
6. सृजनात्मक चिंतन बधा हुआ चिंतन नहीं होता इसमें अनगिनत विकल्पों तथा इच्छित कार्यप्रणाली को चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है ।
7. सृजनात्मक अभिव्यक्ति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। वैज्ञानिक आविष्कार ,कविता, कहानी, नाटक आदि लिखना नृत्य-संगीत, चित्रकला , शिल्पकला, राजनीति एवं सामाजिक सम्बन्ध आदि में से कोई भी क्षेत्र इस प्रकार की अभिव्यक्ति की आधार भूमि बन सकता है।अतः जीवन अपने समूचे रूप से रचनात्मक अभिव्यक्ति के लिए असंख्य अवसर प्रदान करता है।
8. जे0पी0गिलफोर्ड, टोरैन्स, ड्रैवडाहलआदि कई विद्वानों ने सृजनात्मकता के विविध तत्वों को खोजने का प्रयास किया है। परिणामस्वरूप प्रवाहात्मक विचारधारा, मौलिकता, लचीलापन, विविधतापूर्ण-चितन, आत्म-विश्वास, संवेदनशीलता, सबन्धों को देखने तथा बनाने की योग्यता, आदि सृजनात्मक प्रक्रिया में सहायक माने गए हैं।

सृजनात्मक चिन्तन, चिन्तन का एक प्रमुख प्रकार है। सृजनात्मक चिन्तन को कई अर्थों में प्रयोग किया गया है। सृजनात्मक चिन्तन का सबसे लोकप्रिय अर्थ गिलफोर्ड (1967) द्वारा बतलाया गया है। इन्होंने चिन्तन को दो भागों में बांटा है -

1. अभिसारी चिन्तन (Convergent Thinking)
2. अपसरण चिन्तन(Divergent Thinking)

(1) अभिसारी चिन्तन(Convergent Thinking) - अभिसारी चिन्तन में व्यक्ति दिएगए तथ्यों के आधार पर किसी सही निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश करता है, इस तरह के चिन्तन में व्यक्ति रुढ़िवादी तरीका अपना कर अर्थात समस्या सम्बन्धी दी गई सूचनाओं के आधार पर उसका समाधान करता है। अभिसारी चिन्तन में व्यक्ति बहुत आसानी से एक पूर्व निश्चित क्रम में चिन्तन कर लेता है।

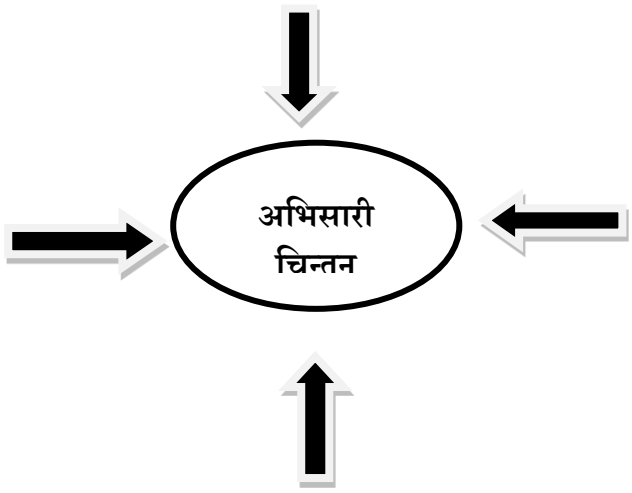

(2) अपसरण चिन्तन (Divergent Thinking)- अपसरण चिन्तन में व्यक्ति भिन्न-भिन्न दशाओं में चिन्तन कर समस्या का समाधान करने की कोशिशकरता है। जब वह भिन्न-भिन्न दशाओं में चिन्तन करता है तो स्वभावतः वह समस्या के कई संभावित उत्तरों पर चिंतन करता है और अपनी ओर से कुछ नए एवं मूल चीजों को जोड़ने की कोशिश करता है। इस तरह के चिन्तन की एक और विशेषता यह है (जो इसे

अभिसारी चिन्तन से अलग करती है) कि इसमें व्यक्ति आसानी से एक पूर्व सुनिश्चित कदमों के अनुसार चिन्तन नहीं कर पाता है (क्योकि इसमें कुछ नया एवं मूल चिन्तन करना होता है) मनोवैज्ञानिकों ने अपसरण चिन्तन को सृजनात्मक चिन्तन के तुल्य माना है

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

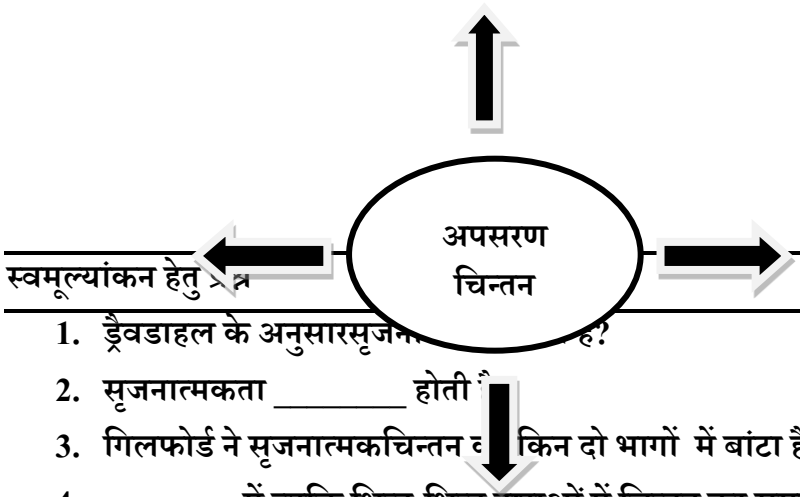

1. ड्रैवडाहल के अनुसारसृजन... है?
2. सृजनात्मकता ________ होती है
3. गिलफोर्ड ने सृजनात्मकचिन्तन को किन दो भागों में बांटा है?
4. ________ में व्यक्ति भिन्न-भिन्न दशाओं में चिन्तन कर समस्या का समाधान करने की कोशिशकरता है।

4.5 सृजनात्मकता के तत्व

सृजनात्मकता के चार प्रमुख तत्व निम्न हैं-

1. प्रवाह (Fluency): प्रवाह से तात्पर्य किसी दी गई समस्या परा अधिकाधिक विचारों या प्रत्युत्तरों की प्रस्तुति से है ।प्रवाह के भी चार भाग हैं-
   i. वैचारिक प्रवाह
   ii. अभिव्यक्ति प्रवाह
   iii. साहचर्य प्रवाह

2. शब्द प्रवाह लचीलापन (Flexibility):लचीलापन से अभिप्राय किसी समस्या पर दिएगए प्रत्युत्तरों या विकल्पों में लचीलापन होने से है।अत: व्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत किएगए विकल्प या उत्तर एक- दुसरे से कितने भिन्न हैं।

3. **मौलिकता (Originality):** मौलिकता से अभिप्राय व्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत किएगए विकल्पों या उत्तरों का असामान्य अथवा अन्य व्यक्तियों के उत्तरों से भिन्न होने से है।इसमें यह देखा जाता है कि व्यक्ति द्वारा दिएगए उत्तर प्रचलित उत्तरों से कितने भिन्न हैं। मौलिकता मुख्यतः नवीनता से सम्बंधित होती है।
4. **विस्तारण (Elaboration):** विस्तारण से अभिप्राय दिएगए विचारों या भावों की विस्तृत व्याख्या, व्यापक पूर्ति या गहन प्रस्तुतीकरण से होता है।

4.6 सृजनात्मक प्रक्रिया

सृजनात्मकता का स्वरुप काफी जटिल है। चाहे व्यक्ति सामान्य चिन्तन द्वारा किसी समस्या का समाधान कर रहा हो या वह सृजनात्मक रुप से चिन्तन कर रहा हो उसमें निम्नलिखित चार अवस्थाएं होती हैं-

1. आयोजन -इस अवस्था में समस्या से संबंधित आवश्यक तथ्यों एवं प्रमाणों को एकत्रित करने की तैयारी का आयोजन किया जाता है। समस्या समाधान से संबंधित उसके पक्ष एवं विपक्ष में प्रमाण एकत्रित किए जाते है। ऐसा करने में वह प्रयत्न एवं त्रुटि का सहारा भी लेता है। आइन्सटीन, राईट तथा न्यूटन जैसे महान वैज्ञानिकों ने भी अपने सामने आई समस्या के समाधान से संबंधित तथ्यों एवं प्रमाणों को एकत्रित करके उसका विस्तृत ज्ञान हासिल किया तथा उनके आधार पर सृजनात्मक चिन्तन किया।इस तरह से प्रत्येक रचनात्मक चिन्तन विभिन्न प्रकार के तथ्यों एवं प्रमाणों को एकत्रित करने का आयोजन करता है। समस्या के स्वरुप तथा व्यक्ति के ज्ञान के अनुसार यह अवस्था लम्बे या कम समय तक होती है। यदि समस्या जटिल तथा व्यक्ति का ज्ञान सीमित है तो अवस्था का समय लम्बा परन्तु यदि समस्या सरल तथा व्यक्ति का ज्ञान भण्डार परिपक्व है तो अवस्था कम समय तक रहती है। जिम्बार्डो तथा रुक (1977) के अनुसार इस अवस्था पर व्यक्ति की आयु तथा बुद्धि का भी प्रभाव पड़ता है।
2. उद्भवन- यह दूसरी अवस्था है इसमें व्यक्ति की निष्क्रियता बढ़ जाती है, थोड़े समय के लिए व्यक्ति समस्या के बारे में चिन्तन करना छोड़ देता है जब कई तरह से कोशिश करने के बाद भी किसी समस्या का समाधान नहीं हो पाता है तो इस अवस्था की उत्पत्ति होती है। इस अवस्था में व्यक्ति चिन्तन करना छोड़कर सो जाता है या विश्राम

करने लगता है। यद्यपि इस अवस्था में व्यक्ति अपना ध्यान समस्या की ओर से पूर्णत: हटा लेता है, फिर भी अचेतन रुप से उसके बारे में चिंतन करता रहता है। इस तरह से व्यक्ति चेतन रुप से तो समस्या से मुक्त रहता है परन्तु अचेतन रुप से उसके समाधान के बारे में चिन्तन जारी रखता है।

3. प्रबोधन - यह चिन्तन की अगली अवस्था है जिसमें व्यक्ति को अचानक समस्या का समाधान दिखाई पड़ जाता है सिलवरमैन (1978) के अनुसार "समाधान के अकस्मात् अनुभव को प्रबोधन कहा जाता है"।यह अवस्था प्रत्येक सृजनात्मक चिन्तन में पाई जाती है। उद्भवन अवस्था में जब व्यक्ति अचेतन रुप से समस्या के भिन्न-भिन्न पहलुओं को पुर्नसंगठित करते रहता है तो अचानक उसे समस्या का समाधान नजर आ जाता है। प्रबोधन की घटना सूझ के समान है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति में उद्भवन की अवस्था के बाद प्रबोधन की अवस्था कभी भी उत्पन्न हो सकती है। यहाँ तक की कभी-कभी व्यक्ति को सपने में भी प्रबोधन का अनुभव होते पाया गया है।
4. प्रमाणीकरण या सम्बोधन - यह सृजनात्मक चिन्तन की चौथी अवस्था है। इस अवस्था में प्रबोधन की अवस्था से प्राप्त समाधान का मूल्यांकन किया जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति यह देखने की कोशिश करता है कि उसे जो समाधान प्राप्त हुआ है वह ठीक है अथवा नहीं। जाँच करने के बाद जब व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि समाधान सही नहीं था तो वह सम्पूर्ण कार्यविधि का संशोधन करता है और पुन: दूसरे समाधान की खोज करता है। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि सृजनात्मक चिन्तन की चार अवस्थाएं है जो एक निश्चित क्रम में होती हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इन अवस्थाओं की आलोचना की और कहा कि सभी सृजनात्मक चिन्तन में ये सभी अवस्थाएं नहीं होती है।

उपर्युक्त अवस्थाएँ सुनिश्चित एंव परिवर्तनशील नहीं है। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक सृजनशील चिंतक इन्हीं अवस्थाओं का अनुसरण करें। किसी चिंतक को उद्भवन की अवस्था से पहले भी समस्या का समाधान प्राप्त हो सकता है। यह भी हो सकता है कि चिंतक को इन अवस्थाओं का अनुसरण करने पर भी समस्या का समाधान का समाधान प्राप्त न हो और उसे इन्हीं अवस्थाओं की कई बार पुनरावृत्ति करनी पड़े। फिर भी ये सोपान महान

सृजनशील चिंतकों द्वारा अभिव्यक्त उच्चतम सृजनात्मक प्रक्रिया के वैज्ञानिक स्वरूप का विधिवत प्रतिनिधित्व करतें हैं।

4.7 सृजनात्मक बालक कीविशेषताएँ

सृजनात्मक बालक के व्यवहार में प्राय: निम्न गुणों एवं विशेषताओं की झलक मिलती है-

1. विचार और कार्य में मौलिकता का प्रदर्शन।
2. व्यवहार में आवश्यक लचीलेपन का परिचय।
3. विस्तारीकरण की प्रवृति पाई जाती है अर्थात वह अपने विचारों कार्यों एवं योजनाओं के अत्यंत सूक्ष्म पहलुओं पर ध्यान देता हुआ हर बात को अधिक विस्तार से कहना और करना चाहता है।
4. वह समायोजन में सक्षम होता है एवं उसकी सहासिक कार्यों में प्रवृति होती है।
5. वह एकरसता और उबाऊपन की अपेक्षा कठिन और टेढ़े-में ढ़े जीवन पथ से आगे बढ़ना पसन्द करता है।
6. जटिलता, अपूर्णता असमरूपता के प्रति उसका लगाव होता है और वह खुले दिमाग से सोचने में विश्वास रखता है।
7. उसकी स्मरण शक्ति अच्छी होती है और उसके ज्ञान का दायरा भी विस्तृत होता है।
8. उसमें चुस्ती सजगता, ध्यान एवं एकाग्रता की प्रचुरता होती है।
9. उसमें स्वयं निर्णय लेने की पर्याप्त योग्यता होती है।
10. वह अस्पष्ट गूढ एवं अव्यक्त विचारों में रूचि रखता है।
11. समस्याओ के प्रति उसमें उच्च स्तर की संवेदना पाई जाती है।
12. उसकी विचार अभिव्यक्ति में अत्यधिक प्रवाहात्मकता पाई जाती है।
13. उसमें अपने सीखने या प्रशिक्षण को एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में स्थानान्तरण करने की योग्यता पाई जाती है।
14. उसके सोचने-विचारने के ढंग में केन्द्रीयकरण एवं रूढिवादिता के स्थान पर विविधता एवं प्रगतिशीलता पाई जाती है।
15. उसमें उच्च स्तर की सौन्दर्यात्मक अनुभूति, ग्राह्‌ता एवं परख क्षमता पाई जाती है।

16. समस्या के किसी नवीन हल एवं समाधान तथा योजना के किसी नवीन प्रारूप का उसकी ओर से सदैव स्वगत ही किया जाता है और इस दिशा में वह स्वयं भी अथक प्रयास करता रहता है।
17. अन्य सामान्य बालकों की अपेक्षा उसमें आत्म-सम्मान के भाव और अहं के तृष्टिकरण की आवश्यकता कुछ अधिक ही पाई जाती हे। वह आत्म-अनुशासित होता है। वह अपने व्यवहार और सृजनात्मक उत्पादन में विनोदप्रियता आनद उल्लास स्वच्छंद एवं स्वतंत्र अभिव्यक्ति तथा बौद्विक स्थिरता का प्रदर्शन करता है।
18. उसमें उच्च स्तर की विशेष कल्पनाशक्ति जिसे सृजनात्मक कल्पना का नाम दिया जाता है पाई जाती है।
19. विपरीत एवं विरोधी व्यक्तियों तथा परिस्थितियों को सहन करने तथा उनसे सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता भी उसमें पाई जाती है।
20. उसकी कल्पना एवं दिव्य स्वपनों का संसार भी काफी अदभुत एंव महान होता है।

4.8 बालकों में सृजनात्मकता विकसित करना

सृजनात्मकता सार्वभौमिक होती है। हममें से प्रत्येक अपनी बाल्यावस्था में कुछ न कुछ मात्रा में सृजनात्मकता के लक्षणों को प्रदर्शन करता है परन्तु आगे चलकर इनको भलि–भाँति पोषित और पल्लवित नहीं कर पाता। इस कमी को एक अच्छी शिक्षा व्यवस्था और पालन-पोषण के उचित तरीकों द्वारा दूर करने का प्रयास किया जा सकता है। एक अध्यापक को सृजनात्मक बालकोंकी पहाचान से संबधित सभी बातों का पर्याप्तज्ञान होना अत्यंत आवश्यक होता है। ताकि व समय से ही सृजनशील बालकों को सही पहचान कर उनकी सृजनात्मकता केविकास में भरपूर सहायोग प्रदान कर सके।प्रवाह,मौलिकता, लचीलापन, विविध-चिंतन ,आत्म-विश्वास, संवेदनशीलता संबंधों को देखने तथा बनाने की योग्यता- आदि कुछ ऐसी योग्यताएँ है जिनका विकास सृजनात्मकता के विकास में सहायक सिद्ध हो सकता है। इन योग्यताओं को विकसित करने के लिए निम्नलिखित सुझाव सहायक सिद्ध हो सकते हैं -

1. उत्तर देने की स्वतन्त्रता- अक्सर देखा जाता हे कि अध्यापक और माता-पिता अपने बच्चों से पुराने या प्रचलित उत्तर की आशा रखते हैं। इससे बच्चों में सृजनात्मकता

विकसित नहीं होती है,अतः हमें बच्चों को उत्तर देने के लिए पर्याप्त स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिए ।

2. अभिव्यक्ति के लिए अवसर-अभिव्यक्ति की भावना बच्चों को अत्यधिक संतुष्टि प्रदान करती है। वस्तुतः वे तभी सृजनात्मक कार्यों में निश्चित रूप से जुटते हैंजब उनमें उनका अहं निहित हो अर्थात जब वे अनुभव करें कि उनके प्रयासों से ही अमुक सृजनात्मक कार्य सभव हो सका है। अतः हमें बच्चों को ऐसे अवसर प्रदान करने चाहिए जिनसे उन्हें अनुभव हो कि सृजन उनके द्वारा ही सम्पन्न हुआ है।
3. मौलिकता तथा लचीलेपन को प्रोत्साहित करना- बच्चों में किसी भी रूप में विद्यमान मौलिकता को प्रोत्साहित करना चाहिए। किसी समस्या का समाधान करने समय या किसी काम को सीखते समय यदि वे अपनी विधियों को परिवर्तित करना चाहते हैं तो उनको प्रोत्साहन मिलना चाहिए ।उन्हें प्रचलित तरीकों से हटकर काम करने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।
4. उचित अवसर एवं वातावरण प्रदान करना-बच्चों में सृजनात्मकता को बढ़ावा देने के लिए स्वस्थ एवं उचित वातावरण की व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक है। बच्चे की जिज्ञासा तथा सहनशीलता को किसी भी सूरत में दबाना नहीं चाहिए। सृजनशील अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करने के लिए हम पाठय-सहगामी क्रियाओं, सामाजिक उत्सवों धार्मिकमें लों प्रदर्शनों आदि का प्रयोग कर सकते हैं। नियमित कक्षा-कार्य को भी इस प्रकार व्यवस्थित किया जा सकता है। जिससे बच्चों में सृजनात्मक चितंन का विकास हो।
5. समुदाय के सृजनात्मक साधनों का प्रयोग करना- बच्चों को सृजनात्मक-कला केन्दों तथा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक निर्माण-केन्द्रों की यात्रा करनी चाहिए। इससे उन्हें सृजनात्मक कार्य करने की प्रेरणा मिलेगी। कभी-कभी कलाकारो वैज्ञानिको तथा अन्य सृजनशील व्यक्तियों को भी स्कूल में आमंत्रित करना चाहिए। इस प्रकार बच्चों के ज्ञान-विस्तार में सहायता मिल सकती है और उनमें सृजनशीलता को बढ़ावा दिया जा सकता है।
6. सृजनात्मकचितंन के अवरोधों से बचना-परम्परावादिताशिक्षण की त्रृटिपूर्ण विधियाँ,असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार,परंपरागत कार्य आदतें पुराने विचारों आदर्शों और दुराग्रह और नवीन के प्रति भय ,छोटे-छोटे प्रत्येक कार्य में उपलब्धि की उच्च

स्तर की मांग, परीक्षा में अधिक अंक अर्जित करने का दबाव,बालकों को लीक से हटकर सोचने या कार्य करने को निरूत्साहित करना आदि ऐसे अनेक कारण और परिस्थितियाँ हैंजिनसे बालकों में सृजनात्मकता के विकास और पोषण में बाधा पहुँचती है। अतः अध्यापक और अभिभावकों का यह कर्तव्य है कि वे इन सभी कारणों और परिस्थितियों से बालकों की सृजनात्मकता को नष्ट होने से बचाने के लिए हर संभव प्रयत्न करें।

7. मूल्यांकन प्रणाली में सुधार- जो कुछ भी विद्यालय में पढ़ा और पढ़ायाजाता है वह सब प्रकार से परीक्षा केंद्रित होता है। अतः जब तक परीक्षा और मूल्यांकन के ढाचें में अनुकूल परिवर्तन नहीं आता तब तक किसी भी शिक्षा व्यवस्था के द्वारा सृजनात्मकता का पोषण नहीं किया जा सकता। परीक्षा प्रणाली में उन सभी बातों का समावेश करना चाहिए जिनेक द्वारा विद्यार्थियों को ऐसे अधिगम अनुभव अर्जित करने के लिए प्रोत्साहन मिले जो सृजनात्मकता का पोषण और विकास करते हों।
8. पाठयक्रम अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः विद्यालय पाठयक्रम को इस प्रकार आयोजित किया जाना चाहिएकि वह बालकों में अधिक से अधिक सृजनात्मकता विकसित करने में सहायक सिद्ध हो सके। पाठयक्रम काफी लचीला होना चाहिएऔर उसमें परीक्षा और मूल्यांकन की आवश्यकता से परे हटकर कुछ और पढ़ने-पढ़ाने एवं करने की पर्याप्त स्वतंत्रता होनी चाहिए।संक्षेप में पाठयक्रम का आयोजन सब प्रकार से इस तरह किया जाना चाहिए कि उसके द्वारा सृजनशीलता में सहायक विभिन्न गुणोंका विकास में भरपूर सहयोग मिल सके।
9. श्रमशीलता आत्म-निर्भरता आत्म-विश्वास-आदि कुछ ऐसे गुण हैं जो सृजनात्मकता में सहायक होते हैं। बच्चों में इन गणों का निर्माण करना चाहिए ।
10. सृजनात्मकता के विकास के लिए विशेष तकनीकों का प्रयोग- सृजनात्मकता के क्षेत्र में कार्य कर रहे अनुसंधानकर्ताओं ने बालकों में सृजनात्मकता के विकास के लिए जिन विशेष तकनीकों एवं विधियों का उपयोग उचित ठहराया है। इनमें से कुछ का उल्लेख हम नीचे कर रहे हैं ।
    i. मस्तिष्क उद्वेलनBrain Storming- मस्तिष्क उद्वेलन एक ऐसी तकनीक एवं विद्या है जिसके द्वारा किसी समूह विशेष से बिना किसी रोक-टोक

आलोचना मूल्यांकन या निर्णय की परवाह किए बिना किसी समस्या विशेष के हल के लिए विभिन्न प्रकार के विचारों एवं समाधानों को जल्दी-जल्दी प्रस्तुत करने के लिए कहा जाता है और फिर विचार विमर्श के बाद उचित हल एंव समाधान तलाशने का प्रयत्न किया जाता है।

ii. शिक्षण प्रतिमानो का प्रयोग Use of Teaching Models- शिक्षा शास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित कुछ विशेष शिक्षण प्रतिमानों का प्रयोग भी बालकों की सृजनशीलता के विकास में पर्याप्त योगदान दे सकता है। उदाहरण के लिए ब्रूनर का संप्रत्यय उपलब्धि-प्रतिमान संप्रत्ययों को ग्रहण करने के अलावा बालकों को सृजनशील बनाने में भी सहयोग देता है और इसी तरह सचमैन का पूछताछ प्रशिक्षण प्रतिमान वैज्ञानिक ढंग से पूछताछ करने के कौशल को विकसित करने के अतिरिक्त सृजन में सहायक विशेष गुणों को विकसित करने में पर्याप्त सहायता करता है।

iii. क्रीड़न तकनीकों का प्रयोग Use of Gaming Technique- खेल-खेल में ही सृजनात्मकता का विकास करने की दृष्टि से क्रीड़न तकनीकों का अपना एक विशेष स्थान है। इस कार्य हेतु इन तकनीकों में जो प्रयोग सामग्री काम में लाई जाती है वह शाब्दिक और अशाब्दिक दोनो ही रूपों में होती है। इस प्रकार की क्रीड़नसामग्री द्वारा बालकों को खेल-खेल में ही निर्माण एवं सृजन के लिए जो बहुमूल्य अवसर प्राप्त होते हैं उन सभी का उनकी सृजनशीलता के विकास एवं पोषण हेतु पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

4.9 सृजनात्मकता परीक्षण

बुद्धिमापन के लिए जिस प्रकार हम बुद्धि –परीक्षणों का प्रयोग करते हैं वैसे ही सृजनात्मकता की परखके लिए हम सृजनात्मक परीक्षणों का प्रयोग कर सकते हैं । इस कार्य के लिए विदेशोंमें तथा अपने देश में विभिन्न मानकीकृत उपयोगी परीक्षण मौजूद हैं। इनमें से कुछ काउल्लेख नीचे किया जा रहा है।

1. मानकीकृत विदेशी परीक्षण
   i. मिनीसोटा सृजनात्मक चिंतन परीक्षण

ii. गिलफोर्ड का बहु-विध चिंतन उपकरण
iii. रिमोट ऐसोशियेशन परीक्षा
iv. बालक एवं कॉरगन का सृजनात्मकता उपकरण
v. सृजनात्मक योग्यता का ए0सी0परीक्षण
vi. टौरेन्स का सृजनात्मक चिंतन परीक्षण

2. भारत में मानकीकृत परीक्षण

i. बकर में हदी सृजनात्मक चिंतन परीक्षण-हिन्दी एवंअग्रजी
ii. पासी सृजनात्मक परीक्षण
iii. शर्मा बहु-विध उत्पादन योग्यता परीक्षण
iv. सक्सेना सृजनात्मक परीक्षण

जैसा कि पहले बतायाजा चुका है सृजनात्मकता बहुत सारी योग्यताओं और व्यक्तित्व आदि गुणों का एक जटिल सम्मिश्रण है। उपरोक्त वर्णितपरीक्षणों के माध्यम से सृजनात्मकता के लिए आवश्यक विशेषगुणोंतथा विशेषताओं की उपस्थितिका अनुमान लगाने का प्रयत्न इन परीक्षणों में शामिल शाब्दिक तथा अशाब्दिक प्रश्नों तथा कार्यात्मक व्यवहार से किया जाता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5. सृजनात्मकता के चार प्रमुख तत्वों के नाम लिखिए।
6. सृजनात्मकता की चार अवस्थाओंके नाम लिखिए।
7. सृजनात्मक बालक किन्हीं दो विशेषताओं को लिखिए।
8. सृजनात्मकता के विकास के लिए विशेष तकनीक एवं विधियों के नाम लिखिए।
9. किन्हीं दो मानकीकृत विदेशी सृजनात्मकता परीक्षणों के नाम लिखिए।
10. किन्हीं दो भारत में मानकीकृत सृजनात्मकता परीक्षणों के नाम लिखिए।

4.10 सारांश

सृजनात्मकता से अभिप्राय व्यक्ति विशेष की उस विलक्षण संज्ञानात्मक क्षमता या योग्यता से होता है जिसके द्वारा वह किसी नवीन विचार या वस्तु का सृजन करने उसकी खोज या

उत्पादन करने में कामयाब रहता है। सृजनात्मक सार्वभौमिक होती है तथा प्रकृति प्रदत होने के साथ-साथ प्रशिक्षण द्वारा भी इसे विकसित किया जा सकता है।

इसकी अभिव्यक्ति का क्षेत्र बहुत अधिक व्यापक होता है। इसके प्रमुख अवयवों तथा तत्वों के रूप में हम प्रवाहात्मक विचारधारा मौलिकता, लचीलापन, विविधतापूर्णचिंतन, आत्मविश्वास, संवेदनशीलता संबंधों को देखने तथा बनाने की योग्यता आदि की चर्चा कर सकते हैं।

सृजनात्मक प्रक्रिया में कुछ विशष्टि एंव निश्चित सोपानों का समावेश रहता है। इन सोपानों का इसी क्रम में उपस्थित रहना आवश्यक नहीं है परन्तु फिर भी इनके द्वारा सृजनशील चिंतकोंद्वारा अभिव्यक्त उच्चतम सृजनात्मक प्रक्रिया के स्वरूप का विधिवत प्रतिनिधत्व हो सकता है।

सृजनात्मक बालकों की पहनचान हेतु दो प्रकार के साधनों जैसे-सृजनात्मक परीक्षण तथा सृजनात्मक व्यवहार को जाँचने वाली अन्य तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है। सृजनात्मक परीक्षणों से सृजनात्मकता का निदान उसी रूप में सभव है। जैसे कि बुद्धि -परीक्षणों द्वारा बुद्धि की जाँच के लिए किया जाता है। ऐसे परीक्षणों के उदाहरण रूप में हम टौरैन्स के सृजनात्मक चिंतन परीक्षण बकर मेंहन्दी सृजनात्मक चिंतन परीक्षण पासी सृजनात्मक परीक्षण आदि का नाम ले सकते हैं।

विशेष प्रयत्नों तथा उचित शिक्षा-दीक्षा से बालकों में अन्तःनिहित सृजनात्मकता को विकसित किया जा सकता है। ऐसे कुछ उपायो में हम जिनका प्रमुख रूप से उल्लेख कर सकते हैं। वे हैं- बालकों को उत्तर देने की स्वतंत्रता प्रदान करना, उन्हें अपने अहं तथा सृजनात्मक अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करना उनकी मौलिकता तथा लचीलेपन को प्रोत्साहित करना सृजनात्मक चिंतन के अवरोधों से बचाना पाठयक्रम के उचित आयोजन शिक्षण विधियों तथा मूल्यांकन प्रणाली में सुधार पर ध्यान देना, समुदाय के सृजनात्मक साधनों का प्रयोग करना तथा अपना उदाहरण एंव आर्दश प्रस्तुत करना तथा सृजनात्मकता के विकास से सम्बन्धित नवीनतम तकनीकों जैसे मस्तिष्क उद्वेलन आदि की सहायता लेना।

4.11 शब्दावली

1. अभिसारी चिन्तन -दिएगए तथ्यों के आधार पर किसी पूर्व निश्चित क्रम में चिन्तन करना।
2. अपसरण चिन्तन - भिन्न-भिन्न दशाओं में चिन्तन करना ।

3. प्रवाह-प्रवाह से तात्पर्य किसी दी गई समस्या पर अधिकाधिक विचारों या प्रत्युत्तरों की प्रस्तुति से है।
4. लचीलापन- लचीलापन से अभिप्राय किसी समस्या पर दिएगए प्रत्युत्तरों या विकल्पों में एक- दुसरे से भिन्नता से है।
5. मौलिकता- मौलिकता से अभिप्राय व्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत किएगए विकल्पों या उत्तरों का असामान्य अथवा अन्य व्यक्तियों के उत्तरों से भिन्न होने से है। मौलिकता मुख्यत: नवीनता से सम्बंधित होती है।
6. विस्तारण- विस्तारण का अभिप्राय दिएगए विचारों या भावों की विस्तृत व्याख्या, व्यापक पूर्ति या गहन प्रस्तुतीकरण है

4.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नो के उत्तर

1. ड्रैवडाहल के अनुसार "सृजनात्मकता व्यक्ति की वह योग्यता हे जिसके द्वारा वह उन वस्तुओं या विचारों का उत्पादन करता है जो अनिवार्य रूप से नए हो और जिन्हें वह व्यक्ति पहले से न जानता हो"
2. सार्वभौमिक
3. गिलफोर्ड ने सृजनात्मकचिन्तन को निम्न दो भागों में बांटा है-
   i. अभिसारी चिन्तन
   ii. अपसरण चिन्तन
4. अपसरण चिन्तन
5. सृजनात्मकता के चार प्रमुख तत्वों के नाम हैं-प्रवाह, लचीलापन, मौलिकता, विस्तारण।
6. सृजनात्मकता की चार अवस्थाओंके नाम हैं- आयोजन, उद्भवन, प्रबोधन , प्रमाणीकरण या सम्बोधन
7. सृजनात्मक बालक की दो विशेषताएँ निम्न हैं-
   i. विचार और कार्य में मौलिकता का प्रदर्शन।
   ii. व्यवहार में आवश्यक लचीलेपन का परिचय।
8. सृजनात्मकता के विकास के लिए विशेष तकनीक एवं विधियों के नाम हैं-
   i. मस्तिष्क उद्वेलन
   ii. शिक्षण प्रतिमानो का प्रयोग
   iii. क्रीड़न तकनीकों का प्रयोग
9. दो मानकीकृत विदेशी सृजनात्मकता परीक्षणों के नाम हैं-
   i. मिनीसोटा सृजनात्मक चिंतन परीक्षण
   ii. गिलफोर्ड का बहु-विध चिंतन उपकरण

10. भारत में मानकीकृत दोसृजनात्मकता परीक्षणों के नाम हैं-
    i. बकर मेंहदी सृजनात्मक चिंतन परीक्षण-हिन्दी एवं अंग्रेजी
    ii. पासी सृजनात्मक परीक्षण

4.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मंगल, एस0 के0 (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली, प्रैंटिस हाल ऑफ इंडिया।
2. सिंह,ए0के0 (2007): उच्चतर मनोविज्ञान, वाराणसी, मोतीलाल बनारसी दास।
3. पाण्डा, अनिल कुमार (2011), शिक्षा मनोविज्ञान , साहित्य रत्नालय, कानपुर
4. सिंह,ए0के0 (2007): शिक्षा मनोविज्ञान, पटना, भारती भवन पब्लिशर्स।
5. अग्रवाल, सन्ध्या(2005), विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी

4.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. सृजनात्मकता क्या है? सृजनात्मकता की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
2. सृजनात्मकता को परिभाषित कीजिए। सृजनात्मकता विकसित करने के लिए विद्यालयों में क्या प्रावधान किए जाने चाहिए?
3. सृजनात्मकता की प्रकिया को स्पष्ट कीजिए। सृजनात्मकता के तत्वों का वर्णन कीजिए।
4. सृजनात्मकता के विकास के लिए विशेष तकनीक एवं विधियों का वर्णन कीजिए।

इकाई– 5 – कक्षाकक्ष शिक्षण एवं अधिगम के लिए उपयोगिता

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 स्किनर के सिद्धांत की कक्षा-शिक्षण एवं अधिगम में उपयोगिता
5.4 थार्नडाइक के सिद्धांत की कक्षा-शिक्षण एवं अधिगम में उपयोगिता
5.5 पियाजे के सिद्धांत की कक्षा-शिक्षण एवं अधिगम में उपयोगिता
5.6 वाइगोत्सकी के सिद्धांत की कक्षा-शिक्षण एवं अधिगम में उपयोगिता
5.7 वन्दूरा के सिद्धांत की कक्षा-शिक्षण एवं अधिगम में उपयोगिता
5.8 कोहलरबर्ग के सिद्धांत की कक्षा-शिक्षण एवं अधिगम में उपयोगिता
5.9 सारांश
5.10 शब्दावली
5.11 स्वमूल्यंकित प्रश्नों के उत्तर
5.12 संदर्भ ग्रन्थ
5.13 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

एक को विभिन्न कार्यों में संलग्न रखने के लिए अधिगम एक बहुत महत्वपूर्ण गतिविधि है। यह शैक्षिक प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण भाग है। हजारों वर्षों से दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक अधिगम की प्रकृति को ही समझते रहे हैं। अधिगम कैसे होता है? और एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से शिक्षण के समय कैसे सीख जाता है? इसके लिए अधिगम के विभिन्न सिद्धांतों का विकास हुआ । विभिन्न अधिगम सिद्धांतों के विकास के साथ जैसे- व्यवहारवाद, संज्ञानात्मकवाद, संरचनावाद और neuro-Education शिक्षण अधिगम में बहुत परिवर्तन आया है। 21 वीं सदी में शिक्षण अधिगम की सर्वश्रष्ठ विधि संरचनावाद (constructivism) को माना गया है। यदि हम अधिगम के सिद्धांतों के विभिन्न विकासात्मक स्तर को देखें तो

हम देखते हैं एक सिद्धांत में कमियों (drawback) के कारण ही अधिगम के दूसरे सिद्धांतों का विकास हुआ है। अधिगम के लिए सबसे आधुनिक अध्ययन के लिए हरमन एबिंगहस (Hermann Ebbinghaus) को उनके यादाश्त(memory) अध्ययन के लिए जाना जाता है, जो 1885 में प्रकाशित हुई। दूसरा लघु शोध थोर्नडाइक का समस्या समाधान पर था जो 1898 में प्रकाशित हुआ। पावलोव का सम्बद्ध सहज प्रतिक्रिया (classical conditioning) 1899 में प्रारंभ हुआ लेकिन अंग्रजी में सर्वप्रथम 1927 में प्रकाशित हुआ। इन सिद्धांतों द्वारा मानव व्यवहार की व्याख्या की गई इसलिए इन्हें व्यवहारवादी सिद्धांत कहते हैं। वायगोत्सकी(1896-1934) जो एक रूसी मनोवैज्ञानिक था, उसके अध्ययन ने नए अधिगम सिद्धांत का प्रतिपादन किया। 1960 के दशक में यह माना गया कि व्यक्ति दूसरों को अवलोकन करके सीखते हैं। 1963 में अल्बर्ट बंडूरा (Elbert Bandura) और आर.एच.वाल्टर (R.H.walters) ने सामाजिक अधिगम सिद्धांत अपनी किताब में प्रकाशित किया। 1980 में सामाजिक-संज्ञानात्मक सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ, जिसमें मानसिक क्रियाएं तथा कठिन चीजों(complex material) को समझने पर ध्यान दिया गया। इन सभी सिद्धांतों के बारे में आप इकाई 2 में विस्तृत रूप से अध्ययन कर चुके हैं।

सीखने के विभिन्न सिद्धांत अलग अलग परिस्थितियों में सीखने की प्रक्रियाओं पर प्रकाश डालते हैं परन्तु, अपने आप में कोई भी सिद्धांत सीखने की सम्पूर्ण प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से व्याखित करने में सक्षम होता नहीं दिखाई देता है। अतः विभिन्न सिद्धांतो के सम्मिलित अध्ययन के उपरांत ही सीखने की प्रक्रिया को समझा जा सकता है। व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धांत के तहत थार्नडाइक द्वारा प्रतिपादित प्रयास एवं त्रुटि के सिद्धांत का सकारात्मक शैक्षणिक महत्व है। थार्नडाइक के अनुसार केवल पशु – पक्षी ही नहीं बल्कि मनुष्य में भी सीखने की प्रक्रिया बार-बार प्रयत्न करने और भूल सुधर कर आगे बढने के रूप में संपन्न होती है। यह नितांत आवश्यक है कि समय-समय पर मनोविज्ञानियों द्वारा प्रदत्त विभिन्न अधिगम सिद्धान्तों का धरातलीय रूप में क्रियान्यवन किया जाना चाहिए। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् छात्र विभिन्न अधिगम सिद्धांतो का कक्षा-कक्ष में व्यवहारिक प्रयोग करते हुए प्रभावी शिक्षण के माध्यम से सीखने एवम् व्यवहार परिवर्तन को सरलतम रूप प्रदान कर छात्रों की त्वरित आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ सीखने की प्रक्रिया को सबलता से कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

1. स्किनर के सिद्धांत की कक्षा-शिक्षण एवं अधिगम में उपयोगिता को समझ सकेंगे।

2. थार्नडाइक के सिद्धांत की कक्षा-शिक्षण एवं अधिगम में उपयोगिता को समझ सकेंगे।
3. पियाजे के सिद्धांत की कक्षा-शिक्षण एवं अधिगम में उपयोगिता को समझ सकेंगे ।
4. वाइगोत्सकी के सिद्धांत की कक्षा-शिक्षण एवं अधिगम में उपयोगिता को समझ सकेंगे।
5. बन्डूरा के सिद्धांत की कक्षा-शिक्षण एवं अधिगम में उपयोगिता को समझ सकेंगे।
6. कोहलरबर्ग के सिद्धांत की कक्षा-शिक्षण एवं अधिगम में उपयोगिता को समझ सकेंगे ।

5.3 स्किनर के सिद्धान्त की कक्षा शिक्षण व अधिगम में उपयोगिता

स्किनर के अनुसार सक्रिय अनुबंधन से अभिप्राय एक ऐसी अधिगम प्रक्रिया से है जिसके द्वारा सक्रिय व्यवहार की सुनियोजित पुनर्बलन द्वारा पर्याप्त बल मिल जाने के कारण वांछित रूप में जल्दी-जल्दी पुनरावृति होती रहती है और सीखने वाला अंत में जैसा व्यवहार सिखाने वाला चाहता है, वैसा सीखने में समर्थ हो जाता है। सक्रिय अनुबंधन सिद्धांत की शैक्षणिक उपयोगिता रचनात्मकता के आधार पर अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस सन्दर्भ में निम्नांकित उपयोगिताओं को दृष्टिगत रखा जा सकता है।

1. शिक्षकों को चाहिए कि सीखने की प्रक्रिया और परिस्थितिओं को इस प्रकार से सुनियोजित किया जाए कि छात्रों को उचित पृष्ठपोषण के साथ-साथ समुचित पुनर्बलन मिलता रहे और वे इस पुनर्बलन के प्रोत्साहन से निर्बाध रूप से बिना असफलता और निराशा के सीखते रहे।
2. सक्रिय अनुबंधन सिद्धांत का छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन हेतु उचित प्रयोग किया जा सकता है। पुनर्बलन के संतुलित एवं समयबद्ध प्रयोग से छात्रों में सकारात्मक व्यवहार परिमार्जन कर उनमें अपेक्षित व्यवहार की पुनरावृति की दर को बढ़ाते हुए सीखने हेतु प्रेरित किया जा सकता है।
3. एक प्रभावशाली व्यक्तित्व के विकास में सक्रिय अनुबंधन सिद्धांत की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण है। छात्रों के व्यक्तित्व को उनकी योग्यताओं के अनुरूप सांचे में ढालने

के लिए उनकी अच्छी और सबल क्रियाओं को प्रोत्साहित अथवा पुरुस्कृत कर व्यक्तित्व को पुष्ट एवं सबल बनाया जा सकता है।

4. छात्रों के अवांछनीय व्यवहार को उपेक्षित अथवा नकारात्मक पुनर्बलन के द्वारा विलुप्त किया जा सकता है। विलुप्तिकरण की इस प्रक्रिया में वांछित व्यवहार को निरंतर पुनर्बलन प्रदान करते हुए अवांछित व्यवहार को पूर्णतया ख़त्म किया जा सकता है।
5. स्कीनर द्वारा प्रतिपादित शिक्षण मशीन में फ्रेम में कथन क्रमानुसार तैयार किए गए हैं । विद्यार्थी जब मशीन के यंत्र को दबाता है यों उसका उत्तर आगे आ जाता है।
6. वांछित अनुक्रियाओं के प्रबलीकरण से छात्रों को प्रोत्साहन मिलता है । शिक्षक वांछित क्रिया का प्रबलीकरण प्रशंसा तथा अच्छे अंक देकर कर सकता है ।
7. सीखने के क्षेत्र में अभिक्रमित अनुदेशन अभी तक महत्वपूर्ण विधि विकसित हुई है । इस विधि को operant theory द्वारा गति प्रदान इया जा सकता है ।
8. यह सिद्धांत अभिप्रेरणा पर भी बल देता है । इसलिए में पढाई जाने वाली विषयवस्तु का उद्देश्य स्पष्ट करके उन्हें सीखने के लिए सदा प्रेरित करना चाहिए ।
9. क्रिया प्रसूत का आधार अनुकूलन है । स्किनर ने इस सिद्धांत के आधार पर अनुकूलन को आगे बढ़ाया है । यह निरीक्षणात्मक अधिगम है । यह सिद्धांत मनोरोगियों, पशु पक्षियों तथा बालकों पर तो लागू होता है ,विवेकशील प्राणियों पर नहीं ।

5.4 थार्नडाइक के सिद्धान्त की कक्षा शिक्षण एवं अधिगम में उपयोगिता

(सीखना सम्बन्ध स्थापित करना है । इसका कार्य मनुष्य का मस्तिष्क करता है- थार्नडाइक) थार्नडाइक ने अपने सिद्धांत के आधार पर तीन नियम बनाए – तत्परता का नियम, अभ्यास का नियम, परिणाम का नियम । ये तीनों ही नियम शिक्षण एवं अधिगम के लिए महत्वपूर्ण हैं ।

1. एक कुशल एवं दक्ष अध्यापक को सर्वप्रथम अपने विद्यार्थिओं की समस्त योग्यताओं से सुपरिचित होना चाहिए ताकि वो उन योग्यताओं से सम्बंधित उचित उद्दीपन और अनुक्रियाओं का चयन कर उन्हें पुनरावृति, अभ्यास कार्य ,प्रशंसा तथा पुरुस्कार की सहायता से उन योग्यताओं को अधिक स्थाई बना सके। ठीक इसके विपरीत अध्यापक छात्रो की उन नकारात्मक चीजों को हटाने अथवा भुलाने हेतु उन उद्दीपन और

अनुक्रियाओं का चयन कर उन्हें , अनुपयोग, निंदा तथा दण्ड और नकारात्मक पुनर्बलन द्वारा दूर किया जा सकता है।

2. तत्परता के नियमानुसार अधिगम प्रक्रिया से पूर्व छात्रों को सीखने हेतु अभिप्रेरित किया जाना नितांत आवश्यक है। छात्र जिस ज्ञान को प्राप्त करना चाहता है उसके लिए उसमे पर्याप्त अभिरुचि तथा रूचि होनी आवश्यक है। तत्परता के चलते छात्र द्वारा अर्जित ज्ञान अधिक स्थाई व सुस्पष्ट रहता है।
3. अध्यापक को छात्रों के पूर्व ज्ञान एवं अनुभव का उचित आंकलन कर उसका समुचित प्रयोग शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में करना चाहिए ताकि एक परिस्थिति में सीखा गया ज्ञान दूसरी समान परिस्थितियों में उपयोग समूल रूप से उपयोग में लाया जा सके।
4. छात्रों को 'करके सीखने' हेतु निरंतर प्रयासरत रहते हुए उन्हें अपना कार्य स्वयं करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। छात्रों को बारम्बार प्रयास करते हुए अपनी त्रुटियों को सुधारते हुए समस्या का सही समाधान निकालने हेतु प्रेरित करना नितांत आवश्यक है। इस प्रक्रिया सेन केवल छात्रों की मानसिक प्रक्रियाओं का परिष्करण होता है बल्कि अनुभव आधारित अधिगम से ज्ञान का स्थाईकरण भी दीर्घकाल तक रहता है।
5. मंद बुद्धि बालकों के लिए यह उपयोगी है । बालकों में धैर्य और परिश्रम के गुणों का विकास होता है ।
6. क्रो व क्रो – गणित, विज्ञान, तथा समाजशास्त्र जैसे गंभीर विषयों को सीखने में उपयोगी है।
7. कोलसनिक- लिखना, पढ़ना, गणित सिखाने में यह सिद्धांत उपयोगी है ।
8. इस सिद्धांत के अनुसार जो व्यक्ति उद्दीपकों और प्रतिक्रियाओं में जितने अधिक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है वह उतना ही अधिक बुद्धिमान हो जाता है ।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न :भाग 1

1. स्कीनर के अनुसार प्राणियों में कितने प्रकार के व्यवहार पाए जाते हैं?
2. सीखने के क्षेत्र में स्कीनर द्वारा विकसित विधि ..... है ।
3. क्रिया प्रसूत अधिगम में ..... का महत्त्व है ।
4. थार्नडाइक ने अपना प्रयोग ..... पर किया था ।
5. थार्नडाइक द्वारा अधिगम के कितने नियम प्रतिपादित किए गए ?

6. थार्नडाइक के अनुसार .....और ..... में सम्बन्ध स्थापित होता है ।

5.5 पियाजे के सिद्धान्त की कक्षा शिक्षण एवं अधिगम में उपयोगिता

पियाजे के अनुसार वातावरण के साथ अनुकूलन के लिए जैसे शरीर के पास शारीरिक संरचना होती है। वैसे ही मस्तिष्क, मनोवेज्ञानिक संरचनाओं के निर्माण द्वारा संवेदनाओं की सुसंगठित अनुभूति करता है जिसके फलस्वरूप वह बाहरी दुनिया से अनुकूलन करता है। इन सरंचनाओं के विकास के दौरान बच्चे बेहद सक्रिय रहते हैं और वे अनुभवों को चयनित कर वर्तमान सरंचनाओं के आधार पर इनका विश्लेषण करते हैं। प्याज़े के लिए प्रत्येक बच्चे की मानसिक वास्तविकता उसकी अपनी विशिष्ठ रचना है और यह उम्रानुसार बदलती रहती है। प्याज़े द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त का शिक्षा में, मुख्यत: पूर्व विद्यालय और पूर्व प्राथमिक विद्यालय स्तर में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है। कक्षा शिक्षण में प्याज़े के सिद्धान्त के निम्न उपयोगिता है।

1. खोज आधारित अधिगम पर महत्व

   कक्षा में छात्रों को अपने लिए खोजने हेतु वातावरण से सहज और स्वाभाविक अंत:क्रिया करने के लिए उन्हें प्रेरित और प्रोत्साहित करना चाहिए। छात्रों में ख़ोज और अन्नवेषण को प्रोत्साहितकरने हेतु शिक्षक द्वारा महज़ शाब्दिक और पूर्व से तैयार/ निर्मित ज्ञान प्रदान करने की अपेक्षा विविध, उच्च कोटि के रूचि आधारित क्रियाकलाप प्रारूपित किये जाने चाहिए। ये क्रियाएं छात्रों को स्वतंत्र रूप से स्वयं चुनने का अवसर प्रदान करती है और सीखने को प्रबलन प्रदान करती है।

2. बच्चों में सीखने के प्रति संवेदनशीलता

   कक्षा में विकास को अनावश्यक गति देने की अपेक्षा बच्चों में सामयिक चिंतन स्तर के आधार पर समुचित अधिगम अनुभवों को निर्मित किया जाना चाहिए। अध्यापक को छात्रों की गतिविधिओं को देखना और शालीनता से उनको सुनना चाहिए तत्पश्चात उनकी रूचि के अनुसार ही नवीन कौशल प्रदान करने चाहिए। ऐसा करने से उनमे रटने की प्रवृति की अपेक्षा वास्तविक बोध को बल मिलेगा और अधिगम स्थाई होगा। किसी भी दशा

में उन पर उनके इच्छा विरुद्ध कार्य/ अधिगम प्रक्रिया को थोपना नहीं चाहिए।

3. व्यक्तिगत भिन्नता को स्वीकारना

पियाजे के अनुसार सभी बच्चे विकास के एक समान क्रम से गुज़रते हैं परन्तु सभी की विकास दर भिन्न-भिन्न होती है। अतः अध्यापक को चाहिए की वो पूरी कक्षा की अपेक्षा प्रत्येक बच्चे अथवा छोटे-छोटे समूहों के लिए विशेष प्रयत्न कर उचित क्रियाकलापों का चयन करे और प्रत्येक की शैक्षिक प्रगति का मूल्यांकन उसके पूर्व के ज्ञान/ प्रगति से तुलना के आधार पर करे।

5.6 वायगोत्स्की के सिद्धान्त की कक्षा शिक्षण एवं अधिगम में उपयोगिता

बच्चे जब किसी क्रियाकलाप में लिप्त होते हैं उस दौरान वो विभिन्न कथन/ बोल बोलते हैं। पियाजे के अनुसार ये बोल बच्चे स्वयं से और स्वयं के लिए बोलते हैं और अहंकेन्द्रित /स्वकेंद्रित कथन होते हैं। परन्तु व्यगोत्स्की ने इन कथनों को बच्चों के व्यक्तिगत बोल के रूप में स्वीकार करते हुए ये माना है की इन विचारों की उत्पत्ति सामाजिक अंतःक्रिया के फलस्वरूप होती है। इसको केंद्रबिंदु मानते हुए व्यगोत्स्की ने समाजोसांस्कृतिक सिद्धांत का प्रतिपादन किया और इसके शैक्षिक निहितार्थ निम्नवत हैं।

1. वायगोत्स्की सिद्धान्त के अनुसार अध्यापकों को पारस्परिक शिक्षण विधि का प्रयोग करना चाहिए जिसमे अध्यापक और दो या चार छात्र एक साँझा अधिगम समूह बनाते हैं और चर्चा आधारित संवादों का आदान-प्रदान करते हैं। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप एक सामीप्य मण्डल अथवा क्षेत्र का विकास होता है और छात्र अपने चारों तरफ के वातावरण के साथ सक्रियात्मक भागीदारी करते हुए ज्ञानार्जन करते है। इस प्रक्रिया में मुख्यतः पढ़ने की समझ व बोध का विकास होता है।
2. व्यगोत्स्की एक ऐसे अधिगम के पक्षधर थे जिसमें छात्रों को समूह में आपस में चर्चा करने का एक स्वतंत्र अवसर प्रदान करते हुए सीखने का भरपूर अवसर मिले। उनके अनुसार एक ऐसे सीखने के वातावरण की संरचना की जानी चाहिए जिसमे छात्रों को समूहों में विभाजित कर उन्हें एक समान लक्ष्य

की ओर साथ मिलकर कार्य करने में सक्षम हों। अतः एक अध्यापक को चाहिए की उसे कक्षा में छात्रों के लघु समूह बनाकर सुनिश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु उनको अपने समाजोसांस्कृतिक परिवेश से प्राप्त अनुभवों के आधार पर संवाद हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न :भाग 2

1. पियाजे के अनुसार छात्रों को किस प्रकार के क्रियाकलाप करने चाहिए ?
2. प्रत्येक बच्चे की मानसिक वास्तविकता ..... के अनुसार बदलती रहती है।
3. बच्चे ज्ञान का ..... करते हैं।
4. वायगोत्स्की..... शिक्षण के पक्ष में थे।
5. वायगोत्स्की को उनके ..... अध्ययन के लिए जाना जाता है।

5.7 बनडूरा के सिद्धान्त की कक्षा शिक्षण एवं अधिगम में उपयोगिता

अल्बर्ट बनडूरा द्वारा प्रतिपादित सामाजिक अधिगम सिद्धान्त के अनुसार सीखना अथवा अधिगम एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है और यह प्रक्रिया सामाजिक सन्दर्भ में पूर्ण होती है। सामाजिक परिवेश में सम्पादित होने वाली यह प्रक्रिया या तो पुर्णतः अवलोकन या प्रत्यक्ष अनुदेशन के द्वारा पूर्ण होती है। कक्षा –कक्ष में शिक्षण को प्रभावशाली बनाने हेतु इस सिद्धान्त निम्नाकित उपयोगिताएँ हैं :

1. चूँकि कक्षा-कक्ष एक लघु समाज की तरह व्यवहार करती है और ऐसी स्थिति में एक कुशल अध्यापक को चाहिए कि अधिगम को केवल व्यवहारपरक ही न मानकर इसे सामाजिक परिप्रेक्ष्य में संज्ञानात्मक प्रक्रिया के रूप लेते हुए छात्रों को विभिन्न व्यवहारों का अवलोकन करने का पूरा-पूरा मौका देना चाहिए।
2. छात्र व्यवहारों को अवलोकित करते हुए एवं इन व्यवहारों के प्रभावों का अनुभव पुनर्बलन के आधार पर करते हुए अधिगम कर सकते हैं। अतः कक्षा-कक्ष में अध्यापक को चहिए की वह वांछित और अवांछित व्यवहारों को उचित पुनर्बलन

के आधार पर वर्गीकृत कर सकारात्मक अधिगम को प्रेरित करे ताकि छात्र प्राप्त ज्ञान का स्थाईकरण कर सके और वांछित व्यवहार को प्रभावी तरीके से प्रोत्साहित कर सके।

3. अध्यापकों, अभिभावकों और अन्य ऐसे लोगों द्वारा छात्रों के सम्मुख समुचित व्यवहार करना चाहिए और इस बात का सावधानीपूर्वक भयं रखना चाहिए की छात्र गलत व्यवहार को आदर्श के रूप में न ग्रहण करे।
4. शिक्षकों को चाहिए कि वो छात्रों को वास्तविक प्रत्याशाओं को प्राप्त करने में उनको प्रोत्साहित करते हुए पूरा सहयोग प्रदान करें।
5. छात्रों को कक्षा में जीवंत आदर्शों /प्रतिमानों जिसमे वास्तविक व्यक्तिओं द्वारा वांछित व्यवहारों का प्रदर्शन ,समुचित शाब्दिक अनुदेशनों जिसमे वांछित व्यवहारों का सम्पूर्ण विवरण और अनुदेश तथा प्रतिकात्मक यथा मीडिया ,सिनेमा, दूरदर्शन, इन्टरनेट, साहित्य,रेडियो के माध्यम से अधिगम दिया जाना चाहिए।

5.8 कोह्लबर्ग के सिद्धान्त की कक्षा शिक्षण एवं अधिगम में उपयोगिता

कोह्लबर्ग के अनुसार किसी भय अथवा सजा से भागने/बचने की प्रवृति छात्रों को नैतिकता के आधार पर व्यवहार करने हेतु प्रेरित करते हैं। नैतिक दुविधा प्रयोज्य को एक ऐसी पारस्परिक दुविधाजन्य स्थिति में ले आता है जिसमे उसे इस बात का निर्धारण करना पड़ता है की मुख्य क़िरदार ने क्या करना चाहिए और क्यों ? यह प्रश्न नैतिकता आधारित विकास को प्रोत्साहित करता है। उक्तानुसार कोह्लबर्ग के सिद्धान्त के कक्षा-कक्षीय उपयोगिताओं को निम्नाकित बिदुओं में स्पष्ट किया जा सकता है।

1. अध्यपकों को छात्रों की नैतिक परिपक्वता पर विशेष ध्यान ध्यान देना चाहिए। इसके लिए उन्हें छात्रों को नैतिक मूल्य आधारित शीर्षकों में अंतक्रिया का पूरा-पूरा अवसर प्रदान करना चाहिए।
2. विभिन्न सामाजिक मुद्दों विशेषतया नैतिकता से जुड़े प्रश्नों पर खुली बहस अथवा चर्चा का आयोजन किया जाना चाहिए।
3. कक्षाओं में अध्यापकों एवं छात्रों द्वारा लोकतांत्रिक जीवन शैली को प्रोत्साहित करने हेतु शैक्षिक कार्यक्रमों का आयोजन किये जाने चाहिए ।

4. शिक्षकों को छात्रों में उदारता, दयालुता, ईमानदारी ,सत्यता जैसे नैतिक गुणों के विकास हेतु विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न : भाग 3

1. अल्बर्ट बनडूरा ..... सिद्धांत केलिए जाने जाते हैं ।
2. बनडूरा के अनुसार अध्यापक को क्या करना चाहिए?
3. छात्रों को कक्षा में ..... उदहारण देने चाहिए ।
4. कोहलरबर्ग ..... के आधार पर व्यवहार करने हेतु प्रेरित करते हैं ।

5.9 सारांश

मनोविज्ञानियों ने अपने अथक प्रयासों एवं प्रयोगों के आधार पर बच्चों में सीखने की प्रवृति हेतु विभिन्न सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। सीखने के इन सिद्धांतों को मुख्यत: दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है।

1- व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धांत

2- ज्ञानात्मक एवं क्षेत्र संगठात्मक सिद्धांत

विभिन्न उद्दीपनों के प्रति सीखने वाले बालक की अपनी एक विशिष्ट अनुक्रिया होती है। इन उद्दीपनों तथा अनुक्रियाओं के साहचर्य से उसके व्यवहार में जो परिवर्तन होता है उसकी व्याख्या व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धांतों के आधार पर स्पष्ट रूप से किया जा सकता है।

ज्ञानात्मक एवं क्षेत्र संगठात्मक सिद्धांत सीखने की प्रक्रिया में उद्देश्यों, अन्त:दृष्टि और सूझबूझ के महत्व को प्रदर्शित प्रदर्शित करते है।

5.10 शब्दावली

वायगोत्सकी :

अल्बर्ट बनडूरा :

व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक-

संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक-

संरचनावादी मनोवैज्ञानिक-

5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

भाग 1 :

1. स्कीनर के अनुसार प्राणियों में दो प्रकार के व्यवहार पाए जाते हैं- अनुक्रिया(Respond) और क्रिया प्रसूत (Operant) ।
2. अभिक्रमित अनुदेशन ।
3. पुनर्बलन।
4. भूखी बिल्ली।
5. तत्परता का नियम, अभ्यास का नियम तथा परिणाम का नियम।
6. उद्दीपक और प्रतिक्रिया

भाग 2 :

1. उच्च कोटि के रूचि आधारित क्रियाकलाप
2. उम्र
3. सृजन
4. सह
5. .....

भाग 3 :

1. सामाजिक अधिगम सिद्धांत ।
2. .....
3. जीवंत
4. नैतिकता

5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- लौरा, इ .बर्क ,चाइल्ड डेवलपमेंट, थर्ड एडिशन, प्रेन्टिस हॉल ऑफ़ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड , नई दिल्ली।

2- मंगल,एस .के ., शिक्षा मनोविज्ञान, प्रेन्टिस हॉल ऑफ़ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड , नई दिल्ली।

3- भटनागर,ए.बी.;भटनागर.एम.;भटनागर,ए., अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया।

5.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. व्यगोत्स्की एवं पियाजे के अधिगम सिद्धांतो की कक्षा कक्ष उपयोगिता पर प्रकाश डालिए?
2. स्कीनर के क्रिया – प्रसूतअधिगम सिद्धांत को कक्षा-कक्ष में कैसे लागू करेंगे विस्तार से व्याख्या कीजिए।
3. थार्नडाइक के सिद्धान्त को कक्षा-कक्ष में किस प्रकार लागू करेंगे उदहारण सहित व्याख्या कीजिए।

इकाई-6 संवेदना एवं प्रत्यक्षण (Sensation and Perception)

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 संवेदना का अर्थ एवं परिभाषाएँ
6.4 संवेदना के गुण तथा विशेषताएं
6.41 सामान्य गुण
6.42 विशिष्ट गुण
6.5 संवेदी प्रक्रिया
6.6 संवेदना के प्रकार
6.7 प्रत्यक्षण का अर्थ एवं परिभाषाएँ
6.8 प्रत्यक्षण के सिद्धान्त
6.9 प्रत्यक्षण की विशेषताएं
6.10 सारांश
6.11 शब्दावली
6.12 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
6.13 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.14 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्राणी वातावरण में उपस्थित विभिन्न प्रकार के उद्दीपकों के प्रति तरह-तरह की प्रतिक्रियाएं करके धीरे-धीरे अपने वातावरण का ज्ञान प्राप्त करता है। कोई भी प्राणी अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा अपने आस-पास के वातावरण का ज्ञान प्राप्त करता है। हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ उस ज्ञान को या प्रभाव को मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं । ज्ञानेन्द्रियों के प्रभाव को मस्तिष्क तक पहुँचाने की प्रक्रिया को संवेदना कहते हैं। संवेदना की तार्किक व्याख्या को प्रत्यक्षीकरण कहते हैं। प्राणी के व्यवहार को समझने के लिए इन सभी प्रत्ययों को समझना अत्यंत आवश्यक तथा

महत्वपूर्ण है। प्रत्येक प्राणी संवेदनशील होता है ,मनुष्य में संवेदना संज्ञानात्मक,भावात्मक तथा क्रियात्मक रूप में होती है।

मनोविज्ञान में प्रयोगशालीय अन्वेषण से पहले ही संवेदना का प्रयोगात्मक अध्ययन प्रारम्भ हुआ,उन्नीसवीं शताब्दी में मनोविज्ञान के क्षेत्र में पचास प्रतिशत से अधिक कार्य संवेदना मनोविज्ञान से जुड़ा हुआ था । सर्प्रथम अरस्तू ने मनुष्य में पाँच ज्ञानेन्द्रियों और सम्बंधित संवेदनाओं पर प्रकाश डाला ।

इस इकाई में आप संवेदना और प्रत्यक्षण के विषय में अध्ययन करेंगे ।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

7. संवेदना का अर्थ जान पाऐंगे।
8. संवेदना की विभिन्न परिभाषाऐं लिख सकेंगे।
9. संवेदना की विशेषताओं के बारे में चर्चा कर सकेंगे।
10. संवेदना के गुणों को स्पष्ट कर सकेंगे।
11. प्रत्यक्षण का अर्थ जान पाऐंगे ।
12. प्रत्यक्षण की विभिन्न परिभाषाऐं लिख सकेंगे।
13. प्रत्यक्षण के सिद्धान्तों का वर्गीकरण एवं वर्णन कर सकेंगे।
14. प्रत्यक्षण की विशेषताओं को जान पाऐंगे।

6.3 संवेदना का अर्थ एवं परिभाषाएँ Meaning and Definitions of Sensation

संवेदना एक ज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है इसके द्वारा किसी उपस्थित उद्दीपन का सरलतम ज्ञान होता है । व्यक्ति जब किसी उद्दीपन को देखता है, तो उसकी आँखें उत्तेजित हो जाती हैं, स्नायु –प्रवाह उत्पन्न होकर कोर्टेक्स के दृष्टि-खण्ड में जाता है और तब वो क्षेत्र उत्तेजित हो जाता है । फलत: उस व्यक्ति को उस उद्दीपन का अर्थहीन ज्ञान होता है । इसे ही संवेदना कहते हैं ।

संवेदना मस्तिष्क की एक सामान्य तथा सरलतम प्रतिक्रिया है । बालक जब जन्म लेता है तो वह अपने वाह्य जगत के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता है । धीरे-धीरे उसकी

ज्ञानेन्द्रियाँ कार्य करना प्रारम्भ कर देती हैं । तथा वह अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा अपने वातावरण का ज्ञान प्राप्त करने लगता है। ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा व्यक्ति पर होने वाले प्रभाव को संवेदना कहते हैं। संवेदना का पूर्व ज्ञान अथवा अनुभव से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। क्योंकी ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान प्राप्त होता है, इसलिए इन्हें ज्ञान के द्वार भी कहा जाता है। संवेदना के द्वारा प्राणी को विभिन्न वस्तुओं तथा परिस्थितियों का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्त करने का प्रमुख साधन हैं। ज्ञान प्राप्ति में ज्ञानेन्द्रियों तथा संवेदनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। संवेदना ज्ञान प्राप्ति का प्रथम सोपान है। ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से व्यक्ति को संवेदना महसूस होती है । विभिन्न विद्वानों ने संवेदना की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए उसे अपनी-अपनी तरह से परिभाषित करने का प्रयत्न किया है । कुछ प्रसिद्ध विद्वानों की परिभाषाओं पर हम विचार करेंगे।

चैपलिन (Chaplin,1975) ने संवेदना की परिभाषा देते हुए कहा है, " संवेदना वह प्रारंभिक प्रक्रिया या अनुभव है जिसकी उत्पत्ति किसी उद्दीपन से ग्राहक के उत्तेजित होने पर होती है । "

सेंट्रोक के अनुसार " वातावरण में उद्दीपक उर्जा को कूट संकेतन करने तथा पहचानने की प्रक्रिया को संवेदना कहा जाता है।"

वुड एवं वुड (Wood &Wood, 1999) के अनुसार " संवेदन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा ज्ञानेन्द्रियाँ दृष्टि, श्रवण एवं अन्य संवेदी उद्दीपकों की पहचान करता है तथा उसे मस्तिष्क में अंतरित करता है।"

मौरिस (Mouris,1996) ने संवेदन को परिभाषित करते हुए कहा है,संवेदन से तात्पर्य दृष्टि ,श्रवण ,गंध स्वाद संतुलन ,स्पर्श तथा दर्द के ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त मौलिक संवेदी आंकडों से होता है।"

जे .पी.दास (J.P.Das 1998) ने उद्दीपकों को प्राप्त करने की पहली अवस्था को ही संवेदन कहा है।"

आइजनेक (1972) एवं उनके सहयोगियों का मानना है कि "संवेदना वह मानसिक प्रक्रम है, जो आगे विभाजन योग्य नहीं होता है, तथा इसकी तीव्रता ,उत्तेजना पर निर्भर करती है और इसके गुण ज्ञानेन्द्रियों की प्रकृति पर निर्भर करते हैं।"

6.4 संवेदना के गुण या विशेषताएं

प्रत्येक वस्तु की अपनी विशेषताएं या गुण होते हैं। जिनके बिना वह वस्तु कायम नहीं रह सकती है। संवेदना के भी कुछ गुण या विशेषताएं हैं। ई.बी.टीचेनर (E.B.Tichener

1867-1927) ने संवेदना के तीन सामान्य गुणों (General attributes) 1. गुण (quality) 2. तीव्रता (intensity) 3. सत्ताकाल या अवधि (duration) का उल्लेख किया। इसी तरह उन्होंने संवेदना के दो विशिष्ट गुणों विस्तार (extensity) तथा स्पष्टता (clearness) का उल्लेख किया। इस इकाई के अंतर्गत आप सभी संवेदना के गुणों को विस्तार से जान पाएंगे।

6.41 सामान्य गुण (General Attributes):-

सामान्य गुण का अर्थ वे गुण या विशेषताएं होती हैं जो प्रत्येक संवेदना में पाई जाती हैं। संवेदना के पाँच प्रकार हैं –दृष्टि संवेदना,श्रवण संवेदना ,स्पर्श संवेदना ,गंध संवेदना तथा स्वाद संवेदना । सामान्य गुण इन सभी संवेदनाओं में पाए जाते हैं। सामान्य गुण मुख्यत:तीन प्रकार के हैं।

1. गुण (Quality):- गुण संवेदना की मुख्य विशेषता है। संवेदना का प्रकार वस्तुत: उसके गुण पर ही निर्भर करता है। जैसे:-दृष्टि संवेदना आँख द्वारा होती है ,श्रवण संवेदना कान द्वारा होती है ,स्पर्श संवेदना त्वचा द्वारा होती है ,आदि इसे संवेदना का सामान्य गुण कहते हैं।
2. तीव्रता (Intensity) :- संवेदना में तीव्रता का गुण भी देखा जाता है। कुछ संवेदना अधिक तीव्र होती हैं और कुछ संवेदना कम तीव्र। 100 कैंडिल पावर का बल्ब जला दिया जाए तो उसका प्रकाश 60 कैंडिल पावर के बल्ब से तीव्र होगा। इसलिए दृष्टि संवेदना अधिक तीव्र होगी। इसी प्रकार कम ध्वनि की अपेक्षा तीव्र ध्वनि अधिक तीव्र संवेदना उत्पन्न करती है।
3. सत्ताकाल या अवधि (Duration) :- हर संवेदना की अनुभूति अलग –अलग अवधि तक होती है। कुछ संवेदनाएं थोड़ी देर के लिए प्रभावी होती हैं। और कुछ संवेदनाएं अधिक देर तक प्रभावी रहती हैं। जैसे:-यदि किसी व्यक्ति के पैर में पिन चुभ जाए तो दर्द कम देर तक रहेगा , लेकिन यदि पैर की पूरी उँगली कट जाए तो इससे जोदर्द की संवेदना होगी ,वह अधिक देर तक रहेगी।

6.42 विशिष्ट गुण (Specific attributes):-

संवेदना के विशिष्ट गुणों का अर्थ वे विशेषताएं हैं ,जो किसी विशिष्ट संवेदना में पाई जाती। इस प्रकार की विशेषताएं या गुण सभी संवेदनाओं में नहीं पाए जाते हैं। विशिष्ट गुणों या विशेषताओं के निम्नलिखित तीन प्रकार हैं।

1. विस्तार (Extensity):- संवेदनाओं में विस्तार का गुण भी पाया जाता है । ज्ञानेन्द्रियों के सीमित क्षेत्र पर प्रभाव डालने वाली संवेदनाओं का विस्तार कम व्यापक होता है । जबकि व्यापक क्षेत्र पर प्रभाव डालने वाली संवेदनाओं का विस्तार अधिक होता है । जैसे :-यदि हम एक ऊँगली पानी में डाल दें तो स्पर्श संवेदन का फैलाव एक ऊँगली तक ही होगा । यदि हम समूचे हाथ को पानी में डाल दें तो स्पर्श संवेदन का फैलाव समूचे हाथ तक होगा । इसी तरह स्वर संवेदना में भी यह गुण पाया जाता है । यदि हम एक ऊँगली पानी में डाल दें तो स्पर्श संवेदन का फैलाव एक ऊँगली तक ही होगा । लेकिन दृष्टि,श्रवण तथा गंध संवेदना में यह गुण स्पष्ट रूप से नहीं देखा जाता है, यदि हम एक ऊँगली पानी में डाल दें तो स्पर्श संवेदन का फैलाव एक ऊँगली तक ही होगा।

2. स्पष्टता (Clearness):- संवेदना में स्पष्टता का गुण भी देखा जाता है । उद्दीपन जब अधिक तीव्र होती है तो संवेदना अधिक स्पष्ट होती है ,लेकिन उद्दीपन जब कम होती है ,तो संवेदना भी कम तीव्र होती है ।ध्यान देने के कारण भी संवेदना की स्पष्टता बढ़ती है । जैसे:- खेल के मैदान में खिलाड़ी को चोट लगने पर उसे चोट का अनुभव अधिक नहीं होता है, क्योंकि उसका ध्यान उस और नहीं होता है। जब वह खेल के मैदान से लौटता है, तो उसे चोट का अनुभव अधिक स्पष्ट हो जाता है ,क्योंकी अब उसका ध्यान चोट की और चला जाता है ।
3. स्थानीय चिन्ह (Local sign):- व्यक्ति किसी भी संवेदन का मात्र अनुभव ही नहीं करता है। बल्कि उसका स्थान निर्धारण भी कर लेता है। संवेदन की इस विशेषता को जिसके आधार पर व्यक्ति उसका स्थान बता पाता है, स्थानीय चिन्ह कहलाता है। जैसे -यदि कोई व्यक्ति पीछे से हमारी पीठ पर हाथ रखता है, तो हम बिना देखे ही यह निर्धारित कर पा सकने में समर्थ हो जाते हैं कि पीठ के अमुख भाग पर हाथ रखा जा रहा है । स्पर्श संवेदन के आलावा अन्य संवेदनों के भी कुछ स्थानीय चिन्ह होते हैं । जिसके आधार पर व्यक्ति उसका स्थान निर्धारण कर पाता है।

इस प्रकार प्रमाणित हुआ कि संवेदना के कुछ गुण ऐसे हैं ,जो सभी संवेदनाओं में पाए जाते हैं, और कुछ गुण ऐसे हैं जो केवल कुछ ही संवेदनाओं में देखे जाते हैं । दूसरे शब्दों में संवेदना में सामान्य गुण तथा विशिष्ट गुण दोनों पाए जाते हैं ।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5. चैपलीन के अनुसार संवेदना क्या है?
6. स्थानीय चिन्ह,संवेदना का _____ गुण होता है।
7. संवेदना के सामान्य गुण कौन कौन से हैं ?

6.5 संवेदी प्रक्रिया (sensory process)

संवेदी प्रक्रिया ऐसी जटिल प्रकियाओं का समुच्चय है जो की हमारे मस्तिष्क को हमारे शरीर तथा वाह्य वातावरण में होने वाली प्रक्रियाओं को मस्तिष्क तक पहुँचाती है ।ऐसी प्रक्रिया को समझने से पहले हमें संवेदी प्रक्रिया तथा संवेदी क्रियाओं में अन्तर में समझना आवश्यक है। संवेदी क्रिया एक शारिरिक योग्यता है, जिसके द्वारा हमारी ज्ञानेन्द्रियां सूचनाओं को संग्रह करती हैं तथा संवेदी प्रक्रिया एक ऐसी योग्यता होती है, जो की इन सूचनाओं को मस्तिष्क तक पहुँचाती है। संवेदी प्रक्रियाओं के द्वारा वाह्य वातावरण में होने वाली क्रियाएं ,निर्देश तथा हमारे विचारों का समूह बनाकर उसे इलेक्ट्रिकल सिग्नल के द्वारा मस्तिष्क तक पहुंचाती हैं। हमारे मस्तिष्क मैं विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जो सूचनाएं प्राप्त होती हैं उन्हें दो कारको में विभक्त करके हल किया जाता है। प्रथम न्यूरोलोजिकल प्रक्रिया जो निर्भर करती है। नर्वस सिस्टम पर तथा सेल्फ रेगुलेशन स्ट्रेटजीस जो मनुष्य के व्यक्तित्व और व्यवहार पर निर्भर करती है ।

6.6 संवेदना के प्रकार

ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभवों को संवेदना कहते हैं। ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर संवेदना पाँच प्रकार की होती हैं-

1. दृष्टि संवेदनाएँ - आँख द्वारा प्राप्त होने वाली संवेदनाएं जैसे-रूप,रंग,एवं आकार ।
2. ध्वनि संवेदनाएँ- कान द्वारा प्राप्त होने वाली संवेदनाएँ ,जैसे-मंद ध्वनि,उच्च ध्वनि एवं मधुर ध्वनि ।
3. गंध संवेदनाएँ- नाक द्वारा प्राप्त होने वाली संवेदनाएं, जैसे-सुगंध, दुर्गन्ध एवं विशेष सुगंध ।
4. स्वाद संवेदनाएं -जिव्हा द्वारा प्राप्त होने वाली संवेदनाएँ ,जैसे-खट्टा,मीठा,एवं तीखा ।
5. स्पर्श संवेदनाएँ - त्वचा से प्राप्त होने वाली संवेदनाएँ ,-जैसे- ठंडा गर्म एवं कठोर ।

6. मांस पेशी संवेदनाएँ- शरीर की मांशपेशियों में होने वाली संवेदनाएँ,जैसे-मांशपेशियों का सिकुड़ना।
7. शारीरिक संवेदनाएँ- शरीर के अन्दर होने वाली संवेदनाएँ जैसे-भूख,प्यास,एवं थकान ।

6.7 प्रत्यक्षण का अर्थ एवं परिभाषाएँ

प्रत्यक्षण एक महत्वपूर्ण मानसिक प्रक्रिया है ।संवेदन के समान प्रत्यक्षण भी एक ऐसी संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा वातावरण के उद्दीपक का ज्ञान होता है । अन्तर केवल इतना है, कि संवेदन में अर्थरहित ज्ञान होता है। जबकि प्रत्यक्षण में अर्थपूर्ण ज्ञान होता है। क्योंकि इसमें मस्तिष्क सक्रीय होकर सूचनाओं को संगठित करता है, तथा उसकी व्याख्या करता है । ज्ञानेन्द्रियों द्वारा वाह्य वस्तुओं अथवा क्रियाओं की अनुभूति को संवेदना कहते हैं । जब मनुष्य इस संवेदना को अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर देखता-परखता और स्वीकार करता है, तो इस प्रक्रिया को प्रत्यक्षीकरण कहते हैं ।

प्रत्यक्षण के स्वरूप को निम्न परिभाषाओं के अध्ययन द्वारा बड़ी ही आसानी से समझा जा सकता है।

एटकिंसन एवं हिलगार्ड के अनुसार "प्रत्यक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा हम वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों के प्रतिरूपों की व्याख्या करते हैं एवं उनका संगठन करते हैं।

अरुण कुमार सिंह के अनुसार "प्रत्यक्षण एक सक्रिय ,चयनात्मक एवं संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति को अपने आंतरिक अंगों (आंतरिक वातावरण) तथा बाह्य वातावरण में उपस्थित वस्तुओं का उसी क्षण अनुभव होता है ।"

कोलमैन के अनुसार "प्रत्यक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने शरीर के भीतरी अंगों एवं बाहरी दुनिया के बारे में जानकारी प्राप्त करता है।"

सैनट्रोक के अनुसार "संवेदी सूचनाओं को अर्थ प्रदान करने के लिए मस्तिष्क द्वारा सूचनाओं को संगठित करने एवं व्याख्या करने की प्रक्रिया को ही प्रत्यक्षण कहा जाता है ।"

रायबर्न के अनुसार "अनुभव के अनुसार संवेदना की व्याख्या की प्रक्रिया को प्रत्यक्षीकरण कहते हैं।"

इन परिभाषाओं के अध्ययन से प्रत्यक्षण के स्वरूप के संबंध में निम्न बातें स्पष्ट हो जाती हैं-

प्रत्यक्षण के लिए वातावरण में उद्दीपक का होना आवश्यक है।

1. प्रत्यक्षण में उद्दीपक का तत्काल अनुभव होता है।
2. प्रत्यक्षण एक सक्रीय मानसिक प्रक्रिया है।
3. प्रत्यक्षण एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है।
4. प्रत्यक्षण की प्रक्रिया के दौरान उद्दीपकों को संगठित करने की मानसिक क्रिया घटित होती है।
5. प्रत्यक्षण एक चयनात्मक प्रक्रिया है।

6.8 प्रत्यक्षण के सिद्धान्त

प्रत्यक्षण की प्रक्रिया को पूरी तरह समझने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने मुख्यतः सात तरह के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

जो निम्नलिखित हैं-

1. दैहिक सिद्धान्त
2. प्रत्यक्ष सिद्धान्त
3. सूचना-संसाधन सिद्धान्त
4. गेस्टाल्टवादी सिद्धान्त
5. व्यवहारवादी सिद्धान्त
6. निर्देश अवस्था सिद्धान्त
7. कृत्रिम बुद्धि सिद्धान्त

इन सिद्धान्तों का वर्णन क्रमानुसार निम्न प्रकार से है-

1. प्रत्यक्षण का दैहिक सिद्धान्त –

इस सिद्धान्त के अंतर्गत प्रत्यक्षण की प्रक्रिया के दौरान होने वाली अनुभूतियों की व्याख्या करने के लिए शरीर में व्याप्त अगणित न्यूरोन के बीच होने वाली आवेशीय क्रिया को आधार बनाया जाता है। इस सिद्धान्त की मुख्य मान्यता यह है कि व्यक्ति ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से वातावरण में फैले हुए उद्दीपकों के संर्पक में आता है। उद्दीपक

के संर्पक में आते ही उसके तंत्रिका तंत्र में तंत्रिका आवेश उत्पन्न हो जाता है, जो तत्काल मस्तिष्क के विशिष्ट क्षेत्र में पहुँचता है। इसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति को उद्दीपक का प्रत्यक्षण होता है। यह सिद्धान्त केवल इस अध्ययन तक ही सीमित नहीं है कि प्रत्यक्षण किस प्रकार से होता है, एवं उसकी व्याख्या किस तरह से की जाए बल्कि इसमें अलग-अलग प्रकार के प्रत्यक्षण के दौरान मस्तिष्क के जिन क्षेत्रों में अन्त:क्रियाएं होती हैं, उनके आधार को भी जानने की कोशिश की जाती है, प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता आदि की व्याख्या की जाती है। इस सिद्धान्त के संबंध में हेब नामक वैज्ञानिक का मत है कि केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के विशेष क्षेत्र की कोशिका के उत्तेजित होने की प्रक्रिया पर प्रत्यक्षण निर्भर करता है। जब तक उस विशेष कोशिका में उत्तेजन नहीं होगा, प्रत्यक्षण नहीं होगा ।

2. प्रत्यक्षण का प्रत्यक्ष सिद्धान्त -प्रत्यक्ष सिद्धान्त का प्रतिपादन गिब्सन नामक वैज्ञानिक द्वारा सन 1966 में किया गया । द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान गिब्सन "आर्मी एयर कौपर्स " में एक अधिकारी के रूप में कार्य करते थे। जहाँ उनकी मुख्य भूमिका हवाई जहाज के उडान भरते एवं उतरते समय उसमें हुई समस्याओं का गहन रूप से अध्ययन करना थी । इसी अध्ययन के दैरान उनके मन में एक विचार आया जिसमें प्रत्यक्षण के सिद्धान्त की नींव पड़ी। वह विचार था कि व्यक्ति की आँख के अक्षिपटल (रेटिना) पर पड़ने वाली रोशनी अपने आप में ऐसा संगठित स्वरूप लिए हुए होती है जिसमें कि वह रोशनी जिस उद्दीपक से टकराकर आ रही है उससे संबंधित ज्ञान समाहित होता है, और उसे अर्थपूर्ण होने के लिए केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र द्वारा विस्तृत व्याख्या किए जाने की आवश्यकता नहीं होती है।

गिब्सन का मानना है कि हमारी आँख में प्रवेश करने वाली रोशनी काफी संगठित एवं संरचित होती है। अब प्रश्न उठता है कि रोशनी में इस तरह की संगठन क्षमता किस तरह से उत्पन्न हो जाती है। इस प्रश्न का उत्तर गिब्सन ने बड़े ही सीधे ढंग से दिया है और कहा है कि रोशनी जो कि हमारी आँख में प्रवेश करती है,वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों से परावर्तित होती है और इस रोशनी में इन वस्तुओं से संगत सारी सूचनाएँ समाहित होती हैं। चूँकि वातावरण की ऐसी वस्तुएँ अपने आप में संगठित एवं संरचित होती हैं,और चूँकि रोशनी का परावर्तन भी क्रमबद्ध ढंग से होता है, अत: रोशनी में उन वस्तुओं के गुणों का संगठन स्वरूप अपने आप आ जाता है। इस तरह से गिब्सन ने इस बात पर विशेष रूप से जोर डाला है कि प्रत्यक्षण को वातावरण का विश्लेषण करके ठीक ढंग से समझा जा सकता है।

3. प्रत्यक्षण का सूचना-संसाधन सिद्धान्त –इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कम्प्यूटर तथा संचार विज्ञान में अभिरुचि रखने वाले मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है। इस

सिद्धान्त में वातावरण में उपस्थित विभिन्न उद्दीपकों से प्राप्त सूचनाओं के संसाधन द्वारा प्रत्यक्षण की व्याख्या की गई है। यहाँ पर सूचना के संसाधन से तात्पर्य विभिन्न सूचनाओं के विभिन्न प्रकार के बन सकने वाले संगठनों द्वारा प्रकट किए जाने वाले विशिष्ट अर्थ से है। सूचना से तात्पर्य एक ऐसे ज्ञानात्मक अनुभव से है जिसके हो जाने पर व्यक्ति के मन में उद्दीपक वस्तु के बारे में बनी अनिश्चितता समाप्त हो जाती है। उदाहरण के लिए आप अपने विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में मनोविज्ञान की एक विशेष किताब खोज रहे हैं। आपको जानकारी है की पुस्तकालय में वो पुस्तक उपलब्ध है, परन्तु वो पुस्तक ठीक -ठाक कहाँ पर रखी हुई है यह आपको मालूम नहीं है।अगर कोई सहपाठी आप को यह बताए कि वह किताब पुस्तकालय में है तो यह तथ्य आप के लिए कोई "सूचना" नहीं हो सकता है, क्योंकि आपको यह मालूम नहीं होता है की पुस्तक वास्तव में कहाँ है। दूसरे शब्दों में ,आप के मन में अनिश्चितता बनी की बनी ही रह जाती है।

सूचना संसाधन सिद्धान्त की यह मान्यता है कि व्यक्ति की प्रत्यक्षण क्षमता सीमित होती है। अत: कोई व्यक्ति वातावरण में उपस्थित बहुत सारे उद्दीपकों में से कुछ का ही प्रत्यक्षण कर पाता है।अगर व्यक्ति किसी एक सूचना पर ध्यान देता है तो उसे दूसरे तरह की सूचना को छोड़ना पड़ता है।

प्रत्यक्षणकर्ता में किसी भी सूचना का प्रवाह कई चरणों में सम्पन्न होता है। इसका वर्णन निम्नांकित है-

1) उद्दीपक –प्रथम चरण में व्यक्ति का सामना उद्दीपक से होता है।

2) संवेदी ग्राहक-द्वितीय चरण में उद्दीपक व्यक्ति के संवेदी ग्राहक अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों अर्थात् नेत्र,कान, नाक,त्वचा आदि को प्रभावित करता है जिससे सूचनाएं केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र में पहुँचती हैं।

3) केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र- केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र उन सूचनाओं को ग्रहण करता है। ऐसी सूचनाएं वहाँ पहले से उपस्थित सूचनाओं से प्रभावित होती हैं। पहले से उपस्थित सूचनाओं को मनोवैज्ञानिक शोर की संज्ञा दी जाती है।

4) कॉर्टिकल मस्तिष्कीय केन्द्र- केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र द्वारा ग्रहण की गई सूचनाओं को मस्तिष्क के विभिन्न केन्द्रों द्वारा संसाधित किया जाता है।

5) अनुक्रिया-अन्त में कॉर्टिकल मस्तिष्कीय केन्द्रों से प्राप्त सूचना के आधार पर व्यक्ति प्रत्यक्षण की अनुक्रिया ठीक ढंग से कर पाता है।

सूचना संसाधन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्यक्षण,संवेदन तथा अन्य उच्चतर मानसिक क्रियाएं एक दूसरे से भिन्न नहीं होती हैं बल्कि एक-दूसरे से अंत:संबंधित होती हैं।अत: उन्हें एक-

दूसरे से अलग कर अध्ययन करना उचित नहीं है। जब व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियाँ किसी उद्दीपक से प्रभावित होती हैं तब संवेदन की मानसिक प्रक्रिया घटित होती है, इसके उपरान्त उसका संसाधन करने से व्यक्ति को प्रत्यक्षण होता है। प्रत्यक्षित वस्तुओं अथवा घटनाओं को संसाधित कर व्यक्ति उसे स्मृति में लाता है।

4. प्रत्यक्षण का गेस्टाल्टवादी सिद्धान्त - गेस्टाल्ट सिद्धान्त के प्रतिपादन में "स्कूल ऑफ गेस्टाल्ट साइकोलाजी" के वर्दाईमर, कोहलर, कोफ्का का सर्वाधिक योगदान रहा है। इस सिद्धान्त को निम्न बिंदुओं के अंतर्गत समझाया गया है।

1. **सम्पूर्णता में प्रत्यक्षण-** गेस्टाल्ट सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति किसी वस्तु का प्रत्यक्षण अलग-अलग रूप में न कर सम्पूर्ण रूप में करता है। इस सम्पूर्णता में घटित होने वाले प्रत्यक्षण की अपनी एक विशेषता होती है। इस विशेषता के अनुसार व्यक्ति के किसी वस्तु का प्रत्यक्षण करते समय उस वस्तु के गठन में प्रयुक्त सभी हिस्सों को साथ देखने पर जो विशेषता उभर के सामने आती है, जो कि वस्तु के अन्य सभी हिस्सों की विशेषताओं ,गुणों से भिन्न होता है। इस प्रकार समझा जा सकता है,व्यक्ति जब किसी दूसरे व्यक्ति के चेहरे को देखता है, तो उसे आँख, कान, नाक, भौंहें आदि जो चेहरे के हिस्से हैं को अलग-अलग नहीं देखता है। बल्कि इनके आपस में जुड़े होने से जो एक विशेष गुण उभर कर चेहरे के रूप में बनता है उसे ही देखता है। हाँलांकि चेहरे के अन्य हिस्सों के अपने-अपने विशिष्ट गुण होते हैं। परन्तु इन सभी के मिलने से उभरा विशेष गुण इन सभी के गुणों से भिन्न होता है।
2. **प्रत्यक्षणात्मक संगठन के आधार भूत तथ्य या नियम –** गेस्टाल्टवादी उपागम को मानने वाले विद्वानों के अनुसार प्रत्यक्षण की प्रक्रिया में व्यक्ति जिस वस्तु का प्रत्यक्षण कर रहा होता है, उस वस्तु के एक खास पैटर्न को खोज लेता है। दूसरे शब्दों में वह उस खास पैटर्न के रूप में वस्तु को व्यवस्थित, संगठित पाता है। जब व्यक्ति उद्दीपकों को एक पैटर्न में व्यवस्थित देखता है,तो इसका गुण उन गुणों से भिन्न होता है, जिसकी जानकारी उसके हिस्सों के विश्लेषण से प्राप्त होती हैं। प्रत्यक्षणात्मक संगठन दो तरह के नियमों पर आधारित होता है ।1.परिधीय नियम तथा 2.केन्द्रीय नियम। परिधीय नियम में उन नियमों को रखा जाता है जो कि उद्दीपक से संबंधित होते हैं। जैसे कि उद्दीपकों के विभिन्न अंगों या हिस्सों में सन्निकटता, समानता, निरन्तरता, सुन्दर आकृति,गैप आदि कुछ गुण ऐसे होते हैं जिनसे प्रत्यक्षण में संगठन उत्पन्न होता है। उद्दीपकों के इन गुणों से संबंधित सभी नियम जन्मजात होते हैं। केन्द्रीय नियम में अभिप्रेरण ,मनोवृत्ति आदि आते हैं। इन नियमों का उपयोग करना व्यक्ति अनुभव से सीखता है। गेस्टाल्टवादियों ने मुख्य रूप से परिधीय नियमों पर ही अधिक जोर दिया है।

3. समाकृतिकता का आधारभूत नियम– इस नियम के अनुसार व्यक्ति जिस वस्तु अथवा घटना का प्रत्यक्षण करता है,उससे मस्तिष्क के संबंधित हिस्से में भी कुछ विशिष्ट परिवर्तन होते हैं अर्थात् प्रत्यक्षण के दौरान मस्तिष्क में होने वाले परिवर्तनों एवं वस्तु या घटना के बीच एक सीधा एवं स्पष्ट संबंध होता है। इस नियम को प्रमाणित करने हेतु कोहलर ने हेल्ड नामक मनोवैज्ञानिक के साथ सन 1949 में एक प्रयोग किया। इस प्रयोग के अन्तर्गत उन्होंने प्रयोज्य के मस्तिष्क के दृष्टि क्षेत्र से ई.ई.जी. यानि मस्तिष्क तरंगों की रिकार्डिग की। इस प्रयोग में पाया गया कि जब प्रयोज्य के सम्मुख रखी गयी वस्तु जिसका की वह उस समय प्रत्यक्षण कर रहा था, में गति उत्पन्न की गयी तो इससे मस्तिष्कीय तरंगों में भी कुछ परिवर्तन आ गए । इससे ये साबित हो गया कि वस्तु एवं मस्तिष्क के संबंधित हिस्से में हुए परिवर्तन का सीधा संबंध होता है।
4. प्रत्यक्षण का व्यवहारवादी सिद्धान्त – व्यवहारवादियों के अनुसार प्रत्यक्षणपूर्णरूपेण एक सीखा गया व्यवहार होता है, और जिन नियमों एवं सिद्धान्तों द्वारा अन्य व्यवहार निर्धारित होते हैं ठीक उन्हीं नियमों एवं सिद्धान्तों द्वारा प्रत्यक्षण भी निर्धारित होता है। व्यवहारवादियों में सर्वाधिक सफल व्याख्या वैज्ञानिक हल द्वारा सन 1943 में की गयी है। जिस तरह से किसी सीखे गये व्यवहार का निर्धारण आदत, सामान्यीकरण तथा सीखने में अवरोध आदि नियमों द्वारा होता है उसी तरह प्रत्यक्षण भी इन्हीं नियमों से निर्धारित होता है। हल के अनुसार नर्वस सिस्टम में संवेदी तंत्रिका आवेग आपस में अनुक्रिया करते हैं, एवं इससे नर्वस सिस्टम में इन संवेदी तंत्रिका आवेगों द्वारा व्यक्तिगत रूप से उत्पन्न किए जा रहे परिवर्तनों से भिन्न परिवर्तन उत्पन्न होने लगते हैं। उदाहरण के लिए यदि धूसर, रंग के कागज के टुकड़े के बीच में रखा जाता है तो विजुअल सिस्टम धूसर कागज से उत्पन्न संवेदी तन्त्रिका आवेग बैगनी रंग के कागज से उत्पन्न संवेदी तंत्रिका आवेग के साथ अंत: क्रिया कर दोनों तरह के संवेदी आवेगों को परिवर्तित कर एक नया रूप देता है, जिसके परिणामस्वरूप धूसर रंग के कागज का टुकड़ा कुछ पीलापन लिए दिखाई पड़ता है।
5. निर्देश अवस्था सिद्धान्त –इस सिद्धान्त के विकास में ब्रूनर ,आल्पोर्ट, शेफर तथा मर्फी नामक वैज्ञानिकों का महत्वपूर्ण योगदान है। इस सिद्धान्त का विकास गेस्टाल्टवादियों द्वारा प्रत्यक्षण में व्यक्तिगत कारकों को महत्व न दिये जाने के कारण भूल सुधार के रूप में हुआ। इस सिद्धान्त के अंतर्गत व्यवहारपरक कारकों एवं अभिप्रेरणात्मक कारकों को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। इस हेतु कई विशेष परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है, जिनके द्वारा इस सिद्धान्त की व्याख्या की जाती है। इनका वर्णन निम्नलिखित है-

प्रथम परिकल्पना – प्रत्यक्षण व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताओं द्वारा निर्धारित होता है। इस परिकल्पना के अनुसार व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताएं प्रत्यक्षण में विकृति अथवा त्रुटी उत्पन्न कर देती हैं उदाहरणार्थ-ऑसगुड नामक मनोवैज्ञानिक ने अपनी पुस्तक में अपने एक अनुभव का वर्णन किया है, जिसके द्वारा इस परिकल्पना की पुष्टि होती है। वे लिखते हैं कि जब वे अपने ऑफिस से दोपहर में भोजन करने के लिए जाते थे तो रास्ते में एक दफ्तर मिलता था जिसका नाम "400D" था। जिसे वे प्राय: "FOOD" पढ़ा करते थे। इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि ऑसगुड की भूख मिटाने की आवश्यकता उनके प्रत्यक्षण में त्रुटी पैदा कर देती थी।

द्वितीय परिकल्पना - वस्तु प्रत्यक्षण से संबंधित पुरस्कार एवं दण्ड से प्रत्यक्षण की प्रक्रिया का निर्धारण होता है। इस परिकल्पना के अनुसार जब किसी वस्तु के प्रत्यक्षण से व्यक्ति को पुरस्कार स्वरूप सुख की अनुभूति जुड़ी होती है तो उस वस्तु का प्रत्यक्षण किसी ऐसी वस्तु जिसके की प्रत्यक्षण के साथ दु:ख की अनुभूति जुड़ी होती है की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होता है। इस तथ्य की पुष्टि शेफर एवं मर्फी द्वारा 1943 में किए गए एक प्रयोग द्वारा स्पष्ट रूप से होती है।

तृतीय परिकल्पना-जिन वस्तुओं के लिए व्यक्ति के व्यक्तित्व में कुछ विशेषता मूल्य होता है, उन वस्तुओं का प्रत्यक्षण व्यक्ति तेजी से करता है। इस परिकल्पना के अनुसार 'जिन वस्तुओं के संबंध में व्यक्ति अभिरुचि रखता है एवं वह उन्हें कुछ मान देते है तो ऐसे वस्तुओं अथवा घटनाओं के प्रत्यक्षण में स्वत: ही तीव्रता एवं स्पष्टता आ जाती है'।

चतुर्थ परिकल्पना-यदि किसी वस्तु का मान या मूल्य व्यक्ति के लिये अधिक होता है, तो व्यक्ति उसका प्रत्यक्षण अधिक बढ़ा चढ़ा कर करता है।

पांचवी परिकल्पना- व्यक्ति अपने शीलगुणों के अनुरूप वस्तु या उद्दीपक का प्रत्यक्षण करता है। प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न प्रकार के शीलगुण होते हैं और जब वह किसी वस्तु या उद्दीपक का प्रत्यक्षण करता है तो इन शीलगुणों का उस पर काफी प्रभाव पड़ता है। आल्पोर्ट के अनुसार वहिर्मुखता या अंतर्मुखता का शीलगुण अधिक होने पर व्यक्ति को यदि स्याही-धब्बा प्रेक्षण के कार्ड दिखलाए जाते हैं तो उसमें वह गति का प्रत्यक्षण अधिक करता है।

छठी परिकल्पना- शाब्दिक उद्दीपक जिनका स्वरूप सांवेगिक एवं धमकाने वाला होता है, का प्रत्यक्षण तटस्थ उद्दीपकों की अपेक्षा व्यक्ति देरी से करता है तथा साथ ही ऐसे शब्द व्यक्ति द्वारा सही-सही पहचाने जाने के पहले ही उनमें सांवेगिक प्रतिक्रिया उत्पन्न कर देता है।

7. कृत्रिम बुद्धि उपागम सिद्धान्त -कृत्रिम बुद्धि उपागम के अनुसार प्रत्यक्षण के सम्पूर्ण सिद्धान्त में मूलत: तीन स्तर हैं।

1. प्रत्यक्षणात्मक प्रक्रियाओं के दैहिक प्रक्रम

2. ऐसे नियम जो कि प्रक्रियाओं को विशिष्टता प्रदान करते हैं।

3. प्रत्यक्षण का कार्य या उन दैहिक गुणों का विश्लेषण जो उद्दीपकों तक पहुँचने में मदद करता है।

प्रत्यक्षण के ये तीनों स्तर अभी तक प्रत्यक्षण के समन्वित सिद्धान्त के रूप में नहीं रखे जा सकते हैं। फिजियोलॉजिकलमेकेनिज्म,बायलॉजिस्ट एवं न्यूरोसाइंटिस्ट पहले के स्तर अर्थात् प्रत्यक्षण के फिजियोलॉजिकल मेकेनिज्म पर जोर देते हैं ।

मनोवैज्ञानिक गिब्सन एवं उनके विचारों के समर्थक प्रत्यक्षण के तीसरे स्तर पर बल डालते हैं।तथा कृत्रिम बुद्धि उपागम के समर्थकों द्वारा प्रत्यक्षण के संक्रियात्मक नियमों पर अधिक जोर देने को कहते हैं । ऐसे शोध कर्ताओं द्वारा मानव को छोड़कर अन्य जीवों के प्रत्यक्षणात्मक प्रक्रियाओं के अध्ययन में कम्प्यूटर आदि के इस्तेमाल पर बल दिया।

6.9 प्रत्यक्षण की विशेषताएं

1. प्रत्यक्षण एक अर्थपूर्ण मानसिक प्रक्रिया है ।
2. प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया मनुष्य की परिपक्वता और अभिप्रेरणा पर निर्भर करती है,जो व्यक्ति जितना अधिक परिपक्व होता है। और प्रत्यक्षीकरण के लिए जितना अधिक अभिप्रेरित होता है। वह उतने ही अच्छे ढंग से प्रत्यक्षीकरण करता है ।
3. अवधान प्रत्यक्षीकरण के लिए आवश्यकीय है ।
4. व्यक्ति के पर्यावरण में अनेक उद्दीपक होते हैं। परन्तु उनका अवधान उन्हीं में होता है, जो उसके लिए उपयोगी एवं रुचिकर होते हैं। इसलिए प्रत्यक्षीकरण को चयनात्मक प्रक्रिया कहा जाता है।
5. प्रत्यक्षीकरण की सबसे बड़ी विशेषता यह है,की व्यक्ति उदीपक को उसके पूर्ण रूप में देखता और समझता है ।
6. प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया में व्यक्ति अपने पूर्व अनुभवों का प्रयोग करता है ।
7. प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया में व्यक्ति जिस वस्तु तथा क्रिया का प्रत्यक्षीकरण करता है, उसकी पूर्व में किये गए प्रत्यक्षीकरण की वस्तुओं से तुलना करता है एवं उनमें समानता एवं असमानता देखता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

8. व्यवहारवादियों के अनुसार प्रत्यक्षण पूर्ण रूपेण एक .....होता है।
9. प्रत्यक्षण एक सक्रीय,..... एवं संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है ।
10. प्रत्यक्षण के सिद्धांतों का नाम लिखिए ।
11. कृत्रिम बुद्धि उपागम के अनुसार प्रत्यक्षण के सम्पूर्ण सिद्धान्त में मूलतः..... स्तर हैं ।
12. प्रत्यक्षीकरण को .....कहा जाता है।

6.10 सारांश

ज्ञानेन्द्रियों के प्रभाव को मस्तिष्क तक पहुंचने की प्रक्रिया को संवेदना कहते हैं। संवेदना के मुख्यतः तीन सामान्य गुण क्रमशः गुण ,तीव्रता, सत्ताकाल या अवधि हैं, तथा तीन विशिष्ट गुण क्रमशः विस्तार ,स्पष्टता ,स्थानीय चिन्ह हैं। संवेदना के प्रकार क्रमशः दृष्टि संवेदना ,ध्वनि संवेदना,गंध संवेदना,स्वाद संवेदना,स्पर्श संवेदना,मांसपेशी संवेदना ,तथा शारीरिक संवेदना होते हैं ।

प्रत्यक्षण एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों द्वारा वातावरण में उपस्थित वस्तुओं ,व्यक्तियों या घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करता है । यह ज्ञान तात्कालिक होता है । प्रत्यक्षण के विभिन्न सिद्धांतों हैं । प्रत्यक्षण के दैहिक सिद्धान्त में प्रत्यक्षण प्रक्रिया के दौरान होने वाली अनुभूतियों की व्याख्या के लिए शरीर में व्याप्त अगणित न्यूरोन के बीच होने वाली आवेशीय प्रक्रिया को आधार बनाया जाता है । प्रत्यक्ष सिद्धान्त के अनुसार प्रत्यक्षण को उस वातावरण का विश्लेषण करके ठीक ढंग से समझा जा सकता है। प्रत्यक्षण के गेस्टाल वादी सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति किसी वस्तु का प्रत्यक्षण अलग अलग रूप में न करके सम्पूर्ण रूप में करता है । प्रत्यक्षणात्मक संगठन के आधारभूत तथ्य या नियम के अनुसार प्रत्यक्षण प्रक्रिया में व्यक्ति जिस वस्तु का प्रत्यक्षण कर रहा होता है उस वस्तु के खास पैटर्न को खोज लेता है । तथा व्यवहारवादियों के अनुसार प्रत्यक्षण सीखा हुआ व्यवहार है ।प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया मनुष्य की परिपक्वता और अभिप्रेरणा पर निर्भर करती है ।सही प्रत्यक्षण का विकास करने के लिए बालक की निरिक्षण शक्तियों को प्रोत्साहित करना होगा ।

6.11 शब्दावली

7. प्रत्यक्षण - प्रत्यक्षण एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है । जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों द्वारा वातावरण में उपस्थित वस्तुओं ,व्यक्तियों या घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करता है।
8. संवेदना - ज्ञानेन्द्रियों के प्रभाव को मस्तिष्क तक पहुंचने की प्रक्रिया को संवेदना कहते हैं।
9. संवेदी ग्राहक –ज्ञानेन्द्रियां ।
10. गंध संवेदनाएँ- नाक द्वारा प्राप्त होने वाली संवेदनाएं ।

6.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

11. चैपलिन (Chaplin,1975) ने संवेदना की परिभाषा देते हुए कहा है, " संवेदना वह प्रारंभिक प्रक्रिया या अनुभव है, जिसकी उत्पत्ति किसी उद्दीपन से ग्राहक के उत्तेजित होने पर होती है । "
12. विशिष्ट गुण
13. गुण, तीव्रता सत्ताकाल या अवधि
14. सीखा गया व्यवहार
15. चयनात्मक
16. प्रत्यक्षण के सिद्धांतों का नाम –
    - I. दैहिक सिद्धान्त
    - II. प्रत्यक्ष सिद्धान्त
    - III. सूचना-संसाधन सिद्धान्त
    - IV. गेस्टाल्टवादी सिद्धान्त
    - V. व्यवहारवादी सिद्धान्त
    - VI. निर्देश अवस्था सिद्धान्त
    - VII. कृत्रिम बुद्धि सिद्धान्त
17. तीन
18. चयनात्मक प्रक्रिया

6.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

6. मंगल, एस0 के0 (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली, प्रैंटिस हाल ऑफ इंडिया।
7. सिंह,ए0के0 (2011): उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, वाराणसी, मोतीलाल बनारसी दास।
8. सिन्हा एवं मिश्रा(1980):सामान्य मनोविज्ञान,भारतीय भवन।
9. सिंह,ए0के0 (2007): शिक्षा मनोविज्ञान, पटना, भारती भवन पब्लिशर्स।
10. लाल,रमन बिहारी एवं राम निवास मानव (2005): शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ , रस्तोगी पब्लिकेशन्स।
11. गुप्ता, एस पी एवं अलका गुप्ता (2008): उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद शारदा पुस्तक भवन ।

6.14 निबंधात्मक प्रश्न

5. संवेदना से आप क्या समझते हैं?संवेदना की विशेषताओं का उल्लेख कीजिये ।
6. प्रत्यक्षीकरण किसे कहते हैं? प्रत्यक्षीकरण की विशेषताओं का उल्लेख कीजिये ।
7. प्रत्यक्षीकरण के सिद्धांतों का वर्णन कीजिए।

इकाई -7 अवधान का स्वरूप, अवधान-भंग एवं अवधान परिवर्तन

7.1 प्रस्तवना
7.2 उद्देश्य
7.3 अवधान के स्वरूप
7.4 अवधान के प्रकार
7.5 अवधान भंग एवं परिवर्तन
7.6 सारांश
7.7 शब्दावली
7.8 स्वमूल्याकन हेतु प्रश्न
7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

अवधान व्यक्ति के जीवन में हर पल हर क्षण घटने वाली मानसिक प्रक्रिया है। विद्यार्थी जीवन मे प्रत्येक को अवधान अवधि को बढाने की चिंता सताती रहती है।

वास्तव मे इस अवधान का स्वरूप कैसा होता है। यह कितने प्रकार का होता है| यह किस सिद्धान्त पर आधारित है। इन सबकी जानकारी आपको इस इकाई की पंक्तियो मे दी गयी है।

7.2 उद्धेश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप-

अवधान के स्वरूप को जान सकेगे।

अवधान के प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे|

अवधान पर लेख लिख सकेंगे|

अवधान के सिद्धान्तों का वर्गीकरण कर सकेंगे|

अवधान क्यों भंग हो जाता है एवं अवधान मे परिवर्तन कैसे होता है| इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे|

7.3 अवधान का अर्थ

अवधान का संबंध हमारे नेत्र, कान, नाक, त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रियो से है ये ज्ञानेन्द्रियाँ हर पल अपने आस-पास के वातावरण में उद्धिपीको उपस्थित के संपर्क में आती रहती हैं तथा उद्धिपीको की प्रभावोत्पादक क्षमता के अनुसार प्रभावित भी होती हैं| परन्तु व्यक्ति उन सभी उद्धिपीको के प्रति अनुक्रिया नहीं करता है| वह अपनी इच्छा तथा जरूरत के अनुसार कुछ खास- खास उद्धिपीको को चुन लेता है और उसके प्रति अनुक्रिया करता है एक उदहारण लीजिये- आप कक्षा में बैठे है एवं शिक्षक आपको पढ़ा रहे हैं|जिस कमरे में कक्षा हो रही है वह कही उद्धिपीको से भरा होगा, जैसे की कुर्सी, मेज, बल्ब, दीवार घड़ी, पंखा, अन्य साथी विद्यार्थी आदि| परन्तु इन सभी उद्धिपीको पर आप ध्यान नहीं देते हैं| आप का ध्यान शिक्षक द्वारा बोल जा रहे शब्दों एवं उसके चेहरे की भाव-भंगिमा पर ज्यादा रहता है| अपने कानो द्वारा शिक्षक के शब्दों एवं भाव-भंगिमा पर ध्यान देते समय आप विशेष शारीरिक मुद्रा में रहते है|

आवधान में विभाजन का गुण पाया जाता है- जैसे की जब व्यक्ति एक ही परिस्थिति में अलग- अलग दो या दो से अधिक कार्य करना प्रारम्भ कर देता है तब व्यक्ति अपना ध्यान उन दोनों ही कार्यो पर होता है| अवधान की स्थिति को अवधान विभाजन की संज्ञा दी जाती है|उदाहरणार्थ- जब आप भोजन कर रहे हैं एवं साथ ही साथ टेलीविज़न भी देख रहे हैं, तो इससे आपका ध्यान दोनों पर यानि भोजन एवं टेलीविज़न पर विभाजित हो जाता है

7.4 अवधान के प्रकार

इस प्रकार स्पष्ट है की प्रकार के अवधान में-

व्यक्ति की एक स्पष्ट इच्छा आवशयकता होती है| जैसे-पुस्तक खरीदना

एक स्पष्ट उद्देश्य होता है| जैसे-पुस्तक की दुकान खोजना|

बाधक वस्तुओं की ओर व्यक्ति का ध्यान नहीं देना |

ध्यान या अवधान

(Attention)

ध्यान या अवधान –अर्थ एवं प्रक्रति

मनोवैज्ञानिक शब्दावली में प्रयुक्त अवधान शब्द के लिए हम अपनी दैनिक बोलचाल की भाषा मे ध्यान शब्द का प्रयोग अक्सर करते रहते हैं | कक्षा में हम अपने विधार्थियों से श्यामपट्ट पर जो लिखा जा रहा है उस पर ध्यान देने ,जो परीक्षण या प्रयोग दिखाया जा रहा है उससे ध्यान से देखने ,जो बातें उन्हें समझाई जा रही है उसे ध्यान से सुनने या उन पर ध्यानपूर्वक विचार करने को कहते हैं |बस अड्डे ,रेलवे स्टेशन तथा हवाई अड्डे पर भी अधिकारयों द्वारा बार –बार माइक पर घोषणा की जाते है कि क्रिय्पा ध्यान दीजिये |इस प्रकार सामान्य बोलचाल की भाषा में ध्यान शब्द का प्रयोग हमे उसके बारे में धारणा बनाने क लिए प्रेरित करता है की ध्यान हमारे मन और मस्तिष्क से सम्बंधित कोई ऐसे शक्ति योग्यता या कार्यक्षमता है उसमें हम अपनी इच्छानुसार सक्रिय या निष्क्रिय बना हैं तथा अपनी सुविधानुसार उसका मनचाहा उपयोग कर सकते हैं |

वास्तव में ध्यान को मन या मस्तिष्क की कोई शक्ति क्षमता या योग्यता समझना ठीक नहीं है इसे सदैव ही एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में समझ जाना चाहिए जो हमारे मन को किसी एक तरफ केन्द्रित करते हैं |ध्यान शब्द एव वास्तव मई संज्ञा शब्द न होकर एक क्रिया शब्द हैं| इसके अर्थ प्रक्रति को ध्यान की बजाय ध्यान देने शब्द के प्रयोग द्वारा अच्छी तरह समझा जाता है ,जिसका अर्थ किसी विषय ,व्यक्ति ,वास्तु,विचार या क्रिया पर अपनी मानसिक शक्तियों करने से होता है |इस बात को और अच्छी तरह स्पष्ट रूप से समझने के लिए प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा दी गयी ध्यान शब्द की परिभाषाओं पर विचार करना अधिक उपयुक्त रहेगा |

1.डमविले –किसी एक विषय पर चेतना को केंद्रित करना ध्यान कहलाता है |

2.रांस –किसी विषय के विचार को स्पष्ट रूप से मन के सामने ले आने की प्रक्रिया ध्यान (या अवधान) कहलाता हैं |

3.मार्गन एवं गिलीलैंड –अपने वातावरण के किसी विशिष्ट तत्त्व की ओर उत्साहपूर्वक जागरूक होना " ध्यान" कहलाता है |यह किसी अनुक्रिया के लिए पूर्व समायोजन हैं |

4.रामनाथ शर्मा –"ध्यान(या "अवधान")एक प्रक्रिया है जो व्यक्ति को उसके वातावरण मे विधमान में से अपनी रूचि और अभिविर्ति के अनुसार कोई विशिष्ट चुनने के लिए विवश करती हैं|"

(1)किसी विशिष्ट वस्तु पर चेतना को केन्द्रित करना ही ध्यान या अवधान है- हम किसी विशेष समय में वातावरण सम्बन्धी कई वस्तुओं को देखते हैं और उनमें से अधिकांश वस्तुओं के प्रति सचेत रहते हैं| उदहारणस्वरूप ,कक्षा में ब्लैक-बोर्ड पर लिखी जा रही बातों की ओर देखते हुए भी विधार्थी कक्षा की दीवारों पर टंगे चार्टो,अध्यापक की उपस्थिति तथा अपने आसपास बैठे हुए विधार्थियों की उपस्थिति तथा उनकी किर्याओ के प्रति सचेत रहता है |परन्तु वह इन तमाम वस्तुओं के प्रति स्पष्ट रूप से सचेत नहीं होता क्योंकि एक ही समय में वह एक ही वस्तु की ओर स्पष्ट रूप से सचेत हो सकता है | वह ब्लैक-बोर्ड पर लिखे जा रहे शब्दों तथा वाक्यों के प्रति स्पष्ट रूप से सचेत होता है क्योंकि उसकी चेतना उन पर केन्द्रित होता है|

अत: किसी एक वस्तु ,विचार या क्रिया पर चेतना केंद्रित से हमे उस ,विचार या क्रिया को अच्छी तरह समझने की योग्यता प्राप्त होती है |चेतना को केंद्रित करने की यह प्रक्रिया-जब हम अन्य वस्तुओं की अपेक्षा किसी एक वस्तु की ओर अधिक सचेत होता हैं –ध्यान कहलाती हैं|

ध्यान या अवधान के प्रकार

विभिन्न लेखकों ने “ध्यान” को वर्गों में बाँटने का प्रयास किया है,परन्तु फिर भी रास द्वारा किया गया वर्गीकरण अधिक मान्य है |यह इस प्रकार है :

स्वाभाविक ध्यान-यह ध्यान बिना इच्छा के अपने आप जागता है| इसमे हम किसी विषय या विचार की ओर ध्यान देने में सचेत प्रयास नहीं करते | माँ का रोते हुए बच्चे की ओर ध्यान देना ,दुसरो लिंगो व्यक्तियों का एक-दूसरे की ओर आकर्षित होना,अचानक शोर की ओर ध्यान चले जाना,चमकीले रंगों की ओर खींचे जाना आदि प्राकृतिक ध्यान क उदहारण हैं|

यह स्वाभाविक ध्यान मूल प्रव्रतियो द्वारा भी पैदा होता है,और स्थायी भावों द्वारा भी | मूल प्रव्रतियो द्वारा जाग्रित ध्यान-प्रेरित प्राकृतिक ध्यान कहलाता है |जब किसी नवयुवक की काम-प्रवर्ती या काम जिज्ञासा को प्रभावित किया जाय,तो उसका ध्यान बरबस खींचा चला आता है इस प्रकार के ध्यान को प्रेरित , प्राकृतिक-ध्यान कहते हैं|

स्थायी भावों –द्वारा जागृत ध्यान को “स्वच्छंद प्राकृतिक ध्यान” कहते हैं |यह “ध्यान” उचित रूप से विकसित भावों का परिणाम होता हैं|उस व्यक्ति,वस्तु,विचार आदि पर ध्यान स्वछन्दतापूर्वक चला जाता है जिसके, प्रति हमारी भावनाएँ अच्छी तरह जुड़ी हों|

ऐच्छिक ध्यान-जिस ध्यान में हमारी इच्छा कार्य करती है,वह “ऐच्छिक ध्यान” कहलाता है यह ध्यान हमारे सचेत प्रयासों पर आधारित होता है|

7.5 अवधान भंग एवं परिवर्तन

(i) अवधान भंग का स्वरुप- अवधान भंग व्यक्ति के जीवन में घटने वाली एक बड़ी ही महत्पूर्ण घटना है जिस मनोवैज्ञानिकों द्वारा विशेष रूप से अध्ययन किया गया है| जब व्यक्ति किसी वातावरण में किसी एक उद्धिपीको वस्तु पर अपना ध्यान लगाये हुए होता है और उसी बीच में कोई दूसरा उद्धीपक वस्तु आ जाने से व्यक्ति का ध्यान पहेली वस्तु से हटकर दूसरी वस्तु पे चला जाता है| इस प्रकिया को अवधान भंग कहा जाता हैं| उदहारण के लिए अभी आप इस पुस्तक को पढ़ रहे हैं| अतः आपका ध्यान इस पुस्तक के विशेष पेज पर है जिस आप पढ़ रहे हैं| परन्तु यदि आचानक कोई आपके कमरे के दरवाजे को जोर- जोर से खटखटाए अथवा डोर बेल बजाये तो आपको ध्यान पुस्तक से हटकर दरवाजे को खटखटाने की अथवा डोर बेल की आवाज की और चला जाता है यानि आपका अवधान भंग हो जाता है|

(ii)अवधान भंग से सम्बन्धीत प्रयोग –मनोवैज्ञानिकों ने अवधान भंग से संबंधित कई प्रयोग किये हैं और यदि इन सभी प्रयोगों के परिणाम को देखा जाये तो हम किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुचते हैं क्योंकि कुछ प्रयोगों के परिणाम मे ध्यान भंग से निष्पादन मे कमी होती पायी गयी है तो कुछ प्रयोगों में ऐसे बात नहीं देखी गयी है | उदहारण के लिए हावे ने 1927 में एक प्रयोग किया जिसमें उनने कॉलेज के विधार्थियों को आर्मी अल्पा परीक्षण पर प्राप्त प्राप्तांको के आधार पर दो भागों मई बाँट दिया |इनमें से एक समूह को उन्होंने प्रयोगात्मक समूह तथा दूसरे को नियंत्रित समूह बनाया| छः सप्ताह बाद दोनों ही समूहों को दो अलग-अलग परिस्थितियों में आर्मी अल्फा परिक्षण का दूसरा फॉर्म भरवाया गया| प्रयोग्तामक समूह को फॉर्म भरने का कार्य ऐसी परिस्थिति में करना था जहां कि अनेकों सुनाई देने वालीआवाजें एवं दृश्य प्रकाश विकप्रक के रूप में मौजूद थे| ये दोनों तरह के विकप्रक काफी तीर्व शक्ति वाले थे| नियंत्रित समूह को वही फॉर्म भरने का कार्य सामान्य परिस्थिति जिसमें कि कोई विकप्रक मौजूद नहीं था करने को दिया गया | परिणाम में पाया गया कि प्रयोगात्मक समूह की परिस्थिति मई ध्यान भंग होने की सारी संभावनाए मौजूद होने के बावजूद उनके परिक्षण पर प्राप्त औसत प्राप्तांको एव नियंत्रित समूह द्वारा प्राप्त औसात प्राप्तांक के बीच कोई सार्थक अंतर नहीं था| दोनों ही समूहों के प्राप्तांक करीब –करीब बराबर थे |दूसरे शब्दों मई यधपि प्रयोगात्मक समूह के सदस्यों का ध्यान भंग हो रहा था| फिर भी इनके निष्पादन पर कोई विशेष असर नहीं पड़ा|

अवधान भंग द्वारा निष्पादन में गिरावट से सम्बंधित प्रयोग –कुछ ऐसे भी मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने यह दिखलाया है कि ध्यान भंग से निष्पादन में गिरावट आती है| फंद्रिक नामक

मनोवैज्ञानिक ने सन 1937 में एक प्रयोग किया जिसमें विधार्थियों को एक कहानी पढनी थी तथा उसे समझाना था| जब वे कहानी पढ़ रहे थे, उनके नजदीक एक फोनोग्राफ बजाय जा रहा था ताकि उन विधार्थियों के ध्यान में कुछ बाधा उत्पन्न हो सके |परिणाम में देखा गया कि ऐसे अवस्था में छात्रों को कहानी पढने में काफी त्रुटिया हुई तथा उसके अर्थ को समझने में काफी कठिनाई हुई| हेदरसन एव उनके सहयोगियों ने सन 1945 में किये गयें अपने प्रयोग में पाया की जब लोगों को कहानी एक ऐसे परिस्थिति में पढने को कही गयी जिसमें बगल में संगीत बज रहा था तो उस कहानी को पढ़ने में लोगों को कोई विशेष कठनाई नहीं हुई लेकिन उस कहानी के तथ्यों को समझने की मात्रा में अवश्य ही सार्थक रूप से कमी आयी |

(iii)अवधान भंग पर हुए कुछ और प्रयोग –मनोवैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे भी प्रयोग किये हैं जिनमें यह प्रदर्शित किया गया है कि अवधान भंग में सिर्फ बाहरी उधीपको का ही विकष्रक के रूप में महत्व नहीं होता |बल्कि व्यक्ति का पिछला अनुभव, उसकी उपेक्षाए जिसे प्रत्याशा कहा जाता है एवं मनोव्रत्ति भी उतनी ही महत्वपूर्ण होता है|

बेकर द्वारा सन 1937 में एक प्रयोग किया गया जिसमें यह प्रदर्शित किया गया है कि अवधान भंग में व्यक्ति की मनोव्रत्ति तथा प्रत्याशा का काफी महत्व होता है| इस प्रयोग मई कुल 40 प्रतिभागी थे |इन्हें चार बराबर समूहों में बाटा गया जिस मई प्रत्येक में 10 प्रतिभागियों को रखा गया |इनमें से एक समूह को नियंत्रित समूह के रूप में रखा गया तथा तीन समूहों को तीन अलग –अलग प्रकार की जानकारी एवं सुझाव देकर उनमें अलग –अलग प्रकार की मनोव्रत्ति एवं प्रत्याशा उत्पन्न की गयी|इन सभी समूहों को मैखिक रूप मै हल करने के लिए कुछ विशेष प्रकार की अंकगणितीय समस्याये दी गयी तथा उन्हें एक ऐसे कक्ष में रखा गया जहा पर कि कुछ लोग जोर-जोर से बातचीत में संलग्न थे तथा संगीत निरंतर बज रहा था |समस्या देते समय तीन समूहों को निम्न प्रकार की जानकारिया एवं सुझाव दिए गये |

1.पहले समूह को कहा गया कि संगीत या दूसरे लोगों द्वारा बातचीत करने की परिस्थिति में अंकगणितीय समस्याओं को हल करने की उनकी क्षमता में कमी आएगी |

2.दूसरे समूह को कहा गया कि संगीत या दूसरे लोगों द्वारा बातचीत करने की परिस्थिति में अंकगणितीय समस्याओं को सुलझाने में मदद मिलेगी |

3.तीसरे समूह को कहा गया कि संगीत या दूसरे लोगों द्वारा बातचीत करने की परिस्थिति में अंकगणितीय समस्याओं को सुलझाने में पहले तो उन्हें कठिनाई होगी परन्तु कुछ समय के बाद उन्हें लाभ होगा या ऐसी परिस्थिति में उन्हें मदद मिलेगी |

4चौथे समहू अर्थात नियंत्रित समूह को कोई भी जानकारी अथवा सुझाव नहीं दिया गया|

इस अनुसंधान में बड़े ही रोचक परिणाम प्राप्त हुए |प्रथम तीनों समूहों का निष्पादन ठीक वैसा ही था जैसा कि सुझाव देने से उनमें प्रत्याशा एवं मनोव्रत्ति उत्पन्न हुई थी| चूँकि नियंत्रित समूह को किसी प्रकार का कोई सुझाव नहीं दिया गया था ,अत: उनके निष्पादन में इस प्रकार की कोई स्पष्टता नहीं थी|इससे ये साबित हो गया कि अवधान भंग होने में न केवल विकष्रक बल्कि व्यक्ति की स्वयं की प्रत्याशा एवं मनोव्रत्ति भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं|

(iv)अवधान भंग से बचाव के तरीके-मनोवैज्ञानिकों ने अवधान भंग पर अपने शोध के दौरान पाया कि कई बार विकष्रकों के मौजूद होने के बावजूद व्यक्ति की निष्पादन में कोई कमी नहीं आती है,अथवा कार्य निष्पादन की पारभिक अवस्था में तो विकष्रकों की उपस्थिति से कार्य निष्पादन की गुणव्रता प्रभावित होती है,परन्तु जैसे-जैसे समय बितता जाता है वैसे-वैसे विकष्रकों के उपस्थिति रहने पर भी कार्य निष्पादन की गुणव्रता में उतरोत्तर बढोत्तरी होती जाती है| मनोवैज्ञानिकों ने इसके पीछे छिपे कारणों को खोजने अथवा इसकी प्रकिया का पता लगाने के पुन:प्रयोग किये व दो प्रकार के उपाय खोज निकाले| वे दो उपाय अथवा अवधान भंग नहीं होने देने की विधियों निम्लिखित हैं-

1.शारीरिक प्रयास /शक्ति का प्रयोग

2.अनुकूलन की प्रकिर्या

शारीरिक प्रयास /शक्ति का प्रयोग-मॉर्गन ने 1936 में एक प्रयोग किया जिसमें उन्होंने एक प्रयोज्य को टाइपराइटर पर एक लेख टाइप करने के लिए दिया| टाइप करते समय टाइपराइटर पर अंगुलियों द्वारा पड़ने वाले दबाव तथा प्रयोज्य की श्व्सन दर आदि शारीरिक अनुकिर्याओं की शक्ति मापन की पूरी व्यवस्था की गयी| प्रयोज्य को प्रयोग में लेख टाइप करते समय कई प्रायोगिक अवस्थाओं से गुजरना पड़ा |जिसके अंतगर्त प्रयोज्य को शांत वातावरण में लेख टाइप करते करते अचानक शोर –गुल आदि की अवस्था में जिसमें की विभिन्न प्रकार की घंटियों एवं रेडियो आदि बजते थे में टाइप करना जारी रखना पड़ता था,तथा कुछ ही समय उपरान्त फिर से शांत अवस्था में में टाइप करना होता था|परिणाम में पाया गया कि अवस्था में प्रयोज्य की अंगुलियों का दबाव टाइपराइटर पर काफी बढ़ा जाता था तथा वह टाइप करते समय उसका ध्यान भंग न हो इसके लिए लेख की सामग्री को जोर-जोर से पढ़ने भी लगता था,इससे उसकी श्व्सन दर में भी व्रधि हो जाती थी| वहीं शांत अवस्था में उसकी अंगुलियों का टाइपराइटर पर दबाव व स्वयं की श्व्सन दर सामान्य रहती थी|इससे यह सिद्ध हो गया कि अवधान भंग से बचने के लिए शारीरिक प्रयास अथवा शारीरिक का प्रयोग भी करता है|

(v)अनुकूलन की प्रक्रिया –अनुकूलन दूसरी प्रविधि है जिसके सहारे व्यक्ति का ध्यान भंग होने से बचता है |इसे इस प्रकार समझ सकते हैं कि आप ने रेलवे अथवा बस स्टेशन के अति निकट रहने के लिए मकान लिया है तो प्रारम्भ के कुछ दिनों तक आप परेशान रहते हैं और आप का ध्यान रेल व् बस की आवाज के शोर के कारण किया कार्य में ठीक से नहीं लग पाता है|परन्तु कुछ दिनों या पांच ,छ: सप्ताह के बाद आप अपना प्रत्येक काम बिना किसी परेशानी के कर लेते हैं| यहाँ तक कि गहरी नींद सो भी लेते हैं जबकि रेल अथवा बस की आवाजे पूर्ववत आती रहती हैं|कहने का तात्पर्य यह है कि आप अपने प्रत्येक कार्य में अच्छी तरह ध्यान लगा पाते हैं|इसका कारण यह है कि आपने अपने आपको उसे विशेष परिस्थिति के साथ अनुकूलित कर लिया है|इस प्रक्रिया को मनोविज्ञान में अनुकूलन कहा जाता है|

इस तरह से हम देखते हैं की व्यक्ति में अवधान भंग एक महत्वपूर्ण घटना हैं|इस पर सिर्फ बाहरी उद्धिपक जो कि विकष्रक के रूप में कार्य करते हैं ,का ही प्रभाव नहीं पड़ता है बल्कि व्यक्ति की मनोव्रत्ति तथा प्रत्याशा का भी प्रभाव पड़ता है|शारीरिक शक्ति व् प्रयास तथा अनुकूलन द्वारा अवधान में बाधक विकष्रकों के प्रभाव को कम किया जा सकता है|

7.6 सारांश

अवधान एक ऐसे चयनात्मक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति शारीरिक मुद्रा बनाकर किसी वस्तु या उदिपक को चेतना केन्द्र से लाने के लिए तत्पर रहता है|

अवधान के मुख्य तीन प्रकार होते हैं-ऐच्छिक ध्यान ,अनैच्छिक ध्यान तथा स्वाभाविक ध्यान |ऐच्छिक ध्यान में व्यक्ति की इच्छा तथा आवश्यकता की प्रधानता होती है | अनैच्छिक ध्यान में उद्धिपक के कुछ खास-खास गुण होते हैं जिनकी प्रधानता होती है|स्वाभाविक ध्यान में व्यक्ति का ध्यान किसी वस्तु, उत्तेजना या घटना की ओर उसकी विशेष प्रशिषण एवं आदत के कारण जाता है|

अवधान के मुख्य तीन कार्य बतलाए गए हैं-अवधान एक संवेदी फिल्टर के रूप में कार्य करता है,अवधान द्वारा अनुक्रियाओं का चयन होता है तथा अवधान चेतन के प्रवेश द्वार के रूप में कार्य करता है|

दीर्घावधि अवधान की सैद्धान्तिक व्याख्या करने के लिए कई तरह के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है जिनमे पाँच प्रमुख हैं-प्रत्याशा सिद्धान्त ,जेरिसन का सिद्धान्त ,संकेत –पहचान सिद्धान्त,उत्तेजन सिद्धान्त,तथा अभ्यसन सिद्धान्त|इनमें से प्रथम तीन संज्ञानात्मक सिद्धान्त हैं तथा अन्तिम दो न्यूरोदैहिक सिद्धान्तहैं|

7.7 शब्दावली

.अवधान : एक ऐसी चयनात्मक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति एक विशेष शारीरिक मुद्रा बनाकर किसी वस्तु या उदीपक को चेतना केन्द्र से लाने के लिए तत्पर रहता है|

.चयनात्मक अवधान : एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति कुछ खास क्रिया या उद्धीपक पर अपने मानसिक एकाग्रता दिखलाता है तथा अन्य क्रियाओं या उद्धीपक पर न के बराबर ध्यान देता है|

.दीर्घावधि अवधान :एक ऐसी प्रत्यक्षज्ञानात्मक प्रक्रिया है जिसे निगरानी भी कहा जाता है,जिसमें व्यक्ति अधिक समय तक अपना ध्यान किसी उद्धीपक पर केन्द्रित किये रहता है तथा उस उद्धीपक के प्रति सतर्कता बनाये रखता है|

7.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1.रोगी का अवधान दवा की दुकान की ओर जाना को आप निम्नांकित में से किस क्षेणी अवधान कहेंगे ?

(क)ऐच्छिक अवधान

(ख) अनैच्छिक अवधान

(ग)स्वाभाविक अवधान

(घ)अस्थिर अवधान

2.निम्नांकित में से कौन शा गुण अवधान में नहीं पाया जाता है?

क)अवधान में विशेष प्रकार का शारीरिक अभियोजन होता है|

ख)अवधान का विस्तार सीमित होता है|

ग)अवधान में विभाजन का गुण पाया जाता है|

घ)अवधान का स्वरूप भावात्मक होता है|

3.चयनात्मक अवरोध के सिद्धान्तों में सबसे पहला सिद्धांत किनके द्वारा प्रतिपादित किया?

क)ट्रिसमैन द्वारा

ख)ब्रैडबेंट द्वारा

ग)नॉरमेन द्वारा

घ)नाइसर द्वारा

4.दीर्घावधि अवधान के क्षेत्र में किये गये प्रयोगों के आलोक में निम्नांकित में से कौन कथन सत्य है?

क) दीर्घावधि अवधान एक तीव्र क्रिया है जिसमें व्यक्ति को काफी मानसिक प्रयास करना पड़ता है|

ख) दीर्घावधि अवधानमें व्यक्ति में सतर्कता का स्तर निम्न होता है|

ग) दीर्घावधि अवधान एक तरह का विभाजित अवधान होता है|

घ) दीर्घावधि अवधान में अस्थिरता नहीं पायी जाती है|

5.जेरिसन मॉडल के अनुसार दीर्घावधि अवधान की व्याख्या किस प्रकार की गयी है?

क)उत्पन्न प्रेक्षण दर प्राकल्पना के रूप में |

ख)ऐकिक एकाग्र कार्य के रूप में|

ग)व्यक्ति की प्रत्याशा के रूप में|

घ)व्यक्ति के निर्णय प्रक्रियाओं के रूप में|

उत्तर : 1-क ख-घ 3-ख 4-क 5-ग

7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

.उच्चतर प्रायोगिक मनोविज्ञान –डा.अरुण कुमार सिंह –मोतीलाल –बनारसीदास

.सामान्य मनोविज्ञान-सिन्हा एवं मिश्रा –भारतीय भवन

.आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान-सुलैमान एवं खान –शुक्ला बुक डिपो ,पटना

.एक्सपेरिमेंटल साइकोलाजी –कांलिन्स एवं ड्रेक

. एक्सपेरिमेंटल साइकोलाजी-आँएगुड

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.ध्यान के प्रमुख प्रकारों का सोदाहरण वर्णन करें |

2. अवधान भंग अवधान परिवर्तन के बारे में विस्तार से समझायें ?

इकाई- 8 अभिप्रेरणा (Motivation)

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 अभिप्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषाएँ
8.4 अभिप्रेरणा के प्रकार
8.5 अभिप्रेरणा के संघटक
8.6 अभिप्रेरक
8.7 सीखने में अभिप्रेरणा
8.8 अभिप्रेरणा का आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त
8.9 सारांश
8.10 शब्दावली
8.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
8.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
8.13 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

क्रियाशीलता मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृति है ,वह सदैव कोई न कोई कार्य या व्यवहार करता रहता है उसकी इस क्रियाशीलता का कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है। मनुष्य के सभी प्रकार के व्यवहार का को परिचालित करने वाली कुछ प्रेरक शक्तियाँ होती हैं जो उसे विभिन्न प्रकार के कार्य या व्यव्हार करने की प्रेरणा प्रदान करती है। अभिप्रेरणा सीखने की प्रक्रिया को नया जीवन देती है। अभिप्रेरणा लक्ष्य आधारित व्यव्हार का उत्प्रेरण है ।अर्थात अभिप्रेरणा के द्वारा किसी व्यक्ति के लक्ष्योंन्मुख व्यवहार को सक्रीय या ऊर्जान्वित करना है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों अनुसार प्राणी के विभन्न व्यवहारोंको संचालित,निर्देशित तथा संगठित करने वाली मुख्य शक्ति अभिप्रेरणा है । प्राणीयों के द्वारा किये जाने वाले विभिन्न व्यवहारों को समझने के लिऐ अभिप्रेरणा के प्रत्यय का अध्ययन करना अत्यंत आवश्यक है ।

इस इकाई में आप अभिप्रेरणा के विषय में अध्ययन करेंगे ।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

15. अभिप्रेरणा का अर्थ जान पाऐंगे।
16. अभिप्रेरणा की विभिन्न परिभाषाऐं लिख सकेंगे।
17. अभिप्रेरणा के प्रकार समझ सकेंगे।
18. अभिप्रेरणा के स्त्रोतों या संघटक को स्पष्ट कर सकेंगे।
19. अभिप्रेरकों के अर्थ तथा प्रकारों को समझ सकेंगे ।
20. सीखने में अभिप्रेरणा के महत्व को जान पाएंगे ।
21. अभिप्रेरणा का आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त को समझ सकेंगे ।

8.3 अभिप्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Motivation)

अभिप्रेरणा शब्द का अंग्रेजी समानार्थक शब्द motivation है । जो की लैटिन भाषा के motum(मोटम) या movers (मोवेयर) शब्द से बना है। जिसका अर्थ है 'to move'अर्थात गति प्रदान करना । इस प्रकार अभिप्रेरणा वह कारक है , जो कार्य को गति प्रदान करता है । दूसरे शब्दों में अभिप्रेरणा एक आंतरिक शक्ति है जो व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है । इसीलिए अभिप्रेरणा ध्यानाकर्षण या लालच की कला है, जो व्यक्ति में किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित करती है।

शिक्षा एक जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है तथा प्रत्येक क्रिया के पीछे एक बल कार्य करता है जिसे हम प्रेरक बल कहते हैं । इस संदर्भ में प्रेरणा एक बल है जो प्राणी को कोई निश्चित व्यव्हार या निश्चित दिशा में चलने के लिए बाध्य करती है । अभिप्रेरणा को प्रत्यक्ष निरिक्षण के द्वारा देखा जाना संभव नहीं होता है । यह एक अदृश्य प्रकार की शक्ति होती है जिसके प्रभावों का निरिक्षण करना ही संभव होता है । अभिप्रेरणा शब्द को प्राणी की सभी प्रकार की अभिप्रेरणात्मक प्रक्रियाओं को इंगित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरणा शब्द को अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया हैं । जिनमें से कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गयी परिभाषाएँ निम्न है –

गुड के अनुसार -"अभिप्रेरणा किसी कार्य को प्रारंभ करने ,जारी रखने अथवा नियंत्रित करने की प्रक्रिया है" ।

ब्लेयर,जोंस,सिम्पसन के अनुसार –"अभिप्रेरणा वह प्रक्रिया है, जिसमें सीखने वाले व्यक्ति की आंतरिक उर्जाएं अथवा आवश्यकताएं उसके वातावरण के विभिन्न लक्ष्यों की ओर निर्देशित होती हैं।"

ड्रेवर के अनुसार "अभिप्रेरणा एक भावात्मक क्रियात्मक कारक है जो चेतन अथवा अचेतन ढंग से निर्धारित परिणाम अथवा लक्ष्य की ओर व्यक्ति के व्यवहार की दिशा को निर्धारित करने के लिए क्रियाशील होता है"।

मैकड्यूगल के अनुसार "अभिप्रेरणा व्यक्ति की वह दशा है ,जो किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए निश्चित व्यवहार को स्पष्ट करती है।"

एटकिंसन के अनुसार "अभिप्रेरणा का सम्बन्ध किसी एक अथवा अधिक प्रभावों को उत्पन्न करने के लिए कार्य करने की प्रवृत्ति को उद्वेलित करने से होता है।"

मैकडोनाल्ड के अनुसार "अभिप्रेरणा व्यक्ति के अंदर उर्जा परिवर्तन है जो भावात्मक जागृति तथा पूर्व अपेक्षित उद्देश्य अनुक्रियाओं से निर्धारित होता है।"

स्कीनर के अनुसार " अभिप्रेरणा सीखने का सर्वोत्तम राजमार्ग है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि अभिप्रेरणा वास्तव में व्यक्ति में वह आन्तरिक स्थति अथवा तत्परता की स्थति है जो उसे किसी विशिष्ट प्रकार के व्यवहार को प्रारम्भ करने तथा उसे कोई निश्चित दिशा देती है।

8.4 अभिप्रेरणा के प्रकार

अभिप्रेरणा दो प्रकार की होती है।

वाह्य अभिप्रेरणा - इस प्रेरणा में बालक किसी कार्य को अपनी स्वयं की इच्छा से न करके किसी दूसरे की इच्छा से या वाह्य प्रभाव के कारण करता है। इस कार्य को करने से उसे किसी वांछनीय या निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति होती है। वाह्य अभिप्रेरणा साधक के बाहर से आती है। जैसे-खेल के मैदान में प्रतियोगी के द्वारा अच्छा प्रदर्शन करने पर उसे ट्राफी या पुरस्कार मिलना भी वाह्य अभिप्रेरणा है।

आन्तरिक अभिप्रेरणा- इस प्रेरणा में बालक किसी कार्य को अपनी स्वयं की इच्छा से करता है। तथा इस कार्य को करने से उसे सुख और संतोष प्राप्त होता है। किसी खेल को आनंद हेतु खेलना, किसी परीक्षा को स्व-मूल्यांकन हेतु पास करने का यत्न करना ,या किसी प्रकार की समाज सेवा में लगना ताकि संतोष की प्राप्ति हो,आन्तरिक अभिप्रेरणा के उदाहरण हैं।

8.5 अभिप्रेरणा के संघटक

अभिप्रेरणा के संघटक निम्न हैं –

आवश्यकताएं - मनुष्य की मुख्य रूप से जैविक और सामाजिक दो तरह की आवश्यकताएं होती हैं भोजन,जल,वायु,नींद ,मलमूत्र त्याग, आदि जैविक आवश्यकताएं हैं। जिनके पूरा न होने से मनुष्य का जीवन खतरे में पड़ सकता है यदि इनमें से कोई भी आवश्यकता पूरी नहीं होती है तो मनुष्य के शरीर में तनाव उत्पन्न हो जाता है। जिससे मनुष्य उस आवश्यकता विशेष की पूर्ति का प्रति क्रियाशील हो जाता है । मनोवैज्ञानिकों ने आवश्यकता को अभिप्रेरणा के लिए पहला कदम बताया है। मनुष्य की आवश्यकता पूरी होते ही उसके शारिरीक तनाव की समाप्ति हो जाती है।

चालक या अंतर्नोद - अंतर्नोद को चालक भी कहते हैं। प्राणी की आवश्यकताएं अंतर्नोद को जन्म देती हैं।जब किसी व्यक्ति में किसी चीज के प्रति आवश्यकता उत्पन्न होती है तो उससे उस व्यक्ति में उस आवश्यकता को पूरा करने के लिए क्रियाशीलता बढ़ जाती है। इसी क्रियाशीलता को चालक या अंतर्नोद कहते हैं। जैसे- भूख लगने पर भोजन की आवश्यकता यह आवश्यकता प्राणी में भूख चालक को जन्म देती है इसी प्रकार पानी की आवश्यकता प्यास चालक को जन्म देती है। शारिरीक आवश्यकताओं के अतिरिक्त कुछ मनोवैज्ञानिक आवश्कताएं भी होती हैं ,जिनसे मनोवैज्ञानिक अंतर्नोद उत्पन्न होते हैं।

प्रोत्साहन- प्रोत्साहन का सम्बन्ध वाह्य वातावरण या वाह्य वस्तुओं से होता है जो व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करती है तथा जिसकी प्राप्ति से उसकी आवश्यकता की पूर्ति तथा चालक में कमी हो जाती है। जैसे-भूख एक चालक है। अतः भूख चालक है। जिसे भोजन संतुष्ट करता है अतः भूख चालक के लिए भोजन प्रोत्साहन या उद्दीपक का कार्य करता है। जिस वस्तु से आवश्यकता अथवा अंतर्नोद की समाप्ति होती है उसे प्रोत्साहन कहते हैं। अतः प्रोत्साहन वह उद्दीपक है जो अंतर्नोद या अभिप्रेरक को जागृत करता है।

अतः स्पष्ट है कि आवश्यकता चालक और उद्दीपन का एक-दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को आवश्यकता चालक उद्दीपन सूत्र के नाम से व्यक्त करते हुए हिल्गार्ड ने माना है कि आवश्यकता चालक को जन्म देती है ,चालक बढ़े हुए तनाव या क्रियाशीलता की अवस्था है जो कार्य की ओर अग्रसर करता है। उद्दीपन या प्रोत्साहन वाह्य वातावरण की कोई वस्तु होती है।जो आवश्यकता की संतुष्टि करती है और इस प्रकार क्रिया के द्वारा चालक को कम कर देती है।

8.6 अभिप्रेरक -

प्रेरक या प्रेरण व्यक्ति की एक आन्तरिक स्थिति है। जो उसे एक विशेष दिशा में क्रिया करने के लिए तब तक सक्रीय रखती है जब तक कि उसका लक्ष्य प्राप्त नहीं हो जाता ।अभिप्रेरक एक अति व्यापक शब्द है जिसके अंतर्गत आवश्यकता, अंतर्नोद तथा तनाव जैसे अनेक शब्द समाहित रहते हैं।

अभिप्रेरक के तीन मुख्य कार्य हैं –

1. प्रेरक व्यक्ति की शक्ति को सक्रीय बना देती है और परिणाम स्वरूप वह किसी क्रिया अथवा कार्य करने को तैयार हो जाता है। अर्थात क्रिया को प्रारम्भ करते हैं।
2. प्रेरक व्यक्ति के व्यवहार या कार्य की दिशा निर्धारित करता है ।प्रेरणा के स्वरूप के अनुकूल वह किसी निश्चित दिशा में व्यवहार करने के लिए उत्प्रेरित हो उठता है ।अर्थात क्रियाओं को गति प्रदान करते हैं।
3. उद्देश्य प्राप्ति तक क्रियाओं की निरंतरता को बनाए रखते हैं ।अर्थात प्रेरक ,व्यक्ति को तब तक सक्रीय रखते हैं जब तक कि सम्बंधित लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती ।इस प्रकार व्यक्ति अपने लक्ष्य की प्राप्ति तक क्रियाशील रहता है।

अभिप्रेरकों के प्रकार –अभिप्रेरकों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जाता है। मैस्लो के अनुसार अभिप्रेरकों को जन्मजात अभिप्रेरक तथा अर्जित अभिप्रेरकों में बाँटा जा सकता है ।थाम्पसन के अनुसार अभिप्रेरकों को स्वाभाविक अभिप्रेरक तथा कृत्रिम अभिप्रेरक में तथा गैरट के अनुसार अभिप्रेरकों को जैविक अभिप्रेरक, मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरक तथा सामाजिक अभिप्रेरक में बाँटा जा सकता है।

जन्मजात अभिप्रेरक – वो अभिप्रेरक जो मनुष्य में जन्म से पाए जाते हैं। जैसे- भूख,प्यास,नींद,थकान आदि।

अर्जित अभिप्रेरक– वो अभिप्रेरक जिन्हें व्यक्ति अपने प्रयासों से प्राप्त करता है। जैसे- मान,सम्मान रूचि,प्रतिष्ठा आदि।

स्वाभाविक अभिप्रेरक – ये अभिप्रेरक व्यक्ति में स्वभाव से पाए जाते हैं ।जैसे-शख प्राप्त करना खेलना आदि।

कृत्रिम अभिप्रेरक – ये प्रेरक प्राणी के व्यवहार को नियंत्रित करने ,प्रोत्साहित करने के लिए स्वाभाविक अभिप्रेरकों के पूरक के रूप में प्युक्त किये जाते हैं ।जैसे-किसी खेल प्रतियोगिता के उपरांत पुरस्कार वितरण करना। पुरस्कार,दंड ,प्रसंशा आदि कृत्रिम उत्प्रेरक हैं।

जैविक अभिप्रेरक–जैविक अभिप्रेरक व्यक्ति की जैविकी आवश्यकताओं के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। जैसे- क्रोध,भय ,प्रेम आदि।

मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरक - मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरक जैसे-रचनात्मकता ,जिज्ञासा ,पलायन आदि।

सामाजिक अभिप्रेरक- सामाजिक अभिप्रेरक ,सामाजिक मान्यताओं ,रीतिरिवाजों ,सम्बन्धों आदि के कारण उत्पन्न होते हैं।जैसे- प्रतिष्ठा ,सुरक्षा ,संग्रह ,समूह में रहना आदि।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. स्कीनर के अनुसार अभिप्रेरणा को परिभाषित कीजिए।
2. अभिप्रेरणा कितने प्रकार की होती है।
3. काम,क्रोध प्रेम आदि .....है।
4. अंतर्नोद को .....भी कहते हैं।

8.7 सीखने में अभिप्रेरणा (Motivation in Learning)

सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।अभिप्रेरणा सीखने की प्रक्रिया और परिणाम दोनों को प्रभावित करती है। अभिप्रेरित शिक्षार्थी सीखने की प्रक्रिया में सक्रीय रूप से भाग लेते हैं।अभिप्रेरणा का उचित प्रयोग करके अध्यापक सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को बहुत अच्छी तरह से पूरा कर सकता है।अभिप्रेरित बालक बहुत शीघ्रता से सब कुछ सीख लेता है।तथा अध्यापक विभिन्न अभिप्रेरकों का उपयोग करके बालक को सीखने के लिए अभिप्रेरित कर सकते हैं।अभिप्रेरकों के उचित प्रयोग से अध्यापक बालकों के व्यवहार को वांछित दिशा में निर्देशित कर सकता है।

एंडरसन के अनुसार -" सीखने की प्रक्रिया सर्वोत्तम रूप से आगे बढ़ेगी यदि वह अभिप्रेरित होगी।"

(Learning will preceed best,if motivated.)

वुडवर्थ के मतानुसार –"सीखने की प्रक्रिया द्वारा अधिकतम निष्पत्ति तभी सम्भव है जब सीखने वालों में सीखने की योग्यताओं के साथ अभिप्रेरण भी हो।"

अर्थात निष्पत्ति (Achivement)= योग्यता (Ability) + अभिप्रेरणा (Motivation)

यदि कोई बालक योग्य है, तो उसे अभिप्रेरणा के द्वारा अपने लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर सकता है।

अभिप्रेरणा का सीखने में महत्व –

1. अभिप्रेरणा व्यक्ति के व्यवहार में शक्ति का संचार करती है । अर्थात विद्यार्थी को सीखने में शक्ति प्रदान करती है। दंड तथा पुरस्कार आदि प्रेरणाएं सीखने के अमल में बहुत लाभदायक होती हैं।
2. अभिप्रेरणा व्यक्ति के व्यवहार को इस प्रकार मोड़ देती है कि उसे संतुष्टि की भावना अनुभव होने लगती है ।
3. अभिप्रेरणा विद्यार्थियों को प्रेरित करके उन्हें अपने ध्यान को पाठ्य विषय में केन्द्रित करने में सहायता दे सकता है ।
4. अभिप्रेरणा विद्यार्थियों में रूचि उत्पन्न करने की कला है ।
5. अभिप्रेरणा विद्यार्थियों में चरित्र निर्माण में सहायता करती है ।
6. शिक्षक,विद्यार्थियों को सामुदायिक कार्यों में भाग लेने के लिए प्रेरित करके उनमें सामुदायिक भावना और सामाजिक गुणों का विकास कर सकता है ।
7. शिक्षक उचित प्रेरणाओं का विकास करके विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार कार्य करने में सहायता कर सकता है ।
8. अध्यापक विद्यार्थियों में अनुशासन की भावना का विकास करके अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान कर सकता है ।
9. अभिप्रेरणा विद्यार्थियों को कुछ परिस्थितियों में प्रतिक्रिया तथा दूसरों को आँखों से ओझल करने के लिए कहती है। अर्थात यह व्यवहार का चुनाव करती है।
10. अभिप्रेरणा व्यक्ति को तब तक क्रियाशील रखती है, जब तक कि उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो जाती ।
11. अभिप्रेरणा शिक्षार्थी में उत्सुकता पैदा करती है।
12. अभिप्रेरणा द्वारा विद्यार्थियों को न केवल विषयों का ज्ञान सरलता से कराया जा सकता है, अपितु उन्हें कौशलों का प्रशिक्षण भी सरलता से दिया जा सकता है ।
13. अभिप्रेरणा विद्यार्थियों का सीखने में अवधान रखने में बहुत सहायक होती है,चाहे उसकी उसमें रूचि हो या न हो । रूचि के अभाव में अवधान बनाए रखना अभिप्रेरणा की सबसे बड़ी देन होती है ।
14. अभिप्रेरणा द्वारा छात्रों को समाज सेवा एवं राष्ट्र हित के कार्यों की ओर अग्रसर किया जा सकता है। जैसे-समाज सेवक या महापुरुषों का जीवन परिचय अभिप्रेरक का कार्य करते हैं ।

इस प्रकार अभिप्रेरणा, शिक्षार्थियों को वह सब सीखाने में सहायक होती है, जो हम उन्हें सिखाना चाहते हैं।

छात्रों को अभिप्रेरित करने के लिए निम्न बातें महत्वपूर्ण हो सकती हैं।–

सीखने की इच्छा –अभिप्रेरणा के द्वारा बालकों में सीखने की इच्छा जागृत करना है। सीखने की प्रक्रिया तब ही सरल ,शीघ्र तथा स्थायी होती है जब व्यक्ति सीखने का इच्छुक होता है। यदि व्यक्ति अपनी इच्छा से कोई कार्य करता है, तो वह उसे शीघ्रता से सीख लेता है। शिक्षक इसका उपयोग अभिप्रेरक के रूप में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को गति प्रदान करने में अत्यंत सरलता से कर सकते हैं।

शिक्षार्थियों की आवश्यकताएं –कोई भी ज्ञान या कौशल चाहे कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो यदि उसका शिक्षार्थियों की आवश्यकता से सम्बन्ध न हो तो शिक्षार्थी उसे सीखने के लिए अभिप्रेरित नहीं होता है, लेकिन यदि ज्ञान शिक्षार्थियों की आवश्यकता के अनुरूप हो तो वह उसे आसानी से सीख लेता है। अत: विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने के लिए ज्ञान को आवश्यकताओं से जोड़ना चाहिए।

आकांक्षा स्तर-प्रत्येक व्यक्ति की अपनी-अपनी आकांक्षाएं होती हैं। अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु शिक्षार्थी सीखने को अभिप्रेरित होता है। किसी व्यक्ति की उच्च आकांक्षा होती है। तथा किसी व्यक्ति का निम्न आकांक्षा स्तर होता है। व्यक्ति अपने आकांक्षा स्तर के अनुरूप ही प्रयास करता है। इस प्रकार हम छात्रों का आकांक्षा स्तर बढ़ाकर उनकी अभिप्रेरणा में वृद्धि कर सकते हैं।

कक्षा का वातावरण-कक्षा का वातावरण भी छात्रों को अभिप्रेरित करने में अभिप्रेरक का कार्य करता है।सुन्दर तथा हवादार कक्ष पर्याप्त प्रकाश की व्यवस्था ,शांत वातावरण ,शिक्षक -शिक्षार्थियों के सम्बन्ध ,छात्रों के आपसी सम्बन्ध इन सबसे कक्षा का वातावरण तैयार होता है।वातावरण जितना अच्छा होगा, छात्र सीखने को उतने ही अधिक अभिप्रेरित होंगे।

उपयुक्त शिक्षण विधियों का उपयोग- यदि शिक्षक पढाते समय ऐसी शिक्षण विधियों का उपयोग करें जिनसे छात्रों को शीघ्रता से समझ आए और वो अपने लक्ष्य में सफल हों तो शीघ्र सफलता से छात्रों को पुनर्बलन मिलता है और सीखने वाले छात्र अभिप्रेरित होते हैं।

शिक्षक का व्यवहार- शिक्षक का शिक्षार्थियों के प्रति प्रेम, सहानुभूति एवं सहयोगपूर्ण व्यवहार से शिक्षार्थियों की अभिप्रेरणा को बढ़ाया जा सकता है।शिक्षक विद्यार्थियों को अभिव्यक्ति के स्वतन्त्र अवसर प्रदान करके और उनकी समस्याओं का तुरंत समाधान करके उन्हें सीखने के लिए अभिप्रेरित कर सकता है।

प्रशंसा-यदि किसी छात्र के अच्छे कार्यों के लिए उसकी प्रसंशा की जाती है तो उसके द्वारा उस प्रकार के कार्य करने की प्रायिकता बढ़ जाती है ।अपने शिक्षक या अपने से बड़ों के द्वारा की गई प्रशंसा बालक को किसी भी कार्य को करने के लिए अभिप्रेरित करती है ।

निंदा- निंदा एक निषेधात्मक अभिप्रेरक है। निंदा को एक प्रकार का सामाजिक व मानसिक उत्पीड़न माना जा सकता है । निंदा के भय से बालक अपने व्यवहार में सुधार लाते हैं ।सामाजिक परिस्थितियों में की जाने वाली निंदा छात्रों के ऊपर अत्यंत प्रभाव छोड़ती है ।

सफलता का ज्ञान –यदि किसी व्यक्ति को उसकी सफलता का शीघ्र ज्ञान करा दिया जाए तो वह आगे के कार्य को और अधिक उत्साह से पूरा करता है । इस प्रकार जब कोई छात्र कक्षा में प्रथम आता है ,तो अगली कक्षा में भी वह प्रथम आने को मेहनत करता है । इस प्रकार सफलता का ज्ञान व्यक्ति के लिए अभिप्रेरक का कार्य करता है।

प्रतियोगिता-प्रतियोगिता से छात्रों में अधिक परिश्रम की भावना का विकास होता है। परन्तु इर्ष्या, क्रोध, घृणा आदि पर आधारित प्रतिद्वंतिता को कदापि सराहनीय नहीं माना जाता है तथा इस प्रकार की अवांछनीय प्रतिद्वंदिता से सदैव बचना चाहिए । प्रतियोगिता के फलस्वरूप बालक कठिन कार्यों को करने के लिए भी अभिप्रेरित होता है।

पुरस्कार -पुरस्कार अभिप्रेरणा प्रदान करने का बहुत अच्छा साधन है । पुरस्कार बालकों के लिए अत्यंत शक्तिशाली अभिप्रेरक की तरह कार्य करते हैं। किन्तु पुरस्कारों का प्रयोग अत्यंत सावधानी पूर्वक करना चाहिए ।यह लालच का कारण नहीं बनना चाहिए ऐसा न हो कि बालक पुरस्कार प्राप्ति के लिए अनुचित तरीकों के द्वारा सफलता अर्जित करने लगे ।

रायबर्न के अनुसार –"पुरस्कार व्यक्ति में अच्छा कार्य करने की भावना जागृत करता है ।"

दंड -दंड का तात्पर्य बालकों को शारीरिक अथवा मानसिक पीड़ा देने से है ,जिसके भय से बालक भविष्य में उन कार्यों को न, करें जिसके कारण उन्हें दंड मिला हो । परन्तु दंड का प्रयोग बहुत सावधानी से करना चाहिए ।

प्रतिष्ठा या मानसम्मान -प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा होती है कि वो पद ,प्रतिष्ठा प्राप्त करे तथा समाज में अपना नाम रोशन करे। इस प्रकार प्रतिष्ठा प्राप्त करने की चाह भी बालकों को परिश्रम करने को अभिप्रेरित करती है ।

अभिप्रेरणा के सिद्धान्त- मानव में अभिप्रेरणा की उत्पत्ति कैसे होती है,यह एक जटिल प्रश्न है। अभिप्रेरणा प्रदान करने के लिए अभिप्रेरणा की प्रक्रिया तथा गतिकी को जानना तथा समझना अत्यंत आवश्यक है । मानव व्यवहार तथा उसके कारणों का अध्ययन करके

मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरणा के कई सिद्धांतों को प्रतिपादित किया है। जिसमें से प्रस्तुत इकाई में हम अब्राहम मैस्लो के अभिप्रेरणा के आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त का अध्ययन करेंगे।

8.8 अभिप्रेरणा का आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त -

अभिप्रेरणा के आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त का प्रतिपादन सन् 1954 में अब्राहम मैस्लो (Abraham Maslow) ने किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार, प्राणी का व्यवहार उसकी आवश्यकताओं से प्रेरित होता है। अपने अस्तित्व के लिए आवश्यक किसी वस्तु की कमी या माँग महसूस करता है, तो वह उसे प्राप्त करने के लिए क्रियाशील या अभिप्रेरित हो जाता है। क्योंकि एक ही व्यवहार कई कमियों या मांगों की पूर्ति कर सकता है इसलिए व्यवहार की प्रकृति बहु-अभिप्रेरित होती है । मैस्लो के अनुसार मनुष्य जब तक एक स्तर की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर लेता दूसरे स्तर की आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर नहीं बढ़ता।

मैस्लो के अनुसार व्यक्ति की आन्तरिक शक्तियाँ ही उसके लिए अभिप्रेरकों का कार्य करती हैं। उनके अनुसार ये शक्तियाँ ही मानव की आवश्यकताएं हैं। व्यक्ति इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सम्बंधित सामग्री एवं साधन जुटाता है, अनुकूल –प्रतिकूल वस्तु ,तथ्य क्रिया एवं परिस्थिति आदि की व्याख्या करता है और इन सभी को व्यवस्थित रूप में प्रयोग करता है । मैस्लो ने आवश्यकता को उनकी प्रबलता के आधार पर बनाए पदानुक्रम के रूप में वर्गीकृत किया।

इस पदानुक्रम में पाँच पदों या पाँच मूलभूत आवश्यकताओं को एक क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। तथा निम्न क्रम की माँगों के पूरी होने पर ही अगले क्रम की माँगे सक्रीय होकर

व्यक्ति को अभिप्रेरित करती हैं। मैस्लो द्वारा वर्णित क्रम इस प्रकार है-

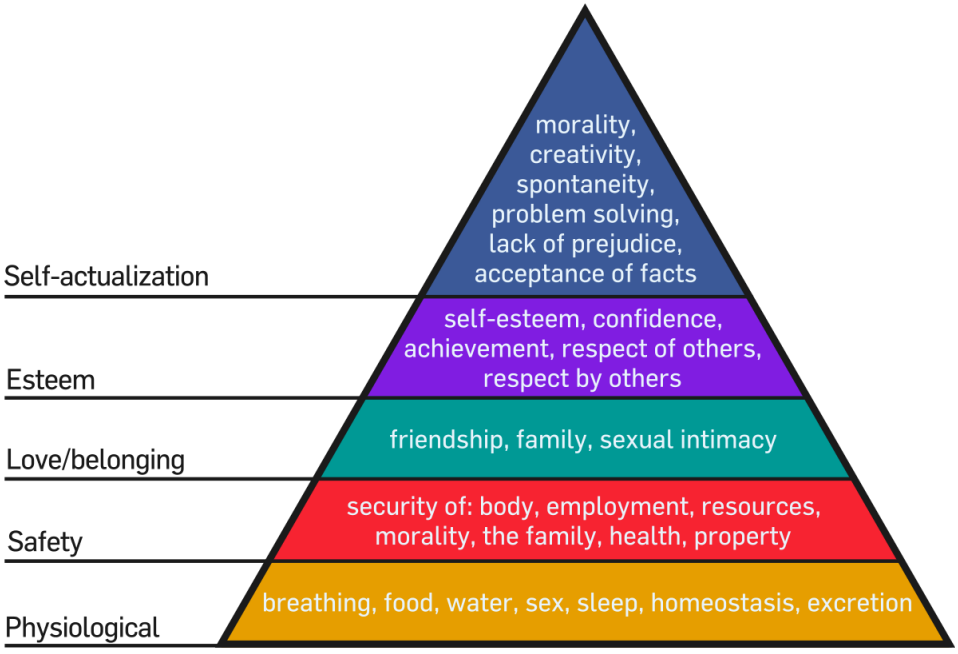

1. शारीरिक आवश्कताएं
2. सुरक्षा की आवश्यकताएं
3. सम्बद्धता एवं स्नेह की आवश्यकताएं
4. सम्मान की आवश्यकताएं
5. आत्मसिद्धि की आवश्यकताएं

शारीरिक आवश्यकताएं –किसी भी व्यक्ति की शारिरीक आवश्यकताएं व्यक्ति की मूलभूत एवं सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकताएं होती हैं। इनके अंतर्गत भोजन, पानी, आराम तथा यौन सम्बंधी आवश्यकताएं प्रमुख हैं। कभी-कभी व्यक्ति इन आवश्यकताओं को पूरी करने में ही अपना जीवन व्यतीत कर देता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति किए बिना वह प्रायः इससे ऊपर के स्तर की आवश्यकताओं की प्राप्ति की बात ही नहीं सोच पाता। ये आवश्यकताएं उसके लिए आवश्यक एवं प्रबल होती हैं। इनकी पूर्ति के लिए वह प्रयास करता है । ये शारीरिक आवश्यकताएं उसके लिए आवश्यक एवं प्रबल होती हैं। इनकी पूर्ति के लिए वह प्रयास करता है।

सुरक्षा की आवश्यकताएं- शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात व्यक्ति सुरक्षा की आवश्यकता की ओर बढ़ता है । सुरक्षा की आवश्यकताओं के अंतर्गत शारीरिक सुरक्षा ,जीवन में स्थिरता ,निर्भरता ,बचाव,भय ,चिंता आदि आती हैं । व्यक्ति इन्हें प्राप्त करने के लिए हर संभव प्रयास करता है।

सम्बद्धता एवं स्नेह की आवश्यकताएं- सम्बद्धता व्यक्ति को परीवार एवं समाज में प्रतिष्ठा एवं सम्मान प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है। और वह किसी समूह का सदस्य बनकर एवं अच्छा पड़ोसी बनकर सनाह पाने का प्रयास करता है । स्नेह व्यक्ति को स्नेह देने व दूसरों से स्नेह पाने को प्रेरित करता है । स्नेह व सम्बद्धता नहीं मिलने पर व्यक्ति कुसमायोजन करता है ।

सम्मान की आवश्यकताएं- प्रथम तीन आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद व्यक्ति को आत्मसम्मान एवं दूसरों से सम्मान पाने की इच्छा अभिप्रेरक का काम करती है । आत्मसम्मान पाने के लिए व्यक्ति अपनी योग्यता एवं क्षमता का का आंकलन करता है । और उनमें वृद्धि के उपाय खोजता है अपने अंदर आत्मविश्वास ,उपलब्धि ,स्वतन्त्रता आदि की भावनाओं को विकसित करता है । इन्हीं श्रेष्ठ गुणों के कारण उसे दूसरों से प्रसंशा ,प्रतिष्ठा एवं सम्मान प्राप्त होता है । इसके परिणाम स्वरूप वह अपने आप को योग्य बनाए रखने के लिए समाज के लिए उत्पादक कार्य करता है ।

आत्मसिद्धि की आवश्यकताएं - आत्म सिद्धि की आवश्कताएं व्यक्ति के लिए अंतिम अभिप्रेरक का काम करती है इस स्तर पर व्यक्ति तभी पहुँचता है जब कि वो प्रथम चार स्टारों को पूरा कर चुका हो । आत्मसिद्धि से तात्पर्य ऐसी अवस्था से है जहाँ व्यक्ति अपनी अपनी सभी योग्यताओं और अंत: क्षमताओं से पूर्णतया अवगत हो जाता है और उनके अनुरूप अपने आपको विकसित करने का प्रयास करता है ।

मैस्लो के सिद्धान्त की विशेषताएं –

1. मैस्लो के सिद्धान्त के अनुसार मानव की आवश्यकताएं उसके लिए अभिप्रेरक का कार्य करती हैं और वह इनके लिए क्रियाशील रहता है ।
2. इस सिद्धान्त के अनुसार मानव कि आवश्यकताओं की पूर्ति एक विशेष क्रम में होती है । पहले व्यक्ति नीचे के स्तर की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है । इसके पश्चात वह ऊपर के क्रम की आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास करता है ।
3. इस सिद्धान्त के अनुसार नीचे के क्रम से पहली दो आवश्यकताएं निम्न स्तर की तथा अंतिम तीन आवश्यकताएं उच्च स्तर की आवश्यकताएं कहलाती हैं ।

4. इस सिद्धान्त के अनुसार जैसे-जैसे व्यक्ति ऊपर के क्रम की आवश्यकताओं की ओर बढ़ता है उसके व्यक्तित्व का विकास होता जाता है और अंतिम आवश्यकता को पूर्ण करने पर वह पूर्ण व्यक्तित्व वाला व्यक्ति हो जाता है ।
5. मैस्लो ने आत्मसिद्ध व्यक्ति की कुछ विशेषताएं बताई हैं-प्रत्यक्षीकरण में कुशल,सादगी,स्वतंत्र ,मानवता से जुड़ा हुआ , अकेलापन तथा अलगाव, समस्या केन्द्रित समझ , सृजनात्मक, जनतंत्रीय विचारधारा, हँसमुख स्वभाव , एवं लचीला ।

मैस्लो के सिद्धान्त की कमियाँ-

1. मैस्लो के आवश्यकता मॉडल के स्तरों को एक दूसरे से अलग करना अत्यंत कठिन है। कुछ बातें ऐसी हैं जो दोनों स्तरों में ली जा सकती हैं। जैसे- भोजन के साथ निर्भरता,निर्भरता के साथ स्नेह, इन्हें अलग करना कठिन कार्य है।
2. इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में मैस्लो ने मात्र 49 प्रयोज्य ही लिए थे इसलिए मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि इतने कम प्रयोज्यों के आधार पर किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन वैज्ञानिक नहीं है।
3. मैस्लो द्वारा बताए गए आत्मसिद्धि के गुणों से भी सभी मनोवैज्ञानिक सहमत नहीं हैं ।
4. मैस्लो के अनुसार कोई व्यक्ति ऊपर के स्तर पर तभी पहुँचता है जब तक कि वह नीचे का स्तर पार न कर ले । जबकि व्यवहार में व्यक्ति नीचे का स्तर पार किये बिना ही ऊपर के स्तर पर पहुँच जाता है।
5. सम्मान की आवश्यकता को पाने के लिए व्यक्तियों में प्रतिस्पर्धा का विकास होता है। जो कि आगे चलकर घृणा एवं द्वेष का रूप ले लेता है ।

मैस्लो के सिद्धान्त की शिक्षा में उपयोगिता - मैस्लो का सिद्धांत एक मानवतावादी व्यक्तित्व सिद्धान्त है,यह मनुष्य को मशीन नहीं जैविक प्राणी मानता है ।इस सिद्धान्त की शिक्षा में बहुत उपयोगिता है ।

1. किसी भी स्तर की शिक्षा का पाठ्यक्रम वास्तविक जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए ।
2. बालकों को पढ़ाने से पहले उन्हें सीखने के लिए अभिप्रेरित करना चाहिए ।
3. व्यक्ति की आवश्यकताएं उसके लिए सबसे अधिक अभिप्रेरक होती हैं । अतः बालकों को सिखाते या पढ़ाते समय उसको बालक की आवश्यकताओं से जोड़ कर पढ़ाना चाहिए ।

4. बालक में आत्मसिद्धि की आवश्यकताओं को जाग्रत कर उन्हें उच्च व्यक्तित्व का व्यक्ति बनाना चाहिए।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5. छात्रों को अभिप्रेरित करने के लिए कोई चार बातें लिखिए।
6. अभिप्रेरक कितने प्रकार के होते हैं।
7. मैस्लो ने सबसे अधिक महत्वपूर्ण किन आवश्यकताओं को माना है।
8. किसी भी स्तर की शिक्षा का पाठ्यक्रम .....से सम्बन्धित होना चाहिए।

8.9 सारांश -

अभिप्रेरणा मनुष्य के सभी प्रकार के व्यवहार को परिचालित करने वाली कुछ प्रेरक शक्तियाँ होती हैं जो उसे विभिन्न प्रकार के कार्य या व्यवहार करने की प्रेरणा प्रदान करती है। अभिप्रेरणा सीखने की प्रक्रिया को नया जीवन देती है ।अभिप्रेरणा मुख्यत: दो प्रकार की होती है आन्तरिक तथा वाह्य अभिप्रेरणा ।आवश्यकता, अंतर्नाद ,प्रोत्साहन तथा अभिप्रेरक- ये चार अभिप्रेरणा के मुख्य संघटक हैं। सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा का महत्वपूर्ण स्थान है। सीखने की इच्छा जागृत करके, आकांक्षा स्तर बढाकर तथा प्रतियोगिता की भावना उत्पन्न करके छात्रों को अभिप्रेरित किया जा सकता है । मैस्लो के आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त के अनुसार मानव की आवश्यकताएं उसके लिए अभिप्रेरक का कार्य करती हैं, और वह इनके लिए क्रियाशील रहता है ।

8.10 शब्दावली

अंतर्नोद:आवश्यकताओं के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले मानसिक तनाव को अंतर्नोद कहा जाता है ।

अभिप्रेरक : जब आवश्यकता तथा अंतर्नोद के साथ लक्ष्य का भाव भी समाहित हो जाता है, तो उसे अभिप्रेरक कहते हैं।

8.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7. स्कीनर के अनुसार " अभिप्रेरणा सीखने का सर्वोत्तम राजमार्ग है ।"
8. अभिप्रेरणा दो प्रकार की होती हैं।
   अ . आन्तरिक अभिप्रेरणा ब. वाह्य अभिप्रेरणा

9. आन्तरिक अभिप्रेरणा
10. चालक
11. छात्रों को अभिप्रेरित करने के लिए कोई चार बातें-
    अ. सीखने की इच्छा
    ब. कक्षा का वातावरण
    स. आकांक्षा स्तर-
    द. सफलता का ज्ञान
12. मैस्लो ने सबसे अधिक महत्वपूर्ण शारिरीक आवश्यकताओं को माना है।
13. वास्तविक जीवन

8.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता एस पी एवं अलका गुप्ता (2008),उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
2. लाल, रमन बिहारी एवं राम निवास मानव (2004),शिक्षा मनोविज्ञान।
3. मुहम्मद सुलेमान, विनय कुमार चौधरी (2008),आधुनिक औद्योगिक एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान ।

8.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. अभिप्रेरणा से आप क्या समझते हैं ?अभिप्रेरणा के प्रकार एवं संघटकों की व्याख्या कीजिए।
2. अभिप्रेरणा का सीखने में क्या महत्व है ? विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. बालकों की अभिप्रेरणा बढ़ाने की विधियों का वर्णन कीजिए।
4. अभिप्रेरक क्या होते हैं तथा यह कितने प्रकार के होते हैं ? स्पष्ट कीजिए।

इकाई-9-शिक्षण सूत्र, शिक्षण की अवस्थाएं- नियोजन शिक्षण, मूल्यांकन एवं प्रतिबिम्बन

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 शिक्षण

9.4 शिक्षण सूत्र

9.5 शिक्षण कार्य- अवस्थायें

9.6 सारांश

9.7 इकाई अभ्यास

9.8 इकाई क्रिया

9.9 सन्दर्भ अध्ययन

9.1 प्रस्तावना

शिक्षण एक गतिशील प्रक्रिया है। शिक्षण के द्वारा अधिगमकर्ता के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाना शिक्षण प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य होता है। अधिगमकर्ता के व्यवहार में यदि शिक्षण प्रतिबिम्बित हो तो शिक्षण कार्य सार्थक माना जा सकता है।

इस इकाई में शिक्षण के सूत्र एवं शिक्षण की विभिन्न अवस्थाओं का विवरण दिया जा रहा है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के द्वारा अधिगमकर्ता-

1. शिक्षण सूत्रों से अवगत हो सकेगा।
2. शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षण सूत्रों का उपयोग कर सकेगा।
3. शिक्षण की विभिन्न अवस्थाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगा।
4. शिक्षण की विभिन्न अवस्थाओं का उचित ढंग से गठन कर शिक्षण कार्य में इसका सफलतापूर्वक प्रयोग कर सकेगा।

9.3 शिक्षण (Teaching))

साधारण अर्थों में शिक्षण का अर्थ अध्यापक वर्ग द्वारा अपनाये गये व्यवसाय या किसी विशेष को कुछ सिखाने या कुछ विशेष ज्ञान, कौशल, रूचियों या अभिवृत्तियों आदि को अर्जित करने में दी जाने वाली सहायता से लिया जाता है।

शिक्षण सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में घटने वाली एक बहुत ही जटिल सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक प्रक्रिया है जिसका स्वरूप और संगठन समाज के सामाजिक और साँस्कृतिक रूप के अनुसार बदलता रहता है।

"शिक्षण सीखने हेतु सम्पन्न की जाने वाली क्रियाओं की प्रणाली है"।

"Teaching is a system of actions intended to produce learning.

"

बी0 ओ0 स्मिथ 1960

"शिक्षण शिक्षक का वह कार्य है जिसे बालक के विकास के लिये किया जाता है"Teaching is the task of teacher which is performed for the development of a child."

थोमस एफ ग्रीन

9.4 शिक्षण सूत्र (Maxim of Teaching))

वास्तविक अर्थ में तो अध्यापक वह है जो अपने ज्ञान तथा अनुभवों की व्याख्या छात्र के मस्तिष्क तक पहुँचा सके। छात्रों को उनकी रूचि एवं जिज्ञासा के अनुकूल ज्ञान की विविध शाखाओं से परिचय प्राप्त कराना अध्यापक की महत्वपूर्ण जिम्मेदारियों में सम्मिलित है। कक्षा के अन्दर अध्यापक का मुख्य लक्ष्य यह होता है कि वह एक ऐसा वातावरण तैयार करे जिसमें अधिक से अधिक सीखने की क्रियाऐं तथा सीखने के अनुभव उत्पन्न किय जा सके। इस दृष्टि से मनोवैज्ञानिक खोजों के आधार पर शिक्षा शास्त्रियों ने कुछ शिक्षण सूत्रों (डंगपउे व िज्मंबीपदह) को प्रतिपादित किया है। ये विश्वसनीय, सर्वकालिक एवं सार्वभौमिक है। ये शिक्षण सूत्र हैं-

(1) ज्ञात से अज्ञात की ओर (From known to unknown)

(2) स्थूल से सूक्ष्म की ओर (From concrete to abstruct)

(3) सरल से जटिल की ओर (From simple to complex)

(4) प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की ओर (From direct to indirect)

(5) पूर्ण से अंश की ओर (From whole to part)

(6) अनिश्चित से निश्चिय की ओर (From indefinite to definite)

(7) विश्लेषण से संश्लेषण की ओर (From analysis to synthesis)

(8) विशिष्ट से सामान्य की ओर (From particular to general)

(9) अनुभूत से युक्तियुक्त की ओर (From empirical to rational)

(10) मनोवैज्ञानिक से तार्किक क्रम की ओर (From psychological to logical)

(11) प्राकृतिक विधि (Follow Nature)

9.4.1 ज्ञात से अज्ञात की ओर (From known to unknown)

शिक्षण प्रक्रिया में अध्यापक बालक के पूर्व ज्ञान के आधार पर नये ज्ञान को जोड़ने की चेष्टा करता है। इसके लिये उसे 'ज्ञात से अज्ञात की ओर' के शिक्षण सूत्र को अपनाना पड़ता है। उदाहरणार्थ यदि बालकों को विविध फूलों और पत्तियों के बारे में ज्ञान कराना हो तो सर्वप्रथम उनके आकार तथा रंगों आदि की जानकारी करानी होगी और उसके बाद उनकों भिन्न -भिन्न गुणों तथा प्रयोगों के बारे में बताना होगा। इस प्रकार बालक के अन्दर किसी प्रकार की भ्रान्ति नहीं होगी।

9.4.2 स्थूल से सूक्ष्म की ओर (From concrete to abstruct)

बालक को समझने की प्रक्रिया में पहले स्थूल (ब्वदबतमजम) वस्तुओं का स्थान होता है जैसे-जैसे उसके अनुभव का क्षेत्र बढ़ता जाता है। वह सूक्ष्म विचारों को ग्रहण करने लगता है। सीखने की प्रक्रिया का यह स्वाभाविक क्रम है। शिक्षण में मध्याहन को पहले मूर्त एवं स्थूल विचारों को प्रस्तुत करना चायिे जैसे गोली, पंेसिल आदि रंग-बिरंगी स्थूल सामग्री की सहायता से गणित में जोड़ घटा आदि सिखाने का प्रयास करना चाहिये आदि।

9.4.3 सरल से जटिल की ओर (From simple to complex)

पहले आसान तथ्यों को जानना और उसकी सहायता से अनावश्यक रूप से कठिन व जटिल तथ्यों को समझने का प्रयास हमेशा ही सफलता का सूत्र है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में भी 'सरल से कठिन की ओर' अग्रसर होने का सूत्र उचित अधिगम क्रम एवं व्यवस्था प्रदान करता है। शिक्षण का यह स्वाभाविक क्रम अधिगम के लिये बच्चों को पुर्नबलन प्रदान करता है। और कठिन से कठिन तथ्यों को सीखने के लिये अभिप्रेरित करता है। उदाहरण के लिये भाषा शिक्षण में अभिव्यक्ति का कौशल विकसित करने के लिये पहले सरल वाक्य रचना का अभ्यास कराना चाहिये और बाद में बड़ी और जटिल वाक्य की रचना का।

9.4.4 प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की ओर (From direct to indirect)

जो वस्तुऐं तथा घटनायें बालक के अनुभव क्षेत्र में प्रत्यक्ष ढंग से मौजूद होती है उनका ज्ञान सरलता पूर्वक हो जाता है। वस्तुओं तथा घटनाओं के परोक्ष रूप में होंने से उनका बालक

के ज्ञानकोष में प्रविष्ट कराना कठिन कार्य होता है। अतः शिक्षक को चाहिये कि अपने विषय से सम्बन्धित ज्ञान को पहले प्रत्यक्ष ढंग से बाद में परोक्ष ढंग से प्रस्तुत हो।

9.4.5 पूर्ण से अंश की ओर (From Whole to Sart)

शिक्षण का यह सूत्र मनोविज्ञान के प्रमुख सम्प्रदाय गैस्टाल्टवाद पर आधारित है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया पूर्ण से अंश की ओर होती है। उदाहरण के लिये पौधे के भागों से परिचित कराने के लिये उसके सामने पहले सम्पूर्ण पौधे को दिखाना चाहिये और फिर धीरे-धीरे उसके विभिन्न भागों को दिखाते हुए उसकी कार्यप्रणाली से परिचित कराना ज्यादा प्रभावी होता है।

9.4.6 अनिश्चित से निश्चित की ओर (From indefinite to definite)

बालक का मष्तिष्क अपने वातावरण के सम्पर्क में अनिश्चित से निश्चित की ओर बढ़ता है। जिस प्रकार एक अन्वेषक अनिश्चित तथ्यों के आधार पर निश्चित तथ्यों की प्राप्ति करत है उसी प्रकार शिक्षार्थी का मस्तिष्क कार्यशील रहता है। बालक सीखने की प्रथम अवस्था में अनिश्चय की दशा में रहता, बाद में चलकर वह निश्चय की स्थिति में पहुँचता है। विज्ञान शिक्षण में इस सिद्धानत का प्रयोग अधिक होता है। उदाहरणार्थ गणित के पहाड़ों के निश्चित ज्ञान से गुणा भाग, वर्गमूल या धनमूल आदि सीधा जा सकता है।

9.4.7 विश्लेषण से संश्लेषण की ओर (From analysis to synthesis)

विश्लेषण मस्तिष्क की स्वाभाविक क्रिया है। किसी विषय को समझने तथा ग्रहण करने की दृष्टि से उसके विविध पक्षों का विश्लेषण अत्यनत आवश्यक है। एक कुशल अध्यापक अपने शिक्षण पर बल देता है। इसके पश्चात् वह विषय का समन्वित रूप सामने रखता है। यह संश्लेषण की क्रिया के द्वारा सम्भव होता है। संश्लेषण तथा विश्लेषण ये दोनों ही मस्तिष्क की आवश्यक क्रियाऐं हैं और इस कारण शिक्षण में इसके एक महत्वपूर्ण सूत्र के रूप में लागू किया जाता है।

9.4.8 विशिष्ट से सामान्य की ओर (From particular to general)

शिक्षण का यह सूत्र आगमनात्मक विधि (प्दकनबजपअम डमजीवक) पर आधारित है। बालक के सीखने की प्रक्रिया में यह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। बालक पहले विशिष्ट बातों की ओर आकर्षित होता है और बाद में सामान्यीकरण (ळमदमतंसपेंजपवद) की ओर अग्रसर

होता है। अतः अध्यापक को अपने शिक्षण का प्रारम्भ उदाहरणों या प्रयोगों के द्वारा ही करना चाहिए और फिर उसके आधार पर अपने विद्यार्थियों को किन्हीं नियम या सम्प्रत्यय तक पहुँचने के लिये प्रेरित करना चाहिये।

9.4.9 अनुभूत से युक्तियुक्त की ओर (From empirical to rational)

बालक सीखने की क्रिया में सर्वप्रथम निरीक्षण तथा अनुभव द्वारा ज्ञान अर्जित करता है किन्तु उसका यह ज्ञान तार्किक दृष्टि से उपयुक्त नहीं होता है। शिक्षण में अनुभूतिजन्य ज्ञान तथा तर्क सम्मत ज्ञान दोनों ही आवश्यक है। छात्र को सर्वप्रथम अपने अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के लिए सचेत किया जाता है और इसके पश्चात् तार्किक दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। विज्ञान, गणित, भाषा तथा सामाजिक विषयों के शिक्षण में इस सूत्र का प्रयोग बहुत सफलतापूर्वक किया जाता है।

9.4.10 मनोवैज्ञानिक से तार्किक की ओर (From psychological to logical)

शिक्षण मनोवैज्ञानिक तथा तार्किक दोनों क्रमों का समन्वय होता है। मनोवैज्ञानिक क्रम से यह अभिप्राय है कि किसी विषय का प्रस्तुतीकरण बालकों की रूचि, जिज्ञासा, उत्साह, आयु, ग्रहणशक्ति आदि के अनुसार हो। तार्किक क्रम में विषय को तर्क पूर्ण ढंग से कई खण्डों में विभाजित कर लिया जाय और अध्यापक इन खण्डों को क्रमशः छात्रों के सम्मुख व्यंि◌तव रूप में प्रस्तुत करें। वास्तव में शिक्षण का स्वाभाविक क्रम मनोवैज्ञानिक से तार्किक की ओर होना चाहिये।

9.4.11 प्राकृतिक विधि (Follow Nature)

शिक्षण का यह सूत्र शिक्षा के सिद्धान्तों से निकला है। रूसों के अनुसार शिक्षा प्राकृतिक ढंग से होनी चाहिये। बालक के शारीरिक तथा मानसिक विकास के नियमों के अनुकूल ही उसके शिक्षा के साधन तैयार किये जाने चाहिये।

अपनी प्रगति का मूल्यांकन करें - 1

(अ) शिक्षण के दो सूत्र बतायें।

.....

.....

.....

.....

(ब) प्राकृतिक विधि-शिक्षण सूत्र किसके दार्शनिक के शिक्षा सिद्धान्त से लिया गया है?

.....

.....

.....

.....

शिक्षण कार्य से तात्पर्य शिक्षक द्वारा सम्पन्न उन सभी शिक्षण अधिगम परिस्थितयों के प्रबन्धन या व्यवस्था से होता है जिनके अन्तर्गत एक शिक्षक को-

(प) शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच प्रत्यक्ष अन्त:क्रिया (क्पतमबज प्दजमतंबजपवद) का संचालन करना पड़ता है।

(पप) कक्षा शिक्षण हेतु अध्यापक को पूर्व तैयारी के रूप में नियोजन तथा शिक्षण-अधिगम हेतु आवश्यक सामग्री जुटाने का कार्य करना पड़ता तथा

(पपप) कक्षा शिक्षण के उपरान्त पढ़ाई हुई बातों को अच्छी तरह आत्मसात करने तथा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का मूल्यांकन करने सम्बंधी कार्य करने पड़ते हैं।

9.5 शिक्षण कार्य- अवस्थायें (Teaching Task Stages)

शिक्षक को शिक्षण कार्य कुछ निश्चित सोपानों या अवस्थाओं में व्यवस्थित करके आगे बढ़ना होता है। साधारणतया शिक्षक द्वारा सम्पन्न शिक्षण काार्य को उससे जुड़ी हुयी विभिन्न संक्रियाओं के संपादन की दृष्टि से निम्न तीन चरणों या अवस्थाओं (ैजंहमे) में विभाजित किया जाता है-

((i) पूर्वक्रियात्मक अवस्था (Preactive Stage)

(ii) अन्तः क्रियात्मक अवस्था (Interactive Stage)

(iii) उत्तर क्रियात्मक अवस्था (Post active stage)

1.5.1 पूर्व क्रियात्मक अवस्था (Preactive Stage)

यह शिक्षण कार्य को नियोजन अवस्था (च्संददपदह ैजंहम) है। एक अच्छा नियोजन शिक्षण कार्य को सुगम प्रभावशील और सभी दृष्टि से सफल बनाने में अधिक से अधिक सहायता प्रदान करता है। शिक्षक को नियोजन चरण में दो निम्न मुख्य बातों की जोर विशेष रूप् से ध्यान देना होता है। दो निम्न मुख्य बातों की ओर विशेष रूप से ध्यान देना होता है-

(प) शिक्षण संबंधी विशेष उद्देश्यों का निर्धारण।

(पप) निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये विधियों एवं उपायों का चयन।

अपने शिक्षण नियोजन हेतु सर्वप्रथम शिक्षक को जो कदम उठाना चाहिये वह शिक्षण उद्देश्यों के निर्धारण को लेकर ही होता है। इस दृष्टि से प्रत्येक अध्यापक अपने-अपने विषय और पढ़ायें जाने वाले पाठ को लेकर वांछित शिक्षण अधिगम उद्देश्यों के निर्धारण और उनको व्यवहारजन्य शब्दावली में लिखने का कार्य इस स्तर पर करता है।

नियोजन के दूसरे चरण में अध्यापक निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति किस तरह भली-भाँति की जा सकती है। इस नियोजन कार्य द्वारा निम्न निर्णय लिये जा सकते हैं-

(प) विषयवस्तु या अधिगम अनुभवों का चयन

(पप) विषयवस्तु एवं अधिगम सामग्री का संगठन एवं व्यवस्थापन

(पपप) शिक्षण सूत्रों का चयन एवं अनुपालन

(पअ) शिक्षण साधनों के चयन एवं उपयांग के बारे में निर्णय लेना

(अ) शिक्षण विधियों, तकनीकियों, व्यूह रचना तथा युक्तियों के बारे में निर्णय लेना।

(अप) कला शिक्षा की अवधि, स्थान एवं अन्य व्यवस्थापन एवं प्रबन्धन के बारे में निर्णय लेना।

9.5.2 अन्तः क्रियात्मक अवस्था (Interactive Stage)

शिक्षण कार्य की यह द्वितीय अवस्था क्रियान्वयन चरण (प्उचसमउमदजंजपवद ैजंहम) है। शिक्षण की प्रथम अवस्था में जो नियोजन किया जाता है। उसी के क्रियान्वयन का प्रयास

शिक्षण की द्वितीय अवस्था में किया जाता है। शिक्षण का वास्तविक क्रियात्मक स्वरूप यहाँ अध्यापक और विद्यार्थियों के बीच कक्षा-कक्ष अंत: क्रिया के रूप में देखने को मिलता है। यह अन्त:क्रिया जितनी सजीव, यथार्थ और प्रभावपूर्ण होगी उतनी ही सफलता निर्धारित शिक्षण-अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति में मिल सकेगी।

क्रियान्वयन अवस्था को मुख्य रूप से तीन श्रेणियों में बाँटते हैं-

(1) प्रत्यक्षीकरण (Perception)

(2) निदान (Diagnosis)

(3) प्रतिक्रियात्मक प्रक्रियाएँ (Reactive Processes)

1.5.2.1 प्रत्यक्षीकरण (Perception)

कक्षावत अन्त:क्रिया विद्यार्थियों और अध्यापकों से उचित प्रत्यक्षीकरण की माँग करती है। अध्यापक जब तक अपने विद्यार्थियों को ठीक तरह से समझ नहीं पायेगा तब तक उसके द्वारा वांछित अंत:क्रिया करना संभव नहीं हो पायेगा। यही बात विद्यार्थियों में भी होती है। उनका भी अध्यापक पर तभी सही विश्वास और आस्था होती जब वे उसकी योग्यता, शिक्षण और व्यवहार और व्यक्तित्व का सही प्रत्यक्षीकरण कर पाते हैं।

इस तरह उचित प्रत्यक्षीकरण द्वारा एक दूसरे को जानने और समझने की बात शिक्षण कार्य के उचित क्रियान्वयन के लिये काफी आवश्यक बात के रूप में मानी जानी चाहिये

1.5.2.2 निदान (Diagnosis)

कक्षा में प्रत्यक्षीकरण के बाद शिक्षक यह मालूम करता है कि छात्रों का स्तर क्या है? विषय के सम्बन्ध में पूर्व ज्ञान कितना है? इस प्रकार शिक्षक मुख्य रूप् से तीन पक्षों का निदान करने का प्रयास करता है-

(1) छात्रों की क्षमतायें तथा योग्यतायें

(2) छात्रों की अभिवृत्ति तथा अभिरूचियाँ

(3) छात्रों की शैक्षिक पृष्ठभूमि

इससे छात्रों के प्रारम्भिक व्यवहार की जानकारी लेकर शिक्षण की अनुक्रियाओं को आरम्भ करता है।

1.5.2.3 प्रतिक्रियात्मक प्रक्रियाएँ (Reactive Processes

शिक्षण में कक्षाकक्ष अन्तःक्रिया-प्रतिक्रिया से सम्बन्धित प्रक्रियाऐं अभी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन्हें प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(i) स्वोपक्रम (Initiation)

(ii) अनुक्रिया (Response)

ये दोनों क्रियाऐं छात्र एवं शिक्षक के मध्य सम्पादित होती हैं जिसे शाब्दिक अन्तःक्रिया कहा जाता है। शिक्षक कुछ क्रियाऐं प्रारम्भ करता है उनके प्रति छात्र अनुक्रिया करता है या छात्र के प्रारम्भ करने पर शिक्षक अनुक्रिया करता है।

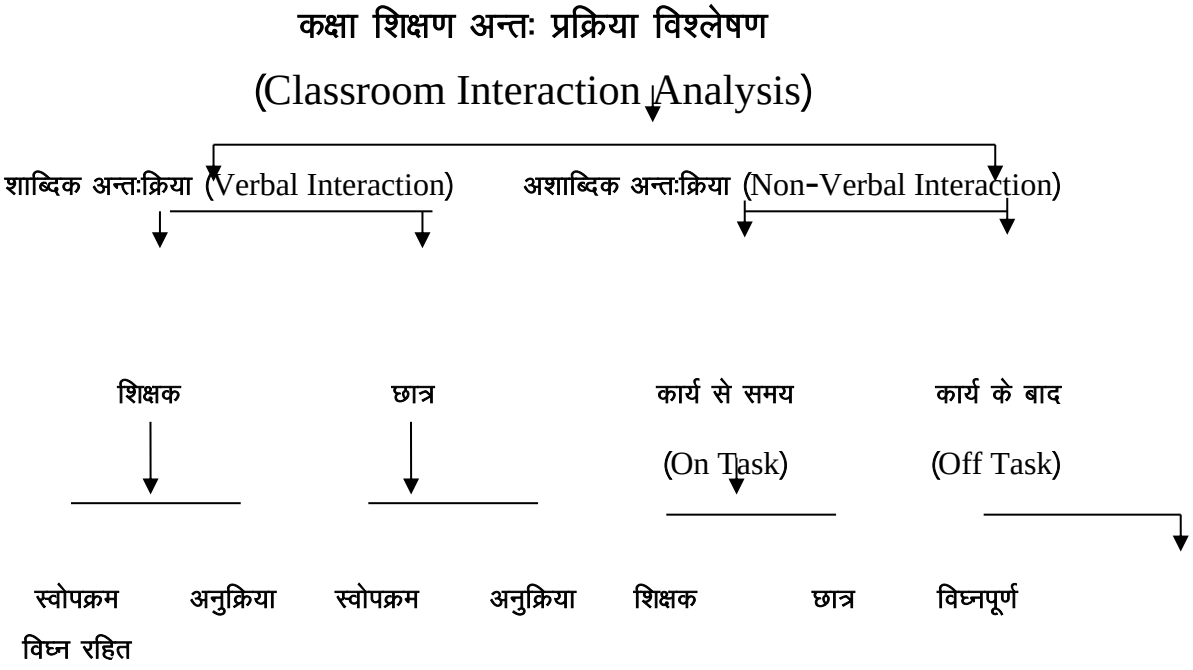

इसके लिये शिक्षक को निम्न क्रियाऐं करनी पड़ती हैं।

(अ) प्रेरकों का चयन - एक अच्छा शिक्षक जानता कि शिक्षण परिस्थितियों के लिये कौन सा प्रेरक अधिक प्रभावशाली कार्य कर सकता है।

(ब) प्रेरकों का प्रस्तुतिकरण - प्रेरकों के प्रस्तुतिकरण के समय तीन बातों का ध्यान रखना चाहिये।

(प) स्वरूप (पप) सन्दर्भ (पपप) क्रम

एक प्रेरक अनेक स्वरूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है। अतः प्रेरक के प्रस्तुतिकरण में उसके स्वरूप को ध्यान में रखना आवश्यक होता है।

(स) पृष्ठपोषण तथा पुनर्बलन - ये वे परिस्थितियाँ हैं जो विशेष अनुक्रिया की सम्भावना में वृद्धि करती है। ये साधारणतः दो प्रकार की होती है- प्रथम धनात्मक पुनबर्लन ((Positive Reinforcement)) की परिस्थिति। इसमें अपेक्षित अनुक्रिया के होने की सम्भावना में वृद्धि होती है। जैसे- प्रशंसा, पुरस्कार, नवीन ज्ञान की प्राप्ति आदि।

द्वितीय ऋणात्मक पुर्नबलन (Negative Reinforcement) की परिस्थिति - इसमें अवांछनीय अनुक्रिया के पुनः होने की सम्भावना कम होती है। जैसे- डाँटना, दण्ड आदि।

पुर्नबलन में तीन कार्य होते हैं-

(1) अनुक्रिया या व्यवहार को शक्ति प्रदान करना।

(2) अनुक्रिया या व्यवहार परिवर्तन में सहायक होना।

(3) अनुक्रिया या व्यवहार के सुधार में भी सहायक होना।

शिक्षण की क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन एवं सुधार लाना है। अतः पृष्ठपोषण को प्रभावशाली दंग से प्रस्तुत करने में सहायक होती हैं। शिक्षण की युक्तियों का विस्तार छात्र तथा शिक्षक की अन्तःक्रिया को प्रभावशाली बनाने में सहायक होता है। शिक्षण की युक्तियों में निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान रखा जाता है-

शिक्षण अन्तः क्रिया के तत्व

इस प्रकार युक्तियों के विस्तार में तीन तथ्यांे को ध्यान में रखा जाता है। पाठ्यवस्तु के प्रस्तुतिकरण, अधिगम के प्रकार तथा छात्रों का स्तर (पृष्ठभूमि, अभिप्रेरणा, अभिवृत्ति तथा अभिरूचियाँ) अन्तः प्रक्रिया की अवस्था कक्षा में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करती है जो

छात्रों की सीखने की क्रियाओं को प्रभावित करती है। शिक्षण की क्रियाओं का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप में सीखने की परिस्थितियों से होता है।

1.5.3उत्तर क्रियात्मक अवस्था (Post active stage) मूल्यांकन एवं प्रतिबिम्बन (Evaluation & Reflection)

शिक्षण का तृतीय सोपान मूल्यांकन एवं प्रतिबिम्बन से सम्बन्धित होता है। शिक्षण के अन्त में छात्रों के व्यवहार परिवर्तन कर मूल्यांकन किया जाता है। इस अवस्था की प्रमुख क्रियाऐं हैं-

1. शिक्षण द्वारा व्यवहार परिवर्तन की शुद्ध रूप की परिभाषा की जाती है जिसे मानदण्ड व्यवहार (ब्तपजमतपवद इमींअपवनत) कहते हैं। शिक्षक छात्रों के वास्तविक व्यवहार परिवर्तन की अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन का मूल्यांकन करता है।

2. समुचित मूल्याँकन प्रविधियों का चयन - शिक्षक का यह कार्य है कि वह अपेक्षित व्यवहार परिवर्तनों के मूल्यांकनों के लिये उपयुक्त परीक्षण प्रविधियों का चयन करें।

3. मूल्याँकन से छात्रों की निष्पत्तियों तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के सम्बन्ध में ही निर्णय नहीं लिया जाता अपितु परीक्षा के परिणामों से शिक्षक अपने अनुदेशन शिक्षण युक्तियों के सम्बन्ध में भी निर्णय लेता है। शिक्षक को अपने अनुदेशन तथा शिक्षण युक्तियों के सुधार एवं विकास के लिये आधार मिलता है। अतः मूल्याँकन के द्वारा शिक्षण की क्रियाऐं का निदान भी किया जाता है जिससे उनके सुधार उनमें सुधार करके उनको अधिक प्रभावशाली बनाया जाता है।

अतः शिक्षण की क्रियाओं के तीनों सोपानों का रूप इस प्रकार का होना चाहिये जो छात्रों की चिन्तन प्रणाली तथा कार्यशैली में महत्वपूर्ण विकास एवं परिवर्तन ला सके। इतना ही नहीं वरन् छात्र इसके द्वारा वास्तविकता को भी पहचान सके और उनके साथ अपना समायोजन कर सके। अपनी आन्तरिक व्यवस्था के साथ बाह्य अनुभवों का समन्वय स्थापित कर सके। छात्रों में सर्जनात्मक चिन्तन का विकास भी कर सके तभी छात्र शिक्षण क्रियाओं का प्रतिबिम्बन किया जा सकता है।

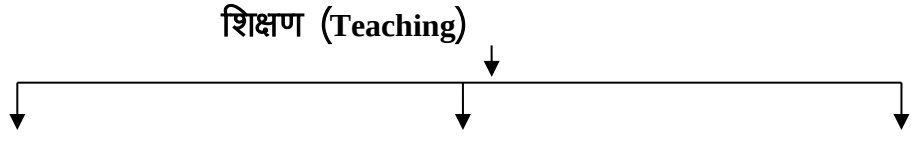

पूर्व क्रियात्मक चरण	अन्तःक्रियात्मकचरणउत्तर	क्रियात्मक चरण
नियोजन अवस्था (Preactive Stage Planning)	क्रियान्वयन अवस्था (Interactive Stage Implementation)	मूल्याँकन अवस्था (Post active stage evaluation & reflection)

अपनी प्रगति का मूल्याँकन करें - 2

1. शिक्षण की तीन अवस्थायें बताइये।

.....

.....

.....

2. उत्तर क्रियात्मक अवस्था में किस प्रक्रिया को महत्त्व दिया जाता है?

.....

.....

.....

9.6 सारांश

इस इकाई में आपने शिक्षण सूत्रों के बारे में पढ़ा। ये शिक्षण सूत्र शिक्षण कार्य में मदद करते हैं। इसके साथ ही शिक्षण की विभिन्न अवस्थाओं की जानकारी दी गयी है। जिनके द्वारा छात्रों के व्यवहार के अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाया जा सकता है।

9.7 अभ्यास

1. शिक्षण को परिभाषित कीजिये।

2. पाँच शिक्षण सूत्र बताइये।

9.8 सन्दर्भ अध्ययन

1. Branch, Robert, C., Instructional Design as a Responsde on the complexities of instruction in N. Venkataiah (ed.) Educational Technology. APH Publishing Corporation, New Delhi, 1996.
2. Davies, I. K. The Management of learning, New York : McGraw Hill 1971.
3. Hilgrad E. R. and Richey H. G. and (ed.) (1964) : Theories of Learning and Instruction, National Society for the study of Education, Chicago.
4. Mangal, S. K. Mangal Uma, Essentials of Educational Technology, PHI, Learning Private Limited, New Delhi – 110001, 2009.
5. Mohanty, J. (1992) : Educational Technology and Communication, Media, Nalanda, Cuttack.
6. Richmond W. R. (Ed.) (1970) : The concept of Educational Technology : A dialogue with yourself. Weidenfeld and Nicolson 5, Winsley Street London.

इकाई-10 अधिगम की अवस्थाएं

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 सीखने की प्रक्रिया

10.4 सीखने का अर्थ व परिभाषा

10.5 सीखने की विशेषताएँ

10.6 सीखने को प्रभावित करने वाले कारक या दशाएँ

10.7 सीखने की प्रभावशाली विधियाँ

10.8 अधिगम: प्रभावक कारक

10.9 सीखने के अन्य कारक

10.10 सारांश

10.11 अभ्यास

10.12 अभ्यास क्रियाएं

10.13 संदर्भ ग्रन्थ

10.1 प्रस्तावना

सीखो, सीखो, सीखो

घर से सीखो, समाज से सीखो, मित्र से सीखो, शत्रु से सीखो, सीखते रहो, सीखते रहो। वेदों में जीवन का शाश्वत् मंत्र है- चरै वेति चैर वेतिः चलते रहो।

चलते रहना गति है जीवन की, सीखते रहना भी गति है जीवन की। एक दूरी को कम करता है, दूसरा ऋद्धि तथा सिद्धि के भण्डार को भरता है, चलना तथा चलाना, सीखना तथा सिखना काल के अंश है। इन अंशों का भरपूर उपयोग ही शिक्षा है।

सीखते रहो, सीखने से अज्ञेय, श्रेय हो जाता है। ज्ञान के भण्डार में वृद्धि होती है, ज्ञान की वृद्धि, विकास के पथ को सरल करती है, शक्ति तथा समय की बचत करती है।

सीखना जीवन की सर्वोत्तम कला है। जो आप नहीं जानते, उसे जानना सीखना है, जो सीखते हैं उसे जीवन व्यवहार में लाना है। यह उपलब्धि है।

न जाने को जानना, न आने का सीखना, सीखकर अपनाना, अपनाकर दूसरों को अपनाने के लिये प्रेरित करना जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धि है। यही जीवन का अभिप्रेत है।

सुरेश भटनागर

1.2 उद्देश्य

इस ईकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

1. **अधिगम प्रक्रिया को जान सकेंगे ।**
2. **अधिगम की परिभाषा दे सकेंगे ।**
3. **सीखने की विशेषताएं बता सकेंगे।**
4. **सीखने को प्रभावित करने वाले कारकों को समझ कर शिक्षण में उसका उपयोग कर सकेंगे।**
5. **सीखने की विधियों का प्रयोग कक्षा शिक्षण में कर सकेंगे।**

10.3 सीखने की प्रक्रिया (Process of Learning)

प्रत्येक व्यक्ति नित्यप्रति अपने जीवन में अनुभव एकत्र करता रहता है। ये नवीन अनुभव, व्यक्ति के व्यवहार में वृद्धि तथा संशोधन करते हैं। इसीलिये ये अनुभव तथा इनका उपयोग ही सीखना या अधिगम करना कहलाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने सीखने की मानसिक प्रक्रिया माना है। यह क्रिया जीवनभर निरन्तर चलती रहती है।

सीखने की प्रक्रिया की दो मुख्य विशेषताएँ हैं- निरन्तरता और सार्वभौमिकता। यह प्रक्रिया सदैव और सर्वत्र चलती रहती है। इसलिए मानव अपने जन्म से मृत्यु तक कुछ-न-कुछ सीखता रहता है। उसकी सीखने की प्रक्रिया में विराम और अस्थिरता की अवस्था कभी नहीं आती है। हाँ, इतना अवश्य है कि उसकी गति कभी तीव्र और कभी मंद हो जाती है। इसके अतिरिक्त, मानव के सीखने का कोई निश्चित स्थान और समय नहीं होता है। वह हर घड़ी और हर जगह कुछ-न-कुछ सीख सकता है। वह न केवल शिक्षा-संस्था में, वरन् परिवार, समाज, संस्कृति, सिनेमा, सड़क, पड़ोसियों, संगी-साथियों, अपरिचित व्यक्तियों, स्थानों- सभी से थोड़ी या अधिक शिक्षा ग्रहण करता है। इस प्रकार वह आजीवन सीखता हुआ और इसके फलस्वरूप अपने व्यवहार में परिवर्तन करता हुआ, जीवन में आगे बढ़ता चला जाता है। इसलिए वुडवर्थ ने कहा है- "सीखना, विकास की प्रक्रिया है।"

"Learning is a process of development" – Woodworth

1.4 सीखने का अर्थ व परिभाषा (Meaning & Definition of Learning)

'सीखना' किसी स्थिति के प्रतिक्रिया है। हम अपने हाथ में आम लिए चले जा रहे हैं। कहीं से एक भूखे बन्दर की उस पर नजर पड़ती है। वह आम को हमारे हाथ से छीन कर ले जाता है। यह भूखे होने की स्थिति में आम के प्रति बन्दर की प्रतिक्रिया है। पर यह प्रतिक्रिया स्वाभाविक (Instinctive) है, सीखी हुई नहीं। इसके विपरीत, बालक हमारे हाथ में आम देखना है। वह उसे छीनता नहीं है, वरन् हाथ फैलाकर माँगता है। आम के प्रति बालक की यह प्रतिक्रिया स्वाभाविक नहीं, सीखी हुई है। जन्म के कुछ समय बाद से ही उसे अपने वातावरण में कुछ-न-कुछ उसे अपने वातावरण में कुछ-न-कुछ सीखने को मिल जाता है। पहली बार आग को देखकर वह उसे छू लेता है और जल जाता है। फलस्वरूप, उसे एक नया अनुभव होता है। अतः जब वह आग को फिर देखता है, तब उसके प्रति उसकी प्रतिक्रिया भिन्न होती है। अनुभव ने उसे आग को न छूना सिखा दिया है। अतः वह आग से दूर रहता है। इस प्रकार, "सीखना-अनुभव द्वारा व्यवहार में परिवर्तन है।"

हम 'सीखने' के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाएँ दे रहे हैं, यथा-

1. स्किनर - 'सीखना, व्यवहार में उत्तरोत्तर सामंजस्य की प्रक्रिया है।'

   "Learning is a process of progressive behaviour adaptation." - Skinner

2. क्रो व क्रो - 'सीखना-आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है।'

   "Learning is the acquisition of habits, knowledge and attitudes'. - Crow & Crow

3. गेट्स व अन्य - 'सीखना, अनुभव और प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में परिवर्तन है।'

"Learning is the modification of behaviour through experience and training." – Gates and others

4. उदयपरीक - 'अधिगम ज्ञानात्मक, गामक अथवा व्यवहारगत निवेशों की आवश्यकता पड़ने पर उनके प्रभावात्मक एवं विभिन्न प्रयोग हेतु अधिग्रहण, आत्मीकरण व आन्तरीकरण करने तथा आगामी स्वचालित अधिगम की बढ़ी हुई क्षमता की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया है।'

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सीखना, क्रिया द्वारा व्यवहार में परिवर्तन है, व्यवहार में हुआ यह परिवर्तन कुछ समय तक बना रहता है, यह परिवर्तन व्यक्ति के पूर्ण अनुभवों पर आधारित होता है।

10.5 सीखने की विशेषताएँ (Characteristics of Learning)

योकम एवं सिम्पसन (Yoakam & Simpson) के अनुसार- सीखने की सामान्य विशेषताएँ अग्रांकित प्रकार हैं-

1. **सीखना: सम्पूर्ण जीवन चलता है। (All living is learning)) - सीखने की प्रकिया आजीवन चलती है। व्यक्ति अपने जन्म के समय से मृत्युतक कुछ-न-कुछ सीखता रहता है।**
2. **सीखना: परिवर्तन है (Learning is change) - व्यक्ति अपने और दूसरों के अनुभवों से सीखकर अपने व्यवहार, विचारों, इच्छाओं, भावनाओं आदि में परिवर्तन करता है। गिलफोर्ड के अनुसार - 'सीखना, व्यवहार के परिणामस्वरूप व्यवहार में कोई परिवर्तन है।'**

3. **सीखना सार्वभौमिक है (Learning is universal) - सीखने को गुण केवल मनुष्य में ही नहीं पाया जाता है। वस्तुतः संसार के सभी जीवधारी पशु-पक्षी और कीड़े-मकोड़े भी सीखते हैं।**
4. **सीखना: विकास है (Learning is development) - व्यक्ति अपनी दैनिक क्रियाओं और अनुभवों के द्वारा कुछ-न-कुछ सीखता है। फलस्वरूप उसका शारीरिक और मानसिक विकास होता है। सीखने की इस विशेषता को पेस्टालॉजी ने वृक्ष और फ्रोबेल ने उपवन का उदाहरण देकर स्पष्ट किया है।**
5. **सीखना: अनुकूलन है (Learning is adaptation) - सीखना, वातावरण से अनुकलन करने के लिए आवश्यक है। सीखकर ही व्यक्ति, नई परिस्थितियों से अपना अनुकूलन कर सकता है। जब वह अपने व्यवहार को इनके अनुकूल बना लेता है, तभी वह कुछ सीख पता है। गेट्स एवं अन्य का मत है- "सीखने का सम्बन्ध स्थिति के क्रमिक परिचय से है।"**
6. **सीखना: नया कार्य करना है (Learning is Doing Something New) - वुडवर्थ के अनुसार - सीखना कोई नया कार्य करना है। पर उसने उसमें एक शर्त लगा दी है। उसका कहना है कि सीखना, नया कार्य करना तभी है, जबकि यह कार्य फिर किया जाय और दूसरे कार्यों में प्रकट हो।**
7. **सीखना: अनुभवों का संगठन है (Learning is Organization of Experiences) - सीखना न तो नये अनुभव की प्राप्ति है और न पुराने अनुभवों का योग, वरन् नये और पुराने अुनभवों का संगठन है। जैसे-जैसे व्यक्ति नये अनुभवों द्वारा नई बातें सीखता जाता है।, वैसे-वैसे वह अपनी आवश्यकतों के अनुसार अपने अनुभवों को संगठित करता चला जाता है।**

8. **सीखना: उद्देश्यपूर्ण है (Learning is Purposive) - सीखना, उद्देश्यपूर्ण होता है। उद्देश्य जितना ही अधिक प्रबल होता है।, सीखने की क्रिया उतनी ही अधिक तीव्र होती है। उद्देश्य के अभाव में सीखना असफल होता है। मर्सेल के अनुसार - "सीखने के लिए उत्तेजित और निर्देशित उद्देश्य की अति आवश्यकता है और ऐसे उद्देश्य के बिना सीखने में असफलता निश्चित है।"**
9. **सीखना: विवेकपूर्ण है Learning is intelligent) - मर्सेल का कथन है कि सीखना, यांत्रिक कार्य के बजाय विवेकपूर्ण कार्य है। उसी बात को शीघ्रता और सरलता से सीखा जा सकता है, जिसमें बुद्धि या विवेक का प्रयोग किया जाता है। बिना सोचे-समझे, किसी बात को सीखने में सफलता नहीं मिलती है। मर्सेल के शब्दों में- "सीखने की असफलताओं का कारण समझने की असफलताएँ हैं।"**
10. **सीखना: सक्रिय है (Learning is Active) - सक्रिय सीखना ही वास्तविक सीखना है। बालक तभी कुछ सीख सकता है, जब वह स्वयं सीखने की प्रक्रिया में भाग लेता है। यही कारण है कि डाल्टन प्लान, प्रोजेक्ट मेथड आदि शिक्षण की प्रगतिशील विधियाँ, बालक की क्रियाशीलता पर बल देती है।**
11. **सीखना: व्यक्तिगत व सामाजिक, दोनों हैं (Learning is both individual & social) - सीखना व्यक्तिगत कार्य तो है ही, पर इससे भी अधिक सामाजिक कार्य है। योकम एवं सिम्पसन के अनुसार - "सीखना सामाजिक है, क्योंकि किसी प्रकार के सामाजिक वातावरण के अभाव में व्यक्ति का सीखना असम्भव है।"**
12. **सीखना: वातावरण की उपज है (Learning is a Product of Environment) - सीखना रिक्तता में न होकर, सदैव उस वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया के रूप में होता है, जिसमें व्यक्ति रहता है। बालक का सम्बन्ध जैसे वातावरण से होता है, वैसी ही बातें वह सीखता है। यही कारण है कि आजकल इस बात पर बल दिया जाता है कि**

विद्यालय इतना उपयुक्त और प्रभावशाली वातावरण उपस्थित करे कि बालक अधिक-से-अधिक अच्छी बातों को सीख सके।

13. सीखना: खोज करना है (Learning is Discovery) - वास्तविक सीखना किसी बात की खोज करना है। इस प्रकार के सीखने में व्यक्ति विभिन्न प्रकार के प्रयास करके स्वयं एक परिणाम पर पहुँचता है। मर्सेल का कथन है- "सीखना उस बात को खोजने और जानने का कार्य है, जिसे एक व्यक्ति खोजता और जाना चाहता है।"
14. अधिगम की ये विशेषताएं , उनके प्रकार तथा उसकी परिभाषाओं की उपज हैं। अधिगम में व्यवहार परिवर्तन होता है, यह परिवर्तन स्थायित्व लिये होता है। अनुभव, इन परिवर्तनों में योग देते हैं। होने वाले परिवर्तन अनुभव किये जाते हैं तथा उन्हें देखा भी जाता है। अधिगम में सम्बन्ध मूलकता पाई जाती है। यह व्यवहारका परिमार्जन कर ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा मनोगत्यात्मक क्षेत्रों में वृद्धि करता है। यों व्यवहार विकास के महत्त्वपूर्ण सोपान के रूप में अधिगम महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. अधिगम की एक परिभाषा लिखिए।

.....

.....

2. अधिगम की दो विशेषतायें बताइये।

.....

.....

10.6 सीखने को प्रभावित करने वाले कारक या दशाएँ (Factors or Conditions influencing learning)

ऐसे अनेक कारक या दशायें हैं, जो सीखने की प्रक्रिया में सहायक या बाधक सिद्ध होते हैं। इनका उल्लेखन करते हुए सिम्पसन ने लिखा है- "अन्य दशाओं के साथ-साथ सीखने की कुछ दशाएँ- उत्तम स्वास्थ्य रहने की अच्छी आदतें, शारीरिक दोषों से मुक्ति, अध्ययन की अच्छी आदतें, संवेगात्मक सन्तुलन, मानसिक योग्यता, कार्य-सम्बन्धी परिपक्वता, वांछनीय दृष्टिकोण और रुचियाँ, उत्तम सामाजिक अनुकूलन, रूढ़िबद्धता और अन्धविश्वास से मुक्ति।" हम इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण कारकों पर प्रकाश डाल रहे हैं, यथा-

1. विषय-सामग्री का स्वरूप (Nature of Subject Matter) - सीखने की क्रिया पर सीखी जाने वाली विषय-सामग्री का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। कठिन और अर्थहीन सामग्री की अपेक्षा सरल और अर्थपूर्ण सामग्री अधिक शीघ्रता और सरलता से सीख ली जाती है। इसी प्रकार अनियोजित सामग्री की तुलना में 'सरल से कठिन की ओर' .
2. सिद्धान्त पर नियोजित सामग्री सीखने की क्रिया को सरलता प्रदान करती है।
3. बालकों का शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य (Physical & Mental Health of Children) - जो छात्र, शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होते हैं, वे सीखने में रूचि लेते हैं और शीघ्र सीखते हैं। इसके विपरीत, शारीरिक या मानसिक रोगों से

पीड़ित छात्र सीखने में किसी प्रकार की रूचि नहीं लेते हैं। फलतः वे किसी बात को बहुत देर में और कम सीख पाते हैं।

4. परिपक्वता (Maturation)- शारीरिक और मानसिक परिपक्वता वाले छात्र नये पाठ को सीखने के लिए सदैव तत्पर और उत्सुक रहते हैं। अतः वे सीखने में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं करते हैं। यदि छात्रों में शारीरिक और मानसिक परिपक्वता नहीं है तो सीखने में उनके समय और शक्ति का नाश होता है। कोलसनिक के अनुसार - "परिपक्वता और सीखना पृथक् प्रक्रियाएँ नहीं हैं, वरन् एक-दूसरे से अविचिछन्न रूप से सम्बद्ध और एक-दूसरे पर निर्भर हैं।"
5. सीखने का समय व थकान (Time of Learning & Fatigue) - सीखने का समय सीखने की क्रिया को प्रभावित करता है, उदाहरणार्थ जब छात्र विद्यालय आते हैं, तब उनमें स्फूर्ति होती है। अतः उनको सीखने में सुगमता होती है। जैसे-जैसे शिक्षण के घण्टे बीतते हैं, वैसे-वैसे उनकी स्फूर्ति में शिथिलता आती जाती है और वे थकान का अनुभव करने लगते हैं। परिणामतः उनकी सीखने की क्रिया मन्द हो जाती है।
6. सीखने की इच्छा (Will of Learn) - यदि छात्रों में किसी बात को सीखने की इच्छा होती है, तो वे प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसे सीख लेते हैं। अतः अध्यापक का यह प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह छात्रों की इच्छा-शक्ति को दृढ़ बनाये। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसे उनकी रूचि और जिज्ञासा को जाग्रत करना चाहिए।
7. प्रेरणा (Motivation) - सीखने की प्रक्रिया में प्रेरकों का स्थान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। प्रेरक, बालकों को नई बातें सीखने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। अतः यदि अध्यापक चाहता है कि उसके छात्र नये पाठ को सीखें, तो वह प्रशंसा, प्रोत्साहन, प्रतिद्वन्द्विता आदि विधियों का प्रयोग करके उनको प्रेरित करें।

स्टीफेन्स के विचारानुसार - "शिक्षक के पास जितने भी साधन उपलब्ध हैं, उनमें प्रेरणा सम्भवः सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।"

8. अध्यापक व सीखने की प्रक्रिया (Teacher & Learning Process) - सीखने की प्रक्रिया में पथ-प्रदर्शक के रूप में शिक्षक का स्थान अति महत्वपूर्ण है। उसके कार्यों और विचारों, व्यवहार और व्यक्तिव, ज्ञान और शिक्षण-विधि का छात्रों के सीखने पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। इन बातों में शिक्षक का स्तर जितना ऊँचा होता है, सीखने प्रक्रिया उतनी ही तीव्र और सरल होती है।
9. सीखने की उचित वातावरण (Favourable Learning Atmosphere) - सीखने की क्रिया पर न केवल कक्षा के अन्दर के वरन् बाहर के वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। कक्षा के बाहर का वातावरण शान्त होना चाहिए। निरन्तर शोरगुल से छात्रों का ध्यान सीखने की क्रिया से हट जाता है। यदि कक्षा के अन्दर छात्रों को बैठने के लिए पर्याप्त स्थान नहीं है और यदि उसमें वायु और प्रकाश की कमी है, तो छात्र थोड़ी ही देर में थकान का अनुभव करने लगते हैं। परिणामतः उनकी सीखने में रूचि समाप्त हो जाती है। कक्षा का 'मनोवैज्ञानिक वातावरण' भी सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। यदि छात्रों में एक-दूसरे के प्रति सहयोग और सहानुभूति की भावना है, तो सीखने की प्रक्रिया को आगे बढ़ने में सहयोग मिलता है।
10. सीखने की विधि (Learning Method) - सीखने की विधि का सम्बन्ध छात्र और विषय दोनों से है। यह विधि जितनी ही अधिक रूचिकर और उपयुक्त होती है, सीखना उतना ही अधिक सरल होता है। इसलिए प्रारम्भिक कक्षाओं में 'खेल' और 'करके सीखना' विधियों का और उच्च कक्षाओं में 'पूर्ण' , 'सामूहिक' और 'सहसम्बन्ध' विधियों का प्रयोग किया जाता है।

11. सम्पूर्ण परिस्थिति (Total Situation) - बालक के सीखने को प्रभावित करने वाले तत्व उस पर पृथक रूप के बजाय सामूहिक रूप से प्रभाव डालते हैं। अतः सीखने की सम्पूर्ण परिस्थिति का विद्यालय में होना आवश्यक है। विद्यालय की सम्पूर्ण परिस्थिति का बालक के बाह्य तथा समाज के सामान्य जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए। रायब्रन के अनुसार- "उस सम्पूर्ण परिस्थिति का, जिसमें बालक अपने को विद्यालय में पाता है, जीवन में जितना ही अधिक सम्बन्ध होता है, उतना ही अधिक सफल और स्थायी उसका सीखना होता है।

इन कारणों या दशाओं के वर्णन से यह स्पष्ट है कि सीखना तभी प्रभावशाली हो सकता है जब कि ये दशायें अनुकूल हों। अनुकूल होने की परिस्थितियों में सीखने की क्रिया सबल एवं प्रभावयुक्त हो जाती है।

10.7 सीखने की प्रभावशाली विधियाँ (Effective Methods of Learning)

किसी नई क्रिया या नये पाठ को सीखने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। हम इनमें से केवल उन विधियों का वर्णन कर रहे हैं, जिनको मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर अधिक उपयोगी और प्रभावशाली पाया गया है। ये विधियाँ इस प्रकार हैं-

1. करके सीखना (learning by doing) - डॉ. मेस का कथन है - "स्मृति का स्थान मस्तिष्क में नहीं, वरन् शरीर के अवयवों में है। यही कारण है कि हम करके सीखते हैं"।
2. बालक जिस कार्य को स्वयं करते हैं, उसे वे जल्दी सीखते हैं। कारण यह है कि उसे करने में उसके उद्देश्य का निर्माण करते हैं, उसको करने की योजना बनाते हैं और

योजना को पूर्ण करते हैं। फिर वे यह देखते हैं कि उनके प्रयास सफल हुए हैं या नहीं। यदि नहीं, तो वे अपनी गलतियों को मालूम करके, उनमें सुधार करने का प्रयत्न करते हैं।

3. निरीक्षण करके सीखना (Learning by Observation) - योकम एवं सिम्पसन ने लिखा है- "निरीक्षण सूचना प्राप्त करने, आधार सामग्री (कंजं) एकत्र करने और वस्तुओं तथा घटनाओं के बारे में सही विचार प्राप्त करने का साधन है।" बालक जिस वस्तु का निरीक्षण करते हैं, उसके बारे में वे जल्दी और स्थायी रूप से सीखते हैं। इसका कारण यह है कि निरीक्षण करते समय वे उस वस्तु को छूते हैं या प्रयोग करते हैं या उसके बारे में बातचीत करते हैं। इस प्रकार वे अपनी एक से अधिक इन्द्रियों का प्रयोग करते हैं। फलस्वरूप, उनके स्मृति-पटल पर उस वस्तु का स्पष्ट चित्र अंकित हो जाता है।
4. परीक्षण करके सीखना (Learning by experiment) - नई बातों की खोज करना, एक प्रकार का सीखना है। बालक इस खोज को परीक्षण द्वारा कर सकता है। परीक्षण के बाद वह किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है। इस प्रकार वह जिन बातों को सीखता है वे उसके ज्ञान का अभिन्न अंग हो जाती है, उदाहरणार्थ, वह इस बात का परीक्षण कर सकता है कि गर्मी का ठोस और तरल पदार्थों पर क्या प्रभाव पड़ता है। वह इस बात को पुस्तक में पढ़कर भी सीख सकता है। पर यह सीखना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं होता है, जितना कि स्वयं परीक्षण करके सीखना।
5. सामूहिक विधियों द्वारा सीखना (Learning by Group Methods) - सीखने का कार्य-व्यक्तिगत (प्दकपअपकनंस) और सामूहिक विधियों द्वारा होता है। इन दोनों में सामूहिक विधियों को अधिक उपयोगी और प्रभावशाली माना जाता है। इनके सम्बन्ध में में कोलसनिक की धारणा इस प्रकार है- "बालक को प्रेरणा प्रदान करने,

उसे शैक्षिक लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता देने, उसके मानसिक स्वास्थ्य को उत्तम बनाने, उसके सामाजिक समायोजन को अनुप्राणित करने, उसके व्यवहार में सुधार करने और उसमें आत्मनिर्भरता तथा सहयोग की भावनाओं का विकास करने के लिए व्यक्तिगत विधियों की तुलना में सामूहिक विधियाँ कहीं अधिक प्रभावशाली हैं।" मुख्य विधियाँ निम्नांकित हैं।

i. वाद-विवाद (Discussion Method) - इस विधि में प्रत्येक छात्र को अपने विचार व्यक्त करने और प्रश्न पूछने का अवसर दिया जाता है।

ii. वर्कशाप विधि (workshop method) - इस विधि में विभिन्न विषयों पर सभाओं का आयोजन किया जाता है और इन विषयों के हर पहलू का छात्रों द्वारा अध्ययन किया जाता है।

iii. सम्मेलन व विचार-गोष्ठी विधियाँ (Conference & Seminar Methods)) - इन विधियों में से किसी विशेष विषय पर छात्रों द्वारा विचार-विनिमय किया जाता है।

iv. प्रोजेक्ट, डाल्टन व बेसिक विधियाँ (Project, Dalton & Basic Methods) - इन आधुनिक विधियों में व्यक्तिगत और सामूहिक- दोनों प्रकार के प्रेरकों का स्थान होता है। प्रत्येक छात्र अपनी व्यक्तिगत रूचि, ज्ञान और क्षमता के अनुसार स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है, जिससे उसका सीखने का कार्य सरल हो जाता है। इसके अतिरिक्त, सामूहिक रूप से कार्य करने के कारण उसमें स्पर्द्धा, सहयोग और सहानुभूति का विकास होता है।

6. मिश्रित विधि द्वारा सीखना (Learning by Mixed Method) - सीखने की दो महत्वपूर्ण विधियाँ हैं- पूर्ण विधि (Whole Method) और आंशिक विधि (part Method)। पहली विधि में छात्रों को पहले पाठ्य-विषय का पूर्ण ज्ञान दिया जाता

है और फिर उसके विभिन्न अंगों में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। दूसरी विधि में पाठ्य-विषय को खण्डों में बाँट दिया जाता है। आधुनिक विचाराधारा के अनुसार इन दोनों विधियों को मिलाकर सीखने के लिए मिश्रित विधि का प्रयोग किया जाता है।

सीखने की स्थिति का संगठन (Organization of Learning Process) - सीखने के कार्य को सरल और सफल बनाने के लिए सबसे अधिक आवश्यकता है- सीखने की स्थिति का संगठन। यह तभी संभव हो सकता है जब विद्यालय का निर्माण इस प्रकार किया जाय कि उसमें सीखने की सभी क्रियायें उपलब्ध हों और सीखने की सभी विधियों का प्रयोग किय जाए।

सीखने की ये सभी विधियाँ व्यक्ति के मनोविज्ञान पर आधारित है। इन विधियों के प्रयोग से अधिगम तथा शिक्षण दोनों ही प्रभावशाली हो जाते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. आपके अनुसार सीखने को कौन से दो कारक प्रभावित करते हैं?

.....

.....

2. सीखने की दो प्रभावशाली विधियों के नाम बताइये।

.....

.....

10.8 अधिगम: प्रभावक कारक (Learning : Influencing Factors)

अधिगम या सीखना (स्मंतदपदह) शिक्षा की सार्वभौम प्रक्रिया है। जहाँ भी शिक्षा या एजूकेशन शब्द का प्रयोग किया जाता है, वहाँ उसका आशय बालक को इस योग्य बनाना है कि वह नवीन ज्ञान व कौशल को भली-भाँति सीख सके। विद्वानों ने अधिगम की परिभाषाओं को दो वर्गों में बाँटा है-

(1) पारिभाषिक वर्ग, (2) विशेषत वर्ग

पारिभाषिक वर्ग के अन्तर्गत रूसो, फ्रॉबेल आदि ने अधिगम की व्याख्या दार्शनिक आधार पर की है। ये विद्वान सीखने को स्व-घटित क्रिया मानते हैं। आत्मबोध वर्ग में हरबार्ट आत्मबोध विकसित करने पर बल देता है। व्यवहारवादि अधिगम को व्यवहार परिमार्जन के रूप में स्वीकार करते हैं। थार्नडाइक, गुथरी, पावलव, हल, स्किनर आदि ने व्यवहार के आधार पर अधिगम की परिभाषा ही है। गेस्टाल्टवादी सीखने में सूझ तथा विकास पर बल देते हैं। ज्ञानात्मक संरचनाओं के अधिग्रहण को लेविन, बार्मर, ब्रूमर आदि ने स्वीकार किया है। टॉलमैन ने उत्तेजना प्रतिक्रिया, मानवतावादियों ने स्व-प्रत्यय (self concept) पर बल दिया है और उदय पारीख ने सीखने को सूचना संसाधनों पर बल दिया है।

इसी प्रकार विशेषता वर्ग में बहुआयामी, स्व-अनुभव, प्रक्रिया आदि के रूप में अधिगम को प्रभावित किया है। इस वर्ग में विशेष योग्यता या कौशल को सीखने पर बल दिया गया है।

अधिगम की ये परिभाषायें सीखने के इन प्रकारों पर बल देती है।

संकेत (Singal) अधिगम - इसके अन्तर्गत पारम्परिक अनुकूलन की प्रक्रियाओं को सीखा जाता है।

उत्तेजना प्रतिक्रिया (S-R) अधिगम - इसके अन्तर्गत अनुकूलित अनुक्रिया, उत्तेजना अनुक्रिया आदि आते हैं जिनका प्रतिपादन थार्नडाइक, पावलव तथा स्किनर आदि ने किया है।

श्रंखला (Chain) अधिगम - दो या अधिक उत्तेजनाओं तथा उनकी प्रतिक्रियाओं में संबंध स्थापित किया जाता है।

शाब्दिक सम्बंध (Verbal Association) अधिगम - शब्दों की शृंखला का अधिगम इस प्रकार में किया जाता है।

बहुभिन्नीकरण (Multi-discrimination) - इनमें प्रतिक्रियाओं की पहचान की जाती है।

प्रत्यय (Concept) अधिगम - एक श्रेणी के उत्तेजक एक प्रतिक्रिया देते हैं तो यह प्रत्यय अधिगम कहलाता है।

नियम (Role) अधिगम - दो या अधिगम ¬प्रत्ययों को शृंखलाबद्ध किया जाता है तो यह नियम अधिगम कहलाता है।

समस्या समाधान (problem solving) अधिगम - इस अधिगम में समस्याओं को समाधान चिन्तन का विकास करके किया जाता है।

ये सभी प्रकार के अधिगम अनेक कारकों से प्रभावित होते हैं। ये कारक अधिगम की गति को, मात्रा को प्रभावित करते हैं।

अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक (Influencing Factors of Learning) अधिगम यद्यपि प्राणी की सहज क्रिया है। जन्म से ही वह कुछ न कुछ सीखता रहता है। उसके सीखने की मात्रा तथा कुशलता पर अनके कारकों का प्रभाव पड़ता है। सीखने को प्रभावित करने वाले कारक इस प्रकार हैं-

शारीरिक कारक (physical factor) - शारीरिक कारकों में ज्ञानेन्द्रियों- दृष्टि, श्रवण, स्वाद, सूँघना, तथा स्पर्श, सीखने के आधार प्रदान करते हैं, शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य तथा परिपक्वता सीखने की क्रिया को प्रभावित करते हैं। सिम्पसन के अनुसार - "अन्य दशाओं के साथ-साथ अधिगम की कुछ दशायें हैं- उत्तम स्वास्थ्य, रहने की अच्छी आदतें, शारीरिक दोषों से मुक्ति, अध्ययन की अच्छी आदतें, संवेगात्मक सन्तुलन, मानसिक योग्यता कार्य सम्बन्ध परिपक्वता, वांछनीय दृष्टिकोण और रूचियाँ, उत्तम सामाजिक अनुकूलन, रूढ़िवादिता और अन्धविश्वास से मुक्ति।"

मनोवैज्ञानिक कारक (pshycological factor) - मनोवैज्ञानिक कारकों में प्रेरणा, रूचि और समझकर सीखने की इच्छा तथा बुद्धि आदि सीखने के महत्त्वपूर्ण कारक हैं। ये कारक व्यक्ति को सीखने के लिये बाध्य करते हैं।

पर्यावरणीय कारक (environmental factor) - व्यक्ति, जिन क्षणों में सीखता है, वे क्षण उसके वातावरण का सृजन करते हैं, विषय सामग्री की प्रकृति, अधिगम विधियाँ, अभ्यास, शिक्षण अधिगम की ¬प्रक्रिया तथा परिणाम का ज्ञान भी सीखने के महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय कारक हैं।

10.9 सीखने के अन्य कारक (Other Factors of Learning)

ध्यान (Attention) - डम्विल के अनुसार - "किसी दूसरी वस्तु के बजाय एक ही वस्तु पर चेतना को केन्द्रित करना ही ध्यान है।" मॉर्गन एवं गिलिलैन्ड के शब्दों में - "अपने वातावरण के किसी विशिष्ट तत्त्व की ओर उत्साहपूर्वक जागरूक होना ध्यान कहलाता है। यह किसी अनुक्रिया के लिये पूर्व समायोजन है।" अवधान या ध्यान में जानना, अनुभव तथा इच्छा का विशेष महत्त्व है।

अधिगम की क्रिया को ध्यान प्रभावित करता है, कोई अध्यापक किस सीमा तक छात्रों का ध्यान आकर्षित करता है। इस पर अधिगम निर्भर करता है। ध्यान का विकास करने में शान्त वातावरण, पाठ की तैयारी, विषय में परिवर्तन, सहायक सामग्री का उपयोग, बालकों की रूचि का ध्यान, पूर्व ज्ञान का नवीन ज्ञानसे सम्बन्ध, बालकों की प्रवृत्ति का ज्ञान एवं प्रोत्साहन का विशेष योग होता है।

थकान (Fatigue) - ड्रेवर के शब्दों में - "थकान का अर्थ है, कार्य करने में शक्ति के पूर्ण व्यय के कारण कार्य करने की कम कुशलता या योग्यता" । बोरिंग, लैंगफील्ड एवं वील्ड के अनुसार- "थकान की सर्वोतम परिभाषा निरन्तर कार्य करने के परिणामस्वरूप कुशलता के रूप में की जाती है।" थकान शारीरिक तथा मानसिक दोनों होती है। शारीरिक थकान में, शरीर के कार्य करने की शक्ति कम हो जाती है और वह कार्य न करके विश्राम चाहता है। इसी प्रकार मानसिक थकान में मस्तिष्क की कार्य करने की शक्तियाँ मन्द पड़ जाती हैं।

शारीरिक थकान में शिथिलता, निस्तेजपन, जम्हाई, झपकी, कंधे झुकाकर बैठना, आसन बदलना, उदासीनता आदि आते हैं। मानसिक थकान में सिर में भारीपन, नींद, झपकी, जम्हाई, आपस मंे बातचीत, कार्य में गलतियाँ आदि होने लगती हैं।

ये सभी व्यवहार व्यक्ति की सीखने की क्रिया को प्रभावित करती है।

विद्यालय में दोषपूर्ण पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियाँ, वातावरण, वायु, प्रकाश, फर्नीचर, शारीरिक दोष आदि थकन उत्पन्न करते हैं, इन सभी कारणों को दूर करना आवश्यक है।

सिम्पसन ने थकान को दूर करने के लिये कहा है- "अनावश्यक थकान उत्पन्न होने देने के लिये शिक्षकों द्वारा सामंजस्य स्थापित किये जाने वाले अनेक कार्यों में सर्वश्रेष्ठ यह है कि वे बालकों में आत्मविश्वास तथा सुरक्षा की भावना का विकास करें।"

स्मरण (Memory) - अधिगम को प्रभावित करने में स्मरण का विशेष योग है। हम जिन तथ्यों को शीघ्रतापूर्वक याद कर लेते हैं। उन्हें जल्दी अधिगम करना चाहते हैं। पूर्व अनुभवों को अचेतन मन में संचित रखने की आवश्यकता पड़ने पर चेतन मन में लाने की शक्ति को स्मृति कहा जाता है।

स्मृति एक आदर्श पुनरावृत्ति है। यह सीखी हुई वस्तु का सीधा उपयोग है। इसमें अतीत के अनुभवों को चेतना में लाया जाता है। स्मृति का पहल अंग है सीखना, धारण, पनुःस्मरण तथा पहचान इसके अन्य अंग हैं।

अधिगम तथा स्मृति, दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। शीघ्र स्मरण, उत्तम धारण, शीघ्र पुनःस्मरण तथा शीघ्र पहचान की प्रक्रिया ही स्मृति के अधिगम पर प्रभाव को बताते हैं।

अधिगम को प्रभावशाली बनाने के लिये स्मृति का प्रशिक्षण आवश्यक है। अच्छी स्मृति तथा अच्छा प्रशिक्षण परस्पर सम्बन्धित है। उत्तम अधिगम के लिये स्मृति को विकसित करने के लिये दृढ़ निश्चय, स्पष्ट ज्ञान, प्रोत्साहन, पहले से समझना, रूचि उत्पन्न करना, पूर्वज्ञान, स्मरण के अधिक अवसर, दोहराना, संवेगात्मक स्थिरता, एकाग्रता तथा सरल विधियों को अपनाकर अधिगम को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

विस्मरण (Foregetting) - जब सीखी गई बात या क्रिया विस्मरण होने लगती है, तब अधिगम का ह्रास होने लगता है। विस्मृति एक मानसिक क्रिया है। विस्मृति के कारण व्यवहार में असामान्यता आने लगती है। मन (डनदद) के अनुसार- "सीखी हुई बात को स्मरण रखने या पुनःस्मरण करने की असफलता को विस्मृति कहते हैं।" ड्रेवर के शब्दों में - "विस्मृति का अर्थ है किसी समय प्रयास करने पर भी पूर्व अनुभव का स्मरण करने या पहले सीखे हुए किसी कार्य को करने में असफलता।"

बाधा, दमन, अनभ्यास, रूचि एवं इच्छा का अभाव, विषय का स्वरूप, विषय की मात्रा, सीखने की कमी, सीखने की दोषपूर्ण विधि, मानसिक आघात, मानसिक क्षेत्र, मादक वस्तुओं का प्रयोग, स्मरण न करने की इच्छा तथा संवेगात्मक असंतुलन विस्मृति के लिये उत्तरदायी हैं।

विस्मरण कम करने के लिये पाठ की विषय-वस्तु कम होनी चाहिये। पूरे पाठ का स्मरण कराना चाहिये। पाठ का स्मरण होने के बाद उसका धारण किया जाना आवश्यक है। स्मरण का ध्यान विकसित हो। विचार साहचर्य के नियमन का पालन, पूर्ण व आंशिक विधि का उपयोग, सस्वर, स्मरण के बाद विश्राम, पाठ की पुनरावृत्ति तथा स्मरण के नियमों का प्रयोग किया जाना आवश्यक है।

अभिप्रेरणा (Motivation) - अधिगम को गति प्रदान करने तथा उसे सफल बनाने में अभिप्रेरणा की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। मेहरान के. टॉमसन के शब्दों में- "छात्र की मानसिक क्रिया के बिना विद्यालय में अधिगम बहुत कम होता है। सबसे प्रभावशाली अधिगम उस समय होता है जब मानसिक क्रिया सर्वाधिक होती है। अधिकतम मानसिक क्रिया प्रबल अभिप्रेरणा के फलस्वरूप होती है।"

इसलिये प्रभावशाली अधिगम के लिये अभिप्रेरणा अत्यन्त आवश्यक है। हैरिस ने इसीलिये कहा है- "अभिप्रेरणा की समस्या शिक्षा मनोविज्ञान तथा कक्षा भवन की प्रक्रिया, दोनों के लिये केन्द्रीय महत्त्व की है।"

अधिगम के लिये अभिप्रेरणा एक अनिवार्य तत्व है। यह अधिगम को उसकी गुणवत्ता तथा मात्रा को प्रभावित करता है। प्रेरणा की परिभाषायें इस प्रकार हैं।

1. सी. वी. गुड - प्रेरणा, कार्य को आरम्भ करने, जारी रखने और नियमित करने की प्रक्रिया है या आवश्यकतायें, उसके वातावरण में विभिन्न लक्ष्यों की ओर निर्देशित होती है।
2. ब्लेयर, जोन्स एवं सिम्पसन - प्रेरणा एक प्रक्रिया है जिसमें सीखने वाले की आन्तरिक शक्तियाँ या आवश्यकतायें, उसके वातावरण में विभिन्न लक्ष्यों की ओर निर्देशित होती है।

कक्षा में दो प्रकार से प्रेरणा दी जाती है- सकारात्मक तथा नकारात्मक। सकारात्मक प्रेरणा से सुख एवं सन्तोष और नकारात्मक प्रेरणा से कष्ट होता है। कक्षा में सकारात्मक प्रेरणा का प्रयोग, मनोविज्ञान की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है। कक्षागत प्रेरणा का आधार आवश्यता, चालक, उद्दीपन तथा प्रेरक हैं।

प्रेरणा प्रदान करने में रूचि, सफलता का ध्यान, असफलता का भय, प्रतिद्वन्द्विता, सामूहिक कार्य, प्रशंसा, दण्ड, आवश्यकता का ज्ञान आदि का सहारा लिया जाता है।

प्रेरणा के द्वारा बालक की अधिगम प्रक्रिया में ये परिवर्तन किये जाते हैं-

1. बाल व्यवहार में परिवर्तन,
2. चरित्र निर्माण में सहायता,

3. ध्यान केन्द्रित करने में सहायता,
4. मानसिक विकास में योग,
5. रूचि का विकास,
6. अनुशासन की भावना का विकास,
7. सामाजिक गुणों का विकास,
8. अधिक ज्ञान का अर्जन,
9. अधिगम में तीव्रता,
10. व्यक्तिगत भिन्नता के अनुसार प्रगति

कैली के शब्दों में - "अभिप्रेरणा, अधिगम प्रक्रिया के उचित व्यवस्थापन में केन्द्रीय कारक होता है। किसी प्रकार की भी अभिप्रेरणा सभी प्रकार के अधिगम में अवश्यक उपस्थित रहनी चाहिये।"

10.10 सारांश

इस इकाई ने अधिगम के अर्थ एवं उसकी परिभाषाओं के बारे में बताया गया है। साथ ही यह व्याख्या की गयी है कि अधिगम की विशेषतायें कौन सी है। अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक, जिन्हें ध्यान में रखकर कक्षा में अधिगम क्रिया को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

10.11 अभ्यास

1. सीखने की सबसे प्रभावशाली विधियाँ कौन सी हैं? अपने उत्तर की पुष्टि कक्षा-कक्षा के उदाहरण देकर कीजिये।

.....

.....

2. सीखने का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसको प्रभावित करने वाले तथ्यों को बताएं।

.....

.....

3. अधिगम प्रक्रिया किस प्रकार में सीखने पर बल देती है?

.....

.....

10.12 अभ्यास क्रियाऐं

विशिष्ट छात्रों के लिये 'करो सीखना' विधि का प्रारूप बनाये।

10.13 संदर्भ ग्रन्थ

1. Bhatia, H.R., Elements of Educational Psychology
2. Bhatnagar, Suresh, (i) Educational Psychology (ii) Advanced Educational Psychology
3. Drever, James, An Introduction to Psychology of Education
4. Garrison Kingston & McDonald, Educationl Psychology
5. Ryburn, Hugh A., An Introduction to Psychology

इकाई-11 कक्षा, विद्यालय एवं समुदाय में अध्यापक की नेतृत्व भूमिका

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 अध्यापक नेतृत्व

11.4 अध्यापक में नेतृत्व गुण एवं कौशल

11.5 अध्यापक नेतृत्व की आवश्यकता

11.6 अध्यापक के नेतृत्व की भूमिकायें

11.7 नेतृत्व के लिये आवश्यक दशायें

11.8 सारांश

11.9 संदर्भ पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना

प्रत्येक अच्छे स्कूल में अध्यापक का दर्शन उसकी कक्षा तक की सीमित नहीं होता वरन् विद्यालय एवं समुदाय को भी प्रभावित करता है। ऐसे में जो अध्यापक जानता है कि छात्र का विकास केवल विद्यालय अनुभवों तक ही न होकर समाज तक फैला होता है। ऐसे अध्यापक सामाजिक परिवर्तनों को सकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। इसको ही अध्यापक का कुशल नेतृत्व गुण कहा जाता है। इस तरह अध्यापक समय-समय पर आगे आकर कक्षा में, विद्यालय में एवं समाज में नेतृत्व करते हैं।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

1. नेतृत्व के बारे में जान सकेंगे।
2. अध्यापक में नेतृत्व के गुण को भली-भाँति समझ सकेंगे।
3. अध्यापक में नेतृत्व की आवश्यकता को पहचान सकेंगे।
4. कक्षा, विद्यालय एवं समुदाय में अध्यापक के नेतृत्व के महत्त्व की व्याख्या कर सकेंगे।

11.3 अध्यापक नेतृत्व

अध्यापक नेतृत्व कोई नया प्रत्यय नहीं है। लेकिन वर्तमान में इसमें परिवर्तन आया है। प्राचीनकाल अध्यापक नेतृत्व सीमित था। उसमें लचीलापन नहीं था। केवल शिक्षण और

प्रशासन से बाहर कुछ अधिक की आवश्यकता महसूस होने लगी, अध्यापक के व्यवसायिक विकास के लिये नेतृत्वगुण का विकास कक्षा से बाहर निकल कर विद्यालय एवं समाज के लिये भी आवश्यक हो गया है। शिक्षण को एक महत्वपूर्ण व्यवसाय बनाने के लिए भी अध्यापक का क्षेत्र विस्तृत होता चला जा रहा है।

अध्यापक अपने छात्र के जीवन में परिवर्तन लाता है। साथ ही अपने नेतृत्व से सभी छात्रों के शिक्षण एवं अधिगम में गुणवत्ता लाना चाहता है। प्राचीन काल अध्यापक नेतृत्व का अर्थ शिक्षक को सर्वोच्च मानकर था लेकिन वर्तमान में यह शिक्षक एवं छात्र का समन्वित प्रयास है जिसके द्वारा शैक्षिक सेवाओं का विकास होता है।

वर्तमान अध्यापक में नेतृत्व गुणों का विकास कक्षा से ही आरम्भ हो जाता है। अध्यापक स्वयं के प्रयास के सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिये विभिन्न तरह से नेतृत्व गुणों का विकास करते हैं।

11.4 अध्यापक में नेतृत्व गुण एवं कौशल

अध्यापक दो तरह की भूमिका निभाता है- औपचारिक एवं अनौपचारिक

औपचारिक भूमिका में अध्यापक परम्परागत तरीके से कार्य करते हैं। ये सामान्य प्रक्रिया से चयनित होते हैं एवं नये उत्तरदायित्व के लिये प्रशिक्षण भी करते हैं।

इस भूमिका में अध्यापक विद्यालय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे पाठ्यक्रम को नये तरीके से व्यवस्थित करते हैं, अपने अध्ययन समूह बनाते हैं। वे अन्य अध्यापकों का मूल्यांकन भी करते हैं।

अनौपचारिक रूप में शिक्षक नेता उभर कर सामने आते हैं। वे स्वयं आगे बढ़कर समस्याओं का सामना करते हैं। वे चयनित नहीं होते लेकिन फिर भी उनके नेतृत्व को सभी स्वीकार करते हैं।

बहुत से मूल्य एवं गुण व्यक्ति को अध्यापक नेतृत्व के लिये तैयार करते हैं। प्रभावी अध्यापक नेता खुले विचारों वाले होते हैं और दूसरों के विचारों का आदर करते हैं। वे आशावादी एवं ऊर्जावान, आत्मविश्वासपूर्ण एवं निर्णायक भूमिका में होते हैं। वे मार्ग में आने वाली बाधाओं का सामना अलग तरीके से करते हैं।

11.5 अध्यापक नेतृत्व की आवश्यकता

अध्यापक नेतृत्व एक विचार है जिसकी आज के समय में महती आवश्यकता है। आज विद्यालय के हर स्तर पर कुशल नेतृत्व की आवश्यकता होती है। बहुत से विद्यालयों में आज भी सभी निर्णय प्रशासकों एवं अध्यापकों द्वारा लिये जाते हैं।

सफल विद्यालयों में विद्यालयों की नीतियों, कार्यक्रमों, शिक्षण अधिगम एवं सम्क्रमों, शिक्षण अधिगम एवं सम्प्रेषण के विकास के लिये किये गये प्रयासों में शिक्षकों का प्रशासन द्वारा आगे बढ़कर साथ दिया जाता है।

अध्यापक नेतृत्व के महत्त्व को समझते हुए यदि हम अध्यापकों में नेतृत्व के कौशल का विकास करेंगे तो हम विद्यालय एवं समाज का विकास तो कर ही सकते हैं साथ ही अध्यापक की पूर्ण क्षमता का भी विकास कर सकते हैं।

11.6 अध्यापक के नेतृत्व की भूमिकायें

कक्षा, विद्यालय एवं समाज के लिये अध्यापक को व्यापक स्तर पर भूमिकाओं का निर्वाह करना होता हैं ये भूमिकायें औपचारिक रूप से सौंपी जाती है या अनौपचारिक रूप से इसमें भागीदारी होती है। अध्यापक छात्रों का एवं समूह में विभिन्न तरीकों से नेतृत्व कर सकता है।

अध्यापक निम्न भूमिकाओं का निर्वहन करके कक्षा विद्यालय एवं समाज का कुशल नेतृत्व कर सकता है।

11.6.1 अवसर उपलब्ध कराना

अध्यापक अपने सहकर्मियों एवं छात्रों को अनुदेशन स्त्रोतों से सम्बन्धित अवसर प्रदान करता हैं वह वेबसाइट, अनुदेशन सामग्री एवं अन्य स्त्रोतों की साझेदारी सह-अध्यापकों एवं छात्रों के साथ करता है।

11.6.2 अनुदेशन विशेषज्ञ

अनुदेशन विशेषज्ञ के रूप में नेतृत्वकर्त्ता अपने अध्यापकों को प्रभावी शिक्षण व्यूह रचना में मदद करता है। इसके लिये वह अनुसंधान आधारित कक्षा व्यूह रचनाओं का अध्ययन करता है तथा यह निर्धारित करता है कि कौन सा तरीका विद्यालय के लिये अच्छा है।

11.6.3 पाठ्यक्रम विशेषज्ञ

पाठ्यवस्तु को समझना उसके विभिन्न अवयवों को एक दूसरे से सम्बन्धित करना, पाठ्यक्रम अन्तरण की योजना बनाना एवं उस पर सभी अध्यापकों की सहमति बनाना भी अध्याक नेतृत्व की विशेष भूमिका।

11.6.4 कक्षा सहायक

कक्षा में अध्यापक शिक्षण करने वाले अध्यापकों की मदद नये विचारों को लागू करने में करना। इससे अध्यापक की स्वयं की योग्यता की बढ़ती है एवं अन्य व्यक्तियों के साथ काम करने में सामंजस्य के साथ-साथ आगे बढ़ने का विकल्प भी खुल जाता है।

11.6.5 अधिगम की परिस्थिति उत्पन्न करना

विभाग के सदस्यों को व्यवासायिक अधिगम के अवसर प्रदान करना अध्यापक का विशिष्ट नेतृत्व गुण है। इसमें अध्यापक एक दूसरे से भी सीखते हैं। उनका व्यवसायिक अधिगम अधिक सापेक्षिक होता है। इस तरह अधिगम से विद्यालय एवं समाज में व्याप्त पृथककरण भी दूर होता है।

छात्रों की आवश्यकता के अनुसार, अध्यापकों के समसामयिक ज्ञान से सम्पूर्ण वर्ष की अधिगम एवं व्यवसायिक विकास की योजना बनायी जा सकती है।

11.6.6 निर्देशक

नेतृत्व गुण वाले अध्यापक नये अध्यापकों के लिये दिशा निर्देशक का कार्य करते हैं। उनका व्यवहार आदर्श व्यवहार होता है। नवान्गतुक अध्यापकों को विद्यालय के वातावरण में स्थापित करना उन्हें अनुदेशन, पाठ्यक्रम, अधिगम अन्तरण के बारे में राय देना अध्यापक नेतृत्व का कार्य है।

इस तरह वे नये अध्यापकों के विकास में योगदान देते हैं।

11.6.7 विद्यालय नेता

विद्यालय के नेता के रूप में विद्यालय को समाज में प्रतिबिम्बित करते हैं।

11.6.8 परिवर्तन के प्रेरक

अध्यापक नेता के रूप में समाज में परिवर्तन का प्रेरक होता है। हमेशा अच्छे रास्तों की ओर अग्रसर करता है एवं प्रगति के लिये सतत् प्रयास करता है।

2.6.9 अधिगमकर्त्ता

जिस दिन अध्यापक सीखना बंद कर देगा उस दिन वह अपने विकास को रोक देगा। जीवन पर्यन्त सीखना अध्यापक नेतृत्व को नयी ऊर्जा प्रदान करता है एवं समाज के लिये उदाहरण ¬प्रस्तुत करता है।

11.7 नेतृत्व के लिये आवश्यक दशायें

अध्यापक में नेतृत्व के लिये कई परिस्थितियाँ आवश्यक हैं-

1. **दूरदर्शिता**
2. **कार्य करने का तरीका**
3. **कार्य का समय**
4. **कार्य कौशल**

अध्यापक का कौशल कक्षा में बाहर तक सीमित नहीं रहता है। वरन् समुदाय एवं समाज में फैलता है। अध्यापक जानता है कि उसका नेतृत्व केवल अध्यापक व छात्रों से अन्तःक्रिया करने में ही नहीं रहता है। वरन् सम्पूर्ण समाज में बदलाव लाता है।

अपनी प्रगति जानें-

1. अध्यापक नेतृत्व के दो गुण बतायें

.....

.....

11.8 सारांश

इस इकाई में अध्यापक नेतृत्व के गुणों, उसके लिये आवश्यक दशायें एवं समाज एवं समुदाय पर उसके प्रभाव के बारे में अध्ययन किया है।

11.9 सन्दर्भ पुस्तकें

- Blasé, J. & Blasé, J. (2006). Teachers bringing out the best in teachers: A guide to peer consultation for administrators and teachers. Thousand Oaks, CA : Crowin Press.
- Killion, J. (2001). What works in elementary schools : Results – based staff development. Oxford, OH : National Staff Development Council.
- Larner, M. (2004). Pathways: Charting a course for professional learning. Portsmouth, NH: Heinemann.
- Marzano. R. Pickering, D. & Polloc, J. (2001). Classroom instruction that works. Alexandira, VA : ASCD.

इकाई- 12 अधिगम के लिए आकलन

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 आकलन: परिभाषा, उद्देश्य एवं प्रकृति

1.3.1 आकलन की परिभाषा

1.3.2 आकलन के उद्देश्य

1.4 अधिगम का आकलन: आकलन का व्यवहारवादी परिप्रेक्ष्य

1.5 रचनावाद का संक्षिप्त परिचय

1.6 अधिगम के लिए आकलन: आकलन का रचनावादी दृष्टिकोण

1.7 अधिगम का आकलन एवं अधिगम के लिए आकलन में अंतर

1.8 इकाई सारांश

1.9 अभ्यास प्रश्न

1.10 अन्य अध्ययन एवं सन्दर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था व्यापक परिवर्तनों के दौर से गुजर रही है शिक्षण एवम अधिगम के प्रत्येक स्तर पर परिवर्तन जारी है। चाहे वह शिक्षण विधियों की बात हो या कक्षा अनुशासन की बात हो, शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के वृहद प्रयोग की बात हो या विद्यार्थियों के शैक्षिक संप्राप्ति और उसके आकलन की बात हो, नित नए नए अनुसंधानों के कारण सम्पूर्ण शिक्षण व्यवस्था में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की जा रही है। सूचना विस्फोट के वर्तमान समय में विद्यार्थी न तो ज्ञान का एक निष्क्रिय ग्रहण कर्ता रह गया है और न ही शिक्षक ज्ञान प्राप्ति एक मात्र साधन। वर्तमान समय में शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में दोनों की वर्षों से चली आ रही भूमिका समयानुकूल परिवर्तन चाह रही है। शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में आ रहे परिवर्तनों से विद्यार्थियों के शैक्षिक संप्राप्ति के आकलन की प्रक्रिया भी अछूती नहीं है। भारत में राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा (N.C.F.) 2005 ने विद्यार्थी के आकलन एवं वर्तमान परीक्षा व्यवस्था में व्यापक बदलाव की आवश्यकता पर बल दिया है। शिक्षण- अधिगम एवं तदनुसार आकलन का उदेश्य भी

एक सृजनात्मक विद्यार्थी जो अपने समाज एवं सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति संवेदनशील हो, तैयार करना हो गया है राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा 2005 ने जो अपेक्षित परिवर्तन सुझाये हैं: उनमे ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन, विद्यार्थी के समाज एवं संस्कृति से जोड़ना, तोतारटंत ज्ञान प्रदान करने एवं पाठ्यचर्चा के पाठ्यपुस्तक पर केन्द्रित रहने के की बजाए विद्यार्थियों के समग्र विकास की ओर उन्मुख बनाना, परीक्षाओं को व्यापक एवं अधिक लचीला बनाना आदि प्रमुख हैं। इस इकाई में शैक्षिक परिवर्तनों के इस दौर में आकलन एवं उसकी प्रक्रिया में हो रहे बदलावों की विस्तृत चर्चा की जाएगी।

1.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

- आकलन की परिभाषा, उद्देश्य एवं प्रकृति की व्याख्या कर सकेंगे,
- आकलन का व्यवहारवादी परिप्रेक्ष्य पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- अधिगम से सम्बंधित रचनावादी दृष्टिकोण की विवेचना कर सकेंगे,
- आकलन के रचनावादी दृष्टिकोण एवं उसके महत्व पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- अधिगम के लिए आकलन की संकल्पना समझ सकेंगे एवं
- अधिगम का आकलन एवं अधिगम के लिए आकलन में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।

1.3 आकलन: परिभाषा, उद्देश्य एवं प्रकृति

If we wish to discover the truth about an educational system, we must look into its assessment procedures."

यदि हम अपने शिक्षा तंत्र का सच जानना चाहते हैं तो हमें इसके आकलन प्रक्रियाओं में झांकना होगा।

Rowntree (1987)

1.3.1. आकलन की परिभाषा एवं प्रकृति

आकलन हमारे जीवन का अभिन्न अंग है उदहारण के लिए जबभी हम डॉक्टर के पास जाते हैं डॉक्टर थर्मा मीटर, स्टेथस्कोप अथवा अन्य उपकरणों का प्रयोग करके हमारे बारे में सूचनाएं एकत्र करता है और पर्याप्त सूचनाएँ एकत्र हो जाती हैं तब उनके आधार पर दवाइयां

लिखता है। मूलतः शब्द Assessment की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'ad sedere' (to sit beside) से मानी जाती है जिसका अर्थ है ' पास में बैठना'। वस्तुतः मध्यकालीन लैटिन समुदाय में जज के सहायक का कार्य टैक्स निर्धारित करने के उद्देश्य से किसी की संपत्ति का अनुमान लगाना होता था। बाद में इस शब्द का अर्थ परिवर्तित होकर 'किसी व्यक्ति विचार आदि के बारे में निर्णय लेना' हो गया। सामान्य अर्थों में आकलन का अर्थ है किसी व्यक्ति या समूह से सबंधित सूचना संग्रहण की प्रक्रिया से है ताकि व्यक्ति या समूह विशेष के सन्दर्भ में कोई निर्णय लिया जा सके।

कैम्ब्रिज शब्दकोष के अनुसार आकलन का तात्पर्य किसी चीज की कीमत, वैल्यू, गुणवत्ता या महत्व का निर्णय अथवा निर्धारण करना है (the act of judging or deciding the amount, value, quality, or importance of something)

वालेस, लार्सन एवं एल्क्सनीन, 1992, के अनुसार "आकलन का तात्पर्य किसी व्यक्ति या समूह के बारे में सूचना संग्रहण, विश्लेषण एवं उनका अर्थ निकालने की प्रक्रिया से है जिस से किसी व्यक्ति के बारे में अनुदेशनात्मक, निर्देशनात्मक अथवा प्रशासनिक निर्णय लिये जा सकें।"

(Assessment refers to the process of gathering, analyzing and interpreting information in order to make instructional, administrative and / or guidance decisions about or for an individual (Wallace, Larsen and Elksnin, 1992))

आकलन का अर्थ उदेश्यपूर्ण क्रियाओं द्वारा सूचना संग्रहण एवं व्यवस्थापन की प्रक्रिया से है ताकि शिक्षण, अधिगम एवं विभिन्न व्यक्तियों के सन्दर्भ में उनका अर्थ निकला जा सके और प्रायः पूर्व निर्धारित मानदंडों से उसकी तुलना की जा सके ।

Assessment is the process of collecting and organising information from purposeful activities (e.g., tests on performance or learning) with a view to drawing inferences about teaching and learning, as well as about persons, often making comparisons against established criteria. (Lampriyanou & Athanasou, 2009)

यदि हम आकलन की उपरोक्त परिभाषा का विश्लेषण करें तो यह पाते हैं कि आकलन के मुख्यतः पांच पहलू हैं:

- **उद्देश्य पूर्ण कार्य (Purposeful Activity)**
- **सूचना संग्रहण (Collection of Information)**

- सूचनाओं का विश्लेषण (Analysis of Information)
- सूचना का अर्थ निकलना (Interpretation of Information)
- अनुदेशनात्मक, प्रशासनिक अथवा निर्देशनात्मक निर्णय (Instructional, Administrative or Guidance related decision making)

1.3.2. आकलन के उद्देश्य (Purpose of Assessment):

a. शिक्षण पूर्व उद्देश्य:
   - अनुदेशन से पूर्व विद्यार्थी के पूर्व ज्ञान को जानने के लिए
   - अधिगम की कठिनाई अथवा अग्रिम ज्ञान को जानने के लिए
   - अनुदेशन की योजना बनाने के लिए
b. शिक्षण के दौरान के उद्देश्य
   - अनुदेशन की प्रभाविता को जानने के लिए
   - अधिगम के दौरान विद्यार्थी की समस्याओं को जानने के लिए
   - अनुदेशन के बारे मे प्रतिपुष्टि के लिए
   - नैदनिक अनुदेशन के लिए
c. शिक्षण के उपरांत के उद्देश्य
   - शैक्षिक संप्राप्ति के प्रमाणन के लिए
   - विद्यार्थियों के शैक्षिक संप्राप्ति के आधार प्र ग्रेड प्रदान करने के लिए
   - सम्पूर्ण शिक्षण की प्रभाविता जानने के लिए
   - शिक्षक के स्वमूल्यांकन के लिए

1.4 आकलन का पारंपरिक व्यवहारवादी दृष्टिकोण: अधिगम का आकलन (Assessment of Learning)

आकलन के पारंपरिक व्यवहारवादी दृष्टिकोण जिसे अधिगम का आकलन की संज्ञा भी दी जाती है का मुख्य उद्देश्य 'योगात्मक' है जो सामान्यत: किसी कार्य या कार्य की, इकाई की समाप्ति पर किया जाता है। वस्तुत: 'अधिगम का आकलन' विद्यार्थी की संप्राप्ति के प्रमाण उसके माता पिता, शिक्षक, विद्यार्थी स्वयं अथवा अन्य व्यक्तियों के लिए प्रस्तुत करता है। अधिगम

का आकलन वस्तुत: व्यवहारवाद की देन है। व्यवहारवाद मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है जो मानव के सभी प्रत्यक्ष व्यवहारों का अध्ययन करता है। व्यवहारवाद का जनक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जे.बी. वाटसन को माना जाता है। व्यवहारवाद पर आधारित अधिगम सिद्धान्तों में सबसे प्रमुख योगदान बी.एफ. स्किनर का है। व्यवहारवाद, अधिगम को अधिगम को, अधिगम हेतु प्रेरित उद्दीपक एवं अनुक्रिया के मध्य एक संबंधन के रूप में देखता है जो पुरस्कार एवं दण्ड के द्वारा संचालित होता है। मनोविज्ञान पर व्यवहारवादी दृष्टिकोण ने गहरा प्रभाव डाला है। शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया पर भी अधिकांश अनुसन्धान एवं सिद्धांतों का विकास व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए। शिक्षण एवं अधिगम की सम्पूर्ण प्रक्रिया पर 1990 के दशक तक सर्वाधिक प्रभाव व्यवहारवाद का रहा और तदनुसार शैक्षिक आकलन एवं मूल्याङ्कन की रूप रेखा पर भी इनका गहन प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। व्यवहार वादी मनोवैज्ञानिक अतिवातावरण वादी (Extreme Environmentalist) थे। व्यवहार वादियों की मान्यता थी कि

- मानव का सम्पूर्ण अधिगम मानव एवं वातावरण के पारस्परिक अनुक्रिया के कारण विभिन्न उद्दीपक एवं उनके प्रति अनुक्रिया के संबंधन का परिणाम है
- बालक जब पैदा होता है तब टेबुला रसा(tabula rusa) अर्थात एक खाली स्लेट के समान होता है व्यव्हारवादियों ने चिंतन, समस्या समाधान, स्मृति जैसी मानसिक प्रक्रियाओं की जन्मजात उपस्थिति की उपेक्षा की
- मानव व्यवहार मापनीय एवं निरिक्षणीय होते हैं
- व्यवहार वाद के अनुसार अधिगम उद्दीपक एवं अनुक्रिया के बीच विभिन्न पुनर्बलनों की सहायता से किये गए अनुबंधन का परिणाम है
- दिए गए उद्दीपक पर सीखी गयी अनुक्रिया बार बार प्रदान करना अधिगम का सूचक है
- शिक्षक का प्रयास शिक्षण के दौरान उद्दीपक एवं अनुक्रिया के मध्य के संबंधन जिसे शिक्षक उपयुक्त समझता है, पुनर्बलन के द्वारा मजबूत करना है

इस प्रकार व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने शिक्षण अधिगम की सम्पूर्ण प्रक्रिया में मानव संज्ञान यथा सोचने की क्षमता, तर्क करने की क्षमता, समस्या समाधान की क्षमता, व्यक्ति का सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य आदि सभी की उपेक्षा करते हुए विद्यार्थी को एक निष्क्रिय ग्रहण कर्ता के रूप में देखते हुए शिक्षण अधिगम हेतु विभिन्न विधियों एवं तदनुसार आकलन के मानक तय कर दिए। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने अपनी विभिन्न मान्यताओं के आधार पर आकलन के जो मानक तय किये उनके अनुसार आकलन का उद्देश्य दिए गए

उद्दीपक पर विद्यार्थी से अपेक्षित अनुक्रिया प्राप्त करना है (जो उसे अनुबंधन के दौरान सिखाई गयी है) एवं आकलन मुख्यत: सीखी गयी अनुक्रिया के प्रत्यास्मरण पर आधारित होना चाहिए।

अपनी विभिन्न मान्यताओं के आधार पर व्यवहारवादियों ने जो आकलन के उपकरण सुझाये वे प्रत्यास्मरण पर आधारित थे जिनमे लिखित परीक्षा अथवा पेपर पेंसिल टेस्ट प्रमुख थे। साथ ही व्यवहारवादियों ने आकलन के आधार पर विद्यार्थियों की रैंकिंग एवं उनके संप्राप्ति के मात्रात्मक आकलन को बढ़ावा दिया। परिणामत: धीरे धीरे योगात्मक आकलन की महत्ता बढती चली गयी। आकलन का उद्देश्य विद्यार्थियों के कथित अधिगम स्तर में विभेद करना एवं तदनुसार उन्हें विभीन्न श्रेणियों में रखना मात्र हो गया। इस कारण विद्यार्थियों पर विभिन्न प्रकार के प्रत्यास्मरण पर आधारित परीक्षणों का बोझ बढ़ता चला गया और उनकी रचनात्मकता की उपेक्षा होती गयी। वयवहार वादियों द्वारा सुझाये गए आकलन एवं आकलन के उपकरण मुख्यत: विद्यार्थी केन्द्रित न होकर पाठ्यवस्तु केन्द्रित थे। साथ ही व्यवहार वादियों ने अधिगम के संज्ञानात्मक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षों की भी उपेक्षा की और संस्कृति मुक्त (Culture Free or Culture Fair) परीक्षणों के विकास पर ध्यान केंद्रित रखा फलत: अधिगम का उद्देश्य पाठ्यक्रम की समाप्ति पर ' लिखित परीक्षाओं' में उच्च अंक प्राप्त करना मात्र रह गया।

1.5 रचनावाद / संरचनावाद (Constructivism) का संक्षिप्त परिचय

रचनावाद के अनुसार अधिगम एक सक्रिय प्रक्रिया है जो प्रत्येक अधिगमकर्ता के लिए विशिष्ट होती है जिसमें अधिगमकर्ता अपने पूर्व अनुभवों व ज्ञान के आधार पर प्रत्ययों में संबंध स्थापित करे उनके अर्थों की रचना करता है। रचनावादियों का मत है कि प्रत्येक अधिगमकर्ता ज्ञान की रचना वैयक्तिक और सामाजिक सन्दर्भ में करता है। रचनावाद इस मान्यता पर आधारित है कि मानव, ज्ञान एवं उसके अर्थ की रचना अनुभवों के आधार पर करता है। रचनावाद के क्षेत्र में पियाजे व वाइगोत्सकी का नाम उल्लेखनीय है। रचनावाद का मूल जीन प्याजे द्वारा किये गये अध्ययन हैं। पियाजे ने रचनावाद के संज्ञानात्मक रचनावाद का विचार रखा जिसके अनुसार ज्ञान की रचना सक्रिय रूप से अधिगमकर्ता द्वारा की जाती है। ज्ञान को निष्क्रिय रूप में बाह्य वातावरण से ग्रहण नहीं किया जाता। पियाजे के अनुसार प्रत्येक अधिगम के फलस्वरूप अधिगमकर्ता की मानसिक संरचनाओं (*स्कीमा*) का निर्माण होता है व जब नई परिस्थिति में अधिगमकर्ता पहुंचता है तो उसके अनुसार व अपनी इन

संरचनाओं में संशोधन कर परिस्थिति के साथ समायोजन स्थापित करता है। वाइगोत्सकी ने सामाजिक रचनावाद का विचार दिया जिसके अनुसार अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्ता द्वारा अन्य सहपाठियों, शिक्षकों तथा वातावरण के साथ अंत:क्रिया प्रमुख होती है। अधिगम अत:क्रियाओं पर आधारित होता है। रचनावाद परिप्रेक्ष्य भी अधिगम की प्रक्रिया के केन्द्र में बालक को रखता है व शिक्षक की भूमिका अधिगम के सुगमकर्ता के रूप में होती है।

पियाजे ने अपने संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को बताया कि व्यक्ति का अधिगम सम्मिलन (Assimilation)और आत्मसातीकरण (Accomodation) की प्रक्रिया द्वारा होता है। व्यक्ति नये अनुभव को मस्तिष्क में उपस्थित पुरानी रचनाओं (Scheme)से मिलान करता है। (Assimilation और यदि यह पुरानी रचनाओं से मिलता नहीं है तब व्यक्ति एक नयी संरचना विकसित करता है और इस प्रकार विभिन्न रचनाओं का मिलान एवं निर्माण करते हुए व्यक्ति का वातावरण से मानकि अनुकूलन (Adaptation) होता है जो उसे साम्यावस्था में बनाये रखने में मदद करता है। शैक्षिक आंदोलन यथा: पूछताछ आधारित अधिगम (Inquiry-based learning), सक्रिय अधिगम (Active learning), अनुभव आधारित (Eexperiential learning, अधिगम ज्ञान रचना (Knowledge Building) आदि सभी वस्तुत: रचनावाद से व्यत्पन्न है। रचनावाद के अनुसार शिक्षक ज्ञान के स्रोत के रूप में नहीं बल्कि ज्ञान प्राप्ति के सहयोगी की भूमिका अदा करता है। इस संदर्भ में रूसी मनोवैज्ञानिक व्योगस्की का योगदान भी प्रमुख है। उनके समाज सांस्कृतिक अधिगम सिद्धान्त के अनुसार बालक जो भी सीखता है उसे उसके समाज एवं संस्कृति के वृहत सन्दर्भों में देखा जाना चाहिए वाईगोत्सकी के अनुसार बच्चे के पास अन्य जीवों के सामान ही मौलिक ध्यान, प्रत्यक्षण एवं स्मरण क्षमता होती है जिसका विकास प्रारंभिक दो वर्षों में वातावरण के साथ उनके सीधे संपर्क के कारण होता है। इसके बाद भाषा का तीव्र गति से विकास उनकी चिंतन प्रक्रिया पर गहरा प्रभाव डालता है। वाईगोत्सकी ने संज्ञानात्मक विकास में बच्चों की भाषा एवं चिन्तन को भी महत्वपूर्ण साधन बतलाया है। इनका मत है कि छोटे बच्चों द्वारा भाषा का उपयोग सिर्फ सामाजिक संचार के लिये ही नहीं किया जाता है बल्कि इसका उपयोग वे अपने व्यवहार को नियोजित एवं निर्देशित करने के लिए भी करते हैं। बच्चे प्राय: आत्म नियमन के लिये भी भाषा का उपयोग करते हैं जिसे तो इसे आंतरिक सम्भाषण या निजी सम्भाषण का नाम दिया जा सकता है। लेव वाईगोत्सकी के सिद्धांत का केंद्र है:संस्कृति: मूल्य,विश्वास, रीतिरिवाज एवं किसी सामाजिक समूह के कौशल कैसे उसकी अगली पीढ़ियों में स्थानांतरित होते हैं। लेव वाईगोत्सकी के अनुसार सामजिक अंत:क्रिया विशेषकर बच्चों एवं उनसे अपेक्षाकृत ज्यादा ज्ञान रखनेवाले समाज के सदस्यों के मध्य का सहयोगात्मक संवाद बच्चों के चिंतन एवं उनके संस्कृति विशेष में व्यवहार के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। वाईगोत्सकी का मानना था कि चूँकि वयस्क एवं

अपेक्षाकृत अधिक ज्ञान रखनेवाले सहपाठी बच्चों को सांस्कृतिक रूप से सार्थक क्रियाकलापों पर दक्षता हासिल करने में मदद करते हैं, अत: उनका आपसी संवाद बच्चों के चिंतन का एक भाग बन जाता है। वाईगोत्सकी के अनुसार बच्चों का अधिगम उनके समीपस्थ विकास के क्षेत्र में होता है। समीपस्थ विकास का क्षेत्र वह क्षेत्र है जिसमे कोई बच्चा विभिन्न कार्यों को स्वतंत्र रूप से नहीं कर पाता परन्तु वयस्कों एवं अपेक्षाकृत अधिक कुशल सहपाठियों के सहयोग से कर सकता है। वाईगोत्सकी अनुसार संज्ञानात्मक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए सामाजिक अंत:क्रिया में अंतर्वैयक्तिकता (Intersubjectivity) (अर्थात दो व्यक्ति दो भिन्न समझ से कोई कार्य आरम्भ करें और आखिर में एक सहभागी समझ तक पहुंचें) का होना आवश्यक है। साथ ही सामाजिक अंत:क्रिया में ढांचा / मंच निर्माण (Scaffolding) भी होना चाहिए। ढांचा / मंच निर्माण (Scaffolding) से तात्पर्य शिक्षण के दौरान शिक्षक के द्वारा दिए जा रहे सहयोग के उपयुक्त समायोजन से है ताकि नया ज्ञान बच्चे की वर्तमान दक्षता मे समाहित हो सके। जब बच्चे को इसकी कम जानकारी होती है कि आगे क्या करना है तब उसे प्रत्यक्ष निर्देश देना, कार्य को छोटे छोटे भागों में बांटकर समझाना, कार्य करने के विभिन्न तरीके एवं उनके पीछे का तर्क बताना और बच्चा जैसे जैसे उस कार्य में दक्षता हासिल करले वैसे वैसे सहयोग को कम करते जाना और अंतत: बच्चे को स्वतंत्र रूप से उस कार्य मे दक्ष बना देना ढांचा निर्माण (Scaffolding) है।

1.5 रचनावाद / संरचनावाद (Constructivism) एवं शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया

रचनावाद के अनुसार प्रत्येक शिक्षार्थी अपने स्वयं के लिए ज्ञान का निर्माण करता है, अर्थ निर्माण ही अधिगम है। अधिगम का कोई और मतलब नहीं है रचनावादी परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत छात्र एक कोरी स्लेट नहीं होता है बल्कि वह अपने साथ पूर्व अनुभव लाता है, वह किसी परिस्थिति के सांस्कृतिक तत्व और पूर्व ज्ञान के आधार पर ज्ञान का निर्माण करता है। रचनावाद परिप्रेक्ष्य में छात्रों की समालोचनात्मक चिंतन व अभिप्रेरणा को विकसित कर उन्हें स्वतंत्र अधिगमकर्ता के रूप में ढाला जाता है। रचनावादी परिप्रेक्ष्य में शिक्षण युक्तियां व गतिविधियां अधिगम प्रक्रिया पर आधारित होती हैं। रचनावादी परिप्रेक्ष्य का केन्द्र है छात्र सशक्तीकरण। जैसे अभिभावक बालक के जन्म के बाद उसके स्वतंत्र जीवन यापन के लिए हर संभव आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, ऐसे ही रचनावादी परिप्रेक्ष्य का उद्देश्य अधिगमकर्ता का निर्माण होता है और शिक्षक उसी के लिए प्रयासरत रहता है।

रचनावाद की शिक्षण अधिगम से सम्बंधित प्रमुख मान्यताएं निम्नांकित हैं:

- अधिगमकर्ता ज्ञान की रचना में अपने संवेदी अंगों को इनपुट की तरह उपयोग करता है।
- अधिगम एक सामाजिक प्रक्रिया है।
- अधिगमकर्ता जितना अधिक जानता है उतना अधिक सीखता है।
- अधिगम की प्रक्रिया में समय लगता है यह अचानक नहीं होती।
- अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्ता सूचनाओं को ग्रहण करता है उन पर विचार करता है, उनका उपयोग करता है व अभ्यास करता है।
- अधिगम में प्रेरणा एक आवश्यक तत्व है जिससे अधिगमकर्ता के संवेदी संरचनाएं सक्रिय रहती हैं।
- अधिगमकर्ता दूसरे अधिगमकर्ताओं व शिक्षक से सीखता है।

रचनावाद की विशेषताएं:

1. रचनावाद के फलस्वरूप कई सारी शिक्षण विधियों का विकास हुआ है जो रचनावाद के सिद्धान्तों के अनुरूप हैं।
2. छात्रों को अपने अधिगम के लिए उत्तरदायित्व देना।
3. छात्रों को अधिगम की तैयारी से अधिगम के मूल्यांकन तक सक्रिय रूप से सम्मिलित रखना।
4. छात्रों को सामूहिक गतिविधियों क लिए अभिप्रेरित करना।
5. छात्रों में जिज्ञासा को प्रोत्साहित करना व उसकी तृप्ति हेतु प्रयास करवाना।

रचनावाद की सीमायें

1. रचनावाद प्रत्येक अधिगमकर्ता को विशिष्ट मानता है जिसके अनुरूप उसके अधिगम अनुभवों का नियोजन होना चाहिए, परन्तु एक कक्षा में एक समय में एक से अधिक छात्र होते हैं जिनके अनुसार अधिगम अनुभवों का नियोजन वास्तविक में संभव प्रतीत नहीं होता।
2. पाठ्यक्रम के विस्तार और विविधता के चलते इस परिप्रेक्ष्य के अनुसार पाठ्यक्रम समय से पूर्ण करना भी एक चुनौती है क्योंकि इस परिप्रेक्ष्य में अधिगम में समय ज्यादा लगता है।

रचनावादी शिक्षक की विशेषतायें

- एक संरचनावादी शिक्षक विद्यार्थियों की स्वच्छदता एवं आरंभ प्रवृत्ति को स्वीकार एवं प्रोत्साहित करता है।
- एक रचनावादी शिक्षक पाथमिक स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं, अंत: क्रियात्मक शिक्षण सामग्रियों का प्रयोग करता है।
- रचनावादी शिक्षक विद्यार्थियों की अनुक्रिया के आधार पर अध्यापन, अनुदेशनात्मक युक्तियों के परिवर्तन अपना पाठ्य सामग्री में परिवर्तन करता है।
- रचनावादी शिक्षक अपनी जानकारी विद्यार्थियों से साझा करने से पहले विभिन्न संकल्पनाओं पर विद्यार्थी की समझ को जानने का प्रयास करता है।
- रचनावादी शिक्षक विद्यार्थियों को शिक्षक एवं एक दूसरे के साथ संवाद स्थापित करने के लिए प्रेरित करता है।
- रचनावादी शिक्षक विद्यार्थियों की जिज्ञासा को विचारोंत्तेजक, मुक्त, प्रश्नों के माध्यम से एवं एक दूसरे से प्रश्न पूछने के माध्यम से प्रोत्साहित करते है।
- रचनावादी शिक्षक विद्यार्थियों के आरंभिक अनुक्रियाओं को आगे ले जाता है।
- रचनावादी शिक्षक विद्यार्थियों को उन अनुभवों के लिए प्रेरित करता है जो उनकी आरंभिक परिकल्पना के विपरीत हो सकते हैं और तब परिचर्चा को प्रोत्साहन देना है।
- रचनावादी शिक्षक विद्यार्थियों को (प्रश्न पूछने के बाद) उत्तर देने के लिए पर्याप्त समय देता हैं।
- संबंध निर्माण एवं मेटाफोर निर्माण के लिए समय देता है।
- अधिगम चक्र प्रतिमान का प्रयोग करते हुए विद्यार्थियों की प्राकृतिक जिज्ञासा को संपोषित करता है।

1.6 आकलन के प्रति रचनावादी दृष्टिकोण (Constructivist Views on Assessment): अधिगम के लिए आकलन

अधिगम के लिए आकलन वस्तुत: आकलन का नवीन उपागम है जो शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रिया के साथ समेकित है जो विद्यार्थियों के अधिगम उन्नति के लिए प्रतिपुष्टि प्रदान करता है। वस्तुत: अधिगम के लिए आकलन 1990 के दशक से धीरे धीरे लोकप्रिय होने लगा जब यह देखा गया कि आकलन के नाम पर विद्यार्थी धीरे धीरे अति आकलन एवं बहुत सारे

परीक्षण की समस्या से घिर गए है ताकि उन्हें क्रमवार रैंक में रखा जा सके और विद्यार्थियों की आपस में तुलना की जा सके। प्राप्ताकों के निर्माण एवं सूचित करने की प्रक्रिया जो विद्यार्थियों के अधिगम का निर्णय करती थी उसे अधिगम का आकलन की संज्ञा दी गयी है।अधिगम के लिए आकलन का आधार अधिगम की समाज-रचनावादी दृष्टिकोण है जिसकी मान्यता है कि किसी भी विषय के अधिगम के लिए जो मासिक प्रतिमान का प्रयोग करते हैं वह अत्यंत जटिल पूर्व अनुभवों एवं सामाजिक व्यक्तिक से अंत: क्रियाओं पर आधारित होती है।इन जटिल प्रक्रियाओं को विद्यार्थीं एवं शिक्षक दोनों के लिए समझने की अवस्था उन अधिगम सामग्रियों की प्रकृति समझने में मददगार है। इसकी यह भी मान्यता है कि शिक्षक एवं अधिगम को उसकी गहराई के मध्य के संवाद एवं प्रतिपुष्टि की गुणवत्ता शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

रचनावादियों के अनुसार शिक्षा का तात्पर्य बालक का सर्वांगीण विकास (बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक-भावनात्मक आदि) है, अत: आकलन का भी उद्देश्य सर्वांगींण विकास को आकलन करने वाला होना चाहिए

रचनावाद के अनुसार आकलन के मुख्य उद्देश्य है विद्यार्थीं के अधिगम को प्रेरित करना एवं उनकी शैक्षिक संप्राप्ति को उन्नत करना। अत: अधिगम से पूर्व विद्यार्थियों के लिए यह जानना आवश्यक है कि

- अधिगम का लक्ष्य क्या है?
- उन्हें यह क्यों सीखना चाहिए?
- अधिगम लक्ष्यों की प्राप्ति में वे कहां है?
- अधिगम लक्ष्यों की प्राप्ति कैसे की जा सकती है?

वस्तुत: अधिगम के लिए आकलन विद्यार्थियों के अधिगम से संबंधित सूचना प्राप्त करके एवं उनका विस्तृत विश्लेषण करने की प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रत्येक विद्यार्थीं एवं शिक्षक दोनों यह जानने का प्रयत्न करते हैं विद्यार्थी अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति में कहाँ हैं एवं उन्हें अपेक्षित स्तर तक ले जाने का सर्वोत्तम तरीका क्या है। अधिगम के लिए आकलन, अधिगम के साथ साथ चलने वाली प्रक्रिया है अत: इसके द्वारा विद्यार्थीं यह जान पाते है कि उन्हें क्या सीखना है, उनसे क्या अपेक्षित है, और शिक्षक आकलन के द्वारा उसके आधार पर उन्हें प्रतिपुष्टि एवं सलाह प्रदान करता है कि वे अपने अधिगम को और उन्नत कैसे बना सकते है। अधिगम के लिए आकलन में शिक्षक के द्वारा यह जानने का प्रयास किया जाता है कि उनके विद्यार्थीं क्या जानते हैं, क्या कर सकते हैं एवं उनकी अधिगम कठिनाइयों क्या क्या हैं।

रचनात्मक आकलन अथवा अधिगम के लिए आकलन की विशेषताएं (Features of Assessment for Learning/Constructive Assessment)

जैसा कि हमने जाना 'अधिगम के लिए आकलन' वस्तुत: रचनावादी दृष्टिकोण पर आधारित है जिसकी प्रमुख विशेषताएं निम्नांकित हैं:

- **रचनात्मक आकलन नैदानिक और उपचारात्मक होता है।**
- **रचनात्मक आकलन विद्यार्थियों शिक्षा-प्राप्ति में सक्रिय भागीदार बनाता है**
- **रचनात्मक आकलन अध्यापक को प्रभावी अध्यापन में सहायता करता है**
- **रचनात्मक आकलन विद्यार्थियों की अभिप्रेरणा और आत्म-सम्मान को उन्नत बनाता है**
- **रचनात्मक आकलन विद्यार्थियों में स्व-मूल्यांकन की प्रवृति को प्रोत्साहित करता है**
- **रचनात्मक आकलन क्या और कैसे पढ़ाया जाए, इसका निर्णय करने में शिक्षक को सहयोग करता है**
- **रचनात्मक आकलन विद्यार्थियों को उन मानदंडों को समझने के लिए प्रोत्साहित करता है, जिनका उपयोग उनके उनकी शैक्षिक संप्राप्ति का आकलन किया जानेवाला है**
- **रचनात्मक आकलन विद्यार्थियों को रचनात्मक फीडबैक प्रदान करके उन्हें सुधार करने का अवसर प्रदान करता है।**

अधिगम के लिए आकलन के लाभ –

- **अधिगम के लिए आकलन विद्यार्थीं को उसके अधिगम लक्ष्यों के अविभिन्न अवयवों को समझने में सहायता करता है, उन्हें उनके अधिगम के प्रति जिम्मेवार बनाता है एवं आगे के अधिगम को योजनाबद्ध करने में सहायक है।**
- **अधिगम के लिए आकलन अधिगम एवं आकलन के बीच एक मजबूत कड़ी का निर्माण करता है।**
- **अधिगम के लिए आकलन विद्यार्थियों के अधिगम के लिए प्रतिपुष्टि प्रदान करता है जो अधिगम को प्रभावी बनाता है और उनकी सम प्राप्ति पर सकारात्मक प्रभाव डालता है।**

- अधिगम के लिए आकलन विद्यार्थियों को उनके अधिगम के प्रति रचनात्मक प्रतिपुष्टि प्रदान कर उनका आत्मविश्वास, अन्वेषण क्षमता एवं रचनात्मकता में वृद्धि करता है
- अधिगम के लिए आकलन विद्यार्थीं कैसे सीखते हैं पर केन्द्रित है।
- अधिगम के लिए आकलन संवेदनशील एवं रचनावादी है।
- अधिगम के लिए आकलन विद्यार्थियों की अभिप्रेरणा में वृद्धि करने में सहायक है
- अधिगम के लिए आकलन विद्यार्थियों में लक्ष्य एवं मानदंड की समझ विकसित करता है।
- अधिगम के लिए आकलन विद्यार्थियों की सर्वंगीण उन्नति में सहायक है।
- अधिगम के लिए आकलन विद्यार्थियों में स्व अधिगम की योग्यता विकसित करता है।
- अधिगम के लिए आकलन विद्यार्थीं संप्राप्ति का विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक आकलन करता है।

1.7 आकलन अधिगम का आकलन एवं अधिगम के लिए आकलन में प्रमुख अंतर:

तुलना के आधार	अधिगम का आकलन	अधिगम के लिए आकलन
आधार	मुख्यत: व्यवहारवादी	संज्ञान वादी एवं रचनावादी
आकलन का समय	निर्धारित अधिगम की समाप्ति पर	सतत, सम्पूर्ण अधिगम के दौरान
पूर्वानुमान क्षमता	पश्च-दर्शी (शिक्षक विद्यार्थियों के अधिगम का आकलन और तदनुसार उनको विभीन्न श्रेणियों में रखना अधिगम	अग्रदर्शी (सम्पूर्ण अधिगम के दौरान विद्यार्थी का सतत आकलन एवं तदनुसार उसके अधिगम की उन्नति हेतु नियमित प्रतिपुष्टि)

	की समाप्ति के उपरांत)	
समय	आवधिक (अधिगम का आकलन एक निश्चित समय के उपरांत ताकि विद्यार्थियों को उनकी शैक्षिक संप्राप्ति के अनुसार विभिन्न श्रेणियों में रखा जा सके)	सतत एवं चक्रीय (शिक्षक और विद्यार्थी लगातार प्रगति का आकलन करते रहते हैं और आकलन की प्रतिपुष्टि के अनुसार नैदानिक शिक्षण)
विविधता एवं व्यक्तिगत भिन्नता	व्यक्तिगत भिन्नताओं की उपेक्षा, आकलन की प्रक्रिया सभी विद्यार्थियों के लिए समान मुख्यतः लिखित परीक्षाओं पर आधारित	व्यक्तिगत भिन्नताओं पर आधारित,आकलन की प्रक्रिया में समाहित कार्य कलापों में विविधता यथा असैन्मेंट,सहपाठी मूल्याङ्कन, सतत मूल्याङ्कन आदि
आकलन की प्रकृति	मुख्यतः निर्णयात्मक	विवरणात्मक
नैदानिक / उपचारात्मक प्रकृति	गैर उपचारात्मक (क्योंकि आकलन का उद्देश्य शैक्षिक संप्राप्ति का श्रेणीकरण)	उपचारात्मक (आकलन का उद्देश्य मुख्यतः सतत प्रतिपुष्टि के आधार पर विद्यार्थी के अधिगम को प्रभावी बनाना)
गुणात्मकता	मूलतः परिमाणात्मक क्योंकि इसका	मूलतः गुणवत्तापरक क्योंकि इसमें शिक्षक व विद्यार्थी निरंतर अधिगम की गुणवत्ता का निर्णय

	सम्बन्ध अंकों व ग्रेडों से है	साझा करते है शैक्षिक उपलब्धि की गुणवत्ता के स्तर को बढ़ाने की दिशा में काम करते हैं
केंद्र	मुख्यतः शिक्षक उन्मुख	शिक्षक एवं विद्यार्थी उन्मुख आकलन की प्रक्रिया में शिक्षक एवं विद्यार्थी की सक्रिय सहभागिता

1.8 सारांश

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था व्यापक परिवर्तनों के दौर से गुजर रही है शिक्षण एवम अधिगम के प्रत्येक स्तर पर परिवर्तन जारी है। सूचना विस्फोट के वर्तमान समय में विद्यार्थी न तो ज्ञान का एक निष्क्रिय ग्रहण कर्ता रह गया है और न ही शिक्षक ज्ञान प्राप्ति एक मात्र साधन । शिक्षण- अधिगम एवं तदनुसार आकलन का उदेश्य भी एक सृजनात्मक विद्यार्थी जो अपने समाज एवं सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति संवेदनशील हो, तैयार करना हो गया है आकलन का तात्पर्य किसी व्यक्ति या समूह के बारे में सूचना संग्रहण, विश्लेषण एवं उनका अर्थ निकालने की प्रक्रिया से है जिस से किसी व्यक्ति के बारे में अनुदेशनात्मक, निर्देशनात्मक अथवा प्रशासनिक निर्णय लिये जा सकें। आकलन के पारंपरिक व्यवहारवादी दृष्टिकोण जिसे 'अधिगम का आकलन' की संज्ञा भी दी जाती है का मुख्य उद्देश्य 'योगात्मक' है जो सामान्यतः किसी कार्य या कार्य की, इकाई की समाप्ति पर किया जाता है। 'अधिगम का आकलन' विद्यार्थीं की संप्राप्ति के प्रमाण उसके माता पिता, शिक्षक, विद्यार्थीं स्वयं अथवा अन्य व्यक्तियों के लिए प्रस्तुत करता है । अपनी विभिन्न मान्यताओं के आधार पर व्यवहारवादियों ने जो आकलन के उपकरण सुझाये वे प्रत्यास्मरण पर आधारित थे जिनमे लिखित परीक्षा अथवा पेपर पेंसिल टेस्ट प्रमुख थे। साथ ही व्यवहारवादियों ने आकलन के आधार पर विद्यार्थियों की रैंकिंग एवं उनके संप्राप्ति के मात्रात्मक आकलन को बढ़ावा दिया। परिणामतः धीरे धीरे योगात्मक आकलन की महत्ता बढती चली गयी। आकलन का उद्देश्य विद्यार्थियों के कथित अधिगम स्तर में विभेद करना एवं तदनुसार उन्हें विभीन्न श्रेणियों में रखना मात्र हो गया। इस कारण विद्यार्थियों पर विभिन्न प्रकार के प्रत्यास्मरण पर आधारित परीक्षणों का बोझ बढ़ता चला गया और उनकी रचनात्मकता की उपेक्षा होती गयी। व्यवहार वादियों ने अधिगम के

संज्ञानात्मक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षों की भी उपेक्षा की और संस्कृति मुक्त (Culture Free or Culture Fair) परीक्षणों के विकास पर ध्यान केंद्रित रखा फलतः अधिगम का उद्देश्य पाठ्यक्रम की समाप्ति पर ' लिखित परीक्षाओं' में उच्च अंक प्राप्त करना मात्र रह गया। रचनावाद के अनुसार अधिगम एक सक्रिय प्रक्रिया है जो प्रत्येक अधिगमकर्ता के लिए विशिष्ट होती है जिसमें अधिगमकर्ता अपने पूर्व अनुभवों व ज्ञान के आधार पर प्रत्ययों में संबंध स्थापित करे उनके अर्थों की रचना करता है। अधिगम के लिए आकलन वस्तुतः आकलन का नवीन उपागम है जो शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रिया के साथ समेकित है जो विद्यार्थियों के अधिगम उन्नति के लिए प्रतिपुष्टि प्रदान करता है। अधिगम के लिए आकलन विद्यार्थी कैसे सीखते हैं पर केन्द्रित है।अधिगम के लिए आकलन संवेदनशील एवं रचनावादी है जो विद्यार्थियों की अभिप्रेरणा में वृद्धि करने में सहायक है, स्व अधिगम की योग्यता विकसित करता है, विद्यार्थियों में लक्ष्य एवं मानदंड की समझ विकसित करता है, विद्यार्थी संप्राप्ति का विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक आकलन करता है एवं विद्यार्थियों की सर्वंगीण उन्नति में सहायक है।

1.10 अन्य अध्ययन / सन्दर्भ ग्रन्थ

CBSE (2014) "रचनात्मक मूल्यांकन हेतु शिक्षक संदर्शिका" C.B.S.E.

CIE(2016) Assessment for Learning: Cambridge International Examination

Gardner, J., (2016) Assessment for Learning: A practicalGuide, The northern Ireland Curriculum, retrieved from http://ccea.org.uk/sites/default/files/docs/curriculum/assessment/assessment_for_learning/afl_practical_guide.pdf

NCA (2016) Assessment for Learning Leaflet, Retrieved from http://www.ncca.ie/ga/Foilseach%C3%A1n/Foilseach%C3%A1in_Eile/Assessment_for_Learning.pdf

NCERT (2005) National Curriculum Framework, 2005, NCERT.

NCTE (2009) National Curriculum Framework for Teacher Education, N.C.F. 2005 की रिपोर्ट.

http://www.hkeaa.edu.hk/DocLibrary/SBA/HKDSE/Eng_DVD/doc/Afl_principles.pdf

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

- आकलन की परिभाषा एवं उसकी प्रकृति और विशेषताओं का वर्णन करें।
- आकलन के पारम्परिक दृष्टिकोण 'अधिगम का आकलन' पर प्रकाश डालें।
- आकलन के रचनवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करें।
- अधिगम के लिए आकलन के संप्रत्य को सपष्ट करें एवं उसके लाभ बताइए।
- अधिगम के लिए आकलन की क्या विशेषताएं होनी चाहिए?
- अधिगम के आकलन एवं अधिगम के लिए आकलन में अंतर स्पष्ट करें।

इकाई 13-मापन मूल्यांकन एवं आकलन : तुलना एवं अंतर परीक्षा एवं परीक्षण (Comparing and Contrasting Assessment, Evaluation, Measurement, test and Examination)

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 मापन का अर्थ एवं परिभाषाएं

2.3.1 मापन के विभिन्न स्तर/ स्केल

13.4 मूल्यांकन: अर्थ परिभाषा एवं विशेषताएं

13.5 आकलन: अर्थ परिभाषा एवं विशेषताएं

2.5.1 आकलन: महत्व एवम आवश्यकता

13.6 मापन एवं मूल्यांकन में अंतर

13.7 मूल्यांकन एवं आकलन में अंतर

13.8 परीक्षा एवं परीक्षण

13.9 इकाई सारांश

13.10 बोध प्रश्न

13.11 संदर्भ ग्रन्थ /अन्य अध्ययन

13.1 प्रस्तावना

मापन तुलना का आधार है। जब भी हम दो या दो से अधिक वस्तुओं की तुलना करते हैं हमे सर्व प्रथम उनका मापन करना होता है । मनोविज्ञान एवं शिक्षा में मापन मूल्यांकन एवं आकलन का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। मनोवैज्ञानिक मापन (Psychological Measurement) का आधार व्यक्तिगत भिन्नता है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न गुणों यथा अपनी बुद्धि लब्धि, अपनी अभिवृत्ति, अपने व्यक्तित्व, रूचि, चिंतन, आदि में एक दूसरे से पूर्णत: भिन्न हैं। इस व्यक्तिगत भिन्नता के कारण प्रत्येक विद्यार्थी भी अद्वितीय है, जिस कारण विभिन्न विषयों एवं क्षेत्रों में उसकी उपलब्धि का स्तर भी अलग अलग होता है। शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक मापन का प्रमुख उद्देश्य है इन्हीं भिन्न गुणों की मात्रा निर्धारित करना ताकि विभिन्न गुणों के आधार पर विद्यार्थियों की तुलना संभव हो सके। मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक मापन एक अत्यंत कठिन तथा जटिल कार्य है क्योकि मनोविज्ञान मापन में 'व्यवहार का मापन' सन्निहित है। प्रथम दृष्ट्या मापन, मूल्यांकन एवं आकलन समानार्थी प्रतीत होते हैं परन्तु इन तीनों पदों में पर्याप्त भिन्नताएं हैं । इस इकाई में हम मापन, मूल्यांकन एवं आकलन का संप्रत्यय एवं उनकी मध्य अंतर जानेंगे।

13.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपसे अपेक्षित है कि

- मापन के संप्रत्यय को स्पष्ट कर पाने में सक्षम हो सकेंगे।
- मूल्यांकन के संप्रत्यय को स्पष्ट कर पाने में सक्षम हो सकेंगे।
- आकलन के संप्रत्यय को स्पष्ट कर पाने में एवं उसके महत्त्व एवं आवश्यकता का वर्णन कर पाने में सक्षम हो सकेंगे।
- मापन एवं मूल्यांकन में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।
- मूल्यांकन एवं आकलन में अंतर स्पष्ट कर पाने सक्षम हो सकेंगे ।

13.3 मापन का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definition of Measurement)

मापन का हमारे जीवन का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है हमारी दिनचर्या की शुरुआत ही मापन से होती है जब हम घडी देखकर तय करते हैं कि सुबह के छः बजे हैं अब हमे तीन किलोमीटर का भ्रमण करके आने है और आकर एक लीटर पानी पीना है ध्यान से देखें कि मापन हमारे जीवन से कैसे जुडा है जब हम कहते हैं कि छः बज गए हैं, दो किलोमीटर भ्रमण या 1 लीटर पानी ये सभी मापन के उदहारण हैं उपरोक्त उदाहरणों को देखें तो सभी प्रकार के मापन में के दो भाग हैं: एक अंक और दूसरा मात्रक जैसे 3 किलोमीटर में अंक तीन है और मात्रक के रूप में किलोमीटर है 1 लीटर पानी में 1 अंक है और लीटर मात्रक मापन का सामान्य अर्थ है किसी गुण के साथ एक निश्चित नियम के अनुसार अंकों को जोड़ना (Measurement is the process of assigning numerals to some phenomenon according to some rules). वर्तमान समय में विज्ञान हो या सामाजिक विज्ञान उनकी सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्रगति का आधार मापन ही है। वस्तुतः मापन तुलना का आधार है जब भी हम दो या दो से अधिक वस्तुओं की तुलना करते हैं हमे सर्व प्रथम उनका मापन करना होता है जैसे यदि हम तुलना करना चाहते हैं कि हमारे घर विद्यालय एवं हमारा कार्यस्थल कौन ज्यादा दूर है तब हमे सबसे पहले उनका मापन करना होगा विद्यालय 4 किलोमीटर दूर है जबकि कार्यस्थल 3 किलोमीटर तब आप तुलना करके बता सकते हैं कि विद्यालय कार्यस्थल की बजाय ज्यादा दूर है सामान्य अर्थों में कोई विशिष्ट गुण कितनी मात्रा में मौजूद है यह जानना ही मापन है इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि किन्हीं गुणों की मात्रा का उचित इकाई से प्रदर्शन करना ही मापन है। किसी व्यक्ति अथवा वस्तु मे कोई विशिष्ट गुण कितनी मात्रा में विद्यमान है इसकी जानकारी मापन द्वारा ही मिलती है।

आइये देखें कि विद्वानों ने मापन के क्या परिभाषाएं दी हैं:

प्रसिद्ध विद्वान एस.एस. स्टीवेन्स के अनुसार - *मापन निश्चित एवं स्वीकृत नियमों के अनुसार विभिन्न वस्तुओं को अंक प्रदान करने की प्रक्रिया है।*

(Measurement is the process of assigning number to object according to certain agreed rules -S.S. Stevens)

ब्रेडफील्ड के अनुसार 'मापन, किसी तथ्य के विभिन्न आयामों को प्रतीक प्रदान करने की प्रक्रिया है ताकि उस तथ्य की विशेषता को संक्षिप्त से संक्षिप्त रूप में प्रकट किया जा सके' ।

('Measurement is the process of assigning symbols to dimensions of phonomena in order to charectarize the status of phenomenon as precisely as possible'. James M. Bradfield)

यदि हम मापन की उपरोक्त परिभाषाओं पर ध्यान दें तो हमे मापन की प्रक्रिया के तीन मुख्य अवयव प्राप्त होते हैं:

1. **उन वस्तुओं/ व्यक्तियों की उपस्थिति जिनमें किसी गुण अथवा विशेषता का मापन करना हो।**
2. **आंकिक मान/संकेत के एक समूह का होना जिसके पदों में जो विशिष्ट गुण की मात्रा निर्धारित की जा सकती है एवं**
3. **इकाई अथवा मात्रक अर्थात विशेषता के आधार पर अंक प्रदान करने के लिए 'पूर्व निर्धारित तथा मान्य नियम'**

13.3.1 मापन के स्केल / स्तर (Scales / Levels of Measurement)

मनोविज्ञान एवं शिक्षा में भी मापन का अत्यंत महत्त्व है। मनोवैज्ञानिक मापन (Psychological Measurement) का आधार व्यक्तिगत भिन्नता है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न गुणों यथा अपनी बुद्धि लब्धि, अपनी अभिवृत्ति, अपने व्यक्तित्व, रूचि, चिंतन, आदि में एक दूसरे से पूर्णत: भिन्न हैं। इस व्यक्तिगत भिन्नता के कारण प्रत्येक विद्यार्थी भी अद्वितीय है, जिस कारण विभिन्न विषयों एवं क्षेत्रों में उसकी उपलब्धि का स्तर भी अलग अलग होता है। शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक मापन का प्रमुख उद्देश्य है इन्हीं भिन्न गुणों की मात्रा निर्धारित करना ताकि विभिन्न गुणों के आधार पर विद्यार्थियों की तुलना संभव हो सके। मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक मापन एक अत्यंत कठिन तथा जटिल कार्य है क्योकि मनोविज्ञान मापन में 'व्यवहार का मापन' सन्निहित है। मानव व्यवहार असंख्य कारकों से प्रभावित होता है और विभिन्न परिस्थिति एवं उद्दीपक के साथ बदलता परिवर्तन शील है। कई बार समान परिस्थितियों और उद्दीपको के होते हुए भी कालान्तर के कारण व्यवहार में परिवर्तन आ जाते हैं। शैक्षिक उपलब्धि, बुद्धि, व्यक्तित्व – ये सभी जिनका मनोविज्ञान में मापन होता है, जटिल हैं। मनोविज्ञान को भौतिक विज्ञान अथवा अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की तरह 'वैज्ञानिक'(Scientific) बनाने की प्रक्रिया में सर्वप्रथम मापन की इस कठनाई को

एस एस स्टीवेंस (SS Stevens) ने महसूस किया एवं मनोवैज्ञानिक मापन में मापन के विभिन्न स्तर (Levels of Measurement) या मापन के स्केल (Scales of Measurement) की व्याख्या की।

मापन के स्तर (Levels / Scales of Measurement)

स्टीवेंस ने मापन के निम्नलिखित चार स्तरों का वर्णन किया है:

नामित स्तर (Nominal Scale):

नामित स्तर, मापन का सरलतम रूप है जिसमें वस्तुओं अथवा घटनाओं को किसी गुण या विशेषता के आधार पर अलग-अलग समूहों में रख दिया जाता है तथा प्रत्येक व्यक्ति या समूह की पहचान के लिए उसे कोई नाम संख्या अथवा चिन्ह दे दिया जाता है। इसलिए एक-एक समूह में सम्मिलित समस्त सदस्य उस गुण विशेष में आपस में समान किन्तु, दूसरे समूह से भिन्न होते है। जैसे आपने किसी मापन में सुविधा के लिए पुरुषों को अंक 1 दिया और महिलाओं को अंक 2 दिया, या ग्रामीण विद्यार्थियों को अंक 1 दिया शहरी विद्यार्थियों को अंक 2 दिया वस्तुतः इस स्तर पर अंकों का कोई आंकिक महत्व नहीं होता बल्कि ये सिर्फ एक संकेत के रूप में कार्य करते हैं यह एक निम्न स्तरीय मापनी है जिसपर किसी प्रकार की अन्कगानितीय संक्रिया संभव नहीं है।

क्रमिक स्तर/मापनी (Ordinal scale)

यह मापन का दूसरा स्तर है जिसमे मापन मे व्यक्तियों, वस्तुओं, घटनाओं को किसी विशेष गुण अथवा लक्षण के आधार पर उच्चतम से निम्नतम के क्रम में व्यवस्थित किया जाता है तथा प्रत्येक वस्तु को एक क्रम सूचक अंक प्रदान किया जाता है। इसका सबसे अच्छा उदहारण प्राप्तांकों के आधार पर विद्यार्थियों की रैंकिंग है कक्षा में प्रथम द्वितीय तृतीय आदि। इस से यह तो पता चलता है कि कोई गुण विशेष किसमे ज्यादा है और किसमे कम परन्तु यह पता नहीं चलता कि कितना ज्यादा है अथवा कितना कम। इस मापनी में मापनार्थ व्यक्तियों या वस्तुओं की आरोही अथवा अवरोही क्रम में एक श्रेणी तैयार की जाती है। इस स्तर की मापनी के आधार पर सिर्फ यह बताया जा सकता है कि कौन ज्यादा है कौन कम परन्तु कितना ज्यादा है और कितना कम यह नहीं बताया जा सकता।

अन्तराल स्तर / मापनी (Interval Scale)

मापन का यह तृतीय स्तर है जिसमें इकाइयों अथवा वर्गों की दूरी अथवा अन्तर सामान होते हैं। इसमें प्रत्येक इकाई के बीच का अन्तर अथवा दूरी समान होती है, किन्तु कोई भी अंक शून्य से कितना दूर है इसका पता नही हो सकता है क्योंकि इसमें वास्तविक शून्य नही पाया

जाता है (*वास्तविक शुन्य का तात्पर्य 'गुण की अनुपस्थिति' से है प्राकृतिक विज्ञानों में जैसे 0 मीटर का मतलब है कोई लम्बाई नहीं 0 किलोग्राम का मतलब है कोई वजन नहीं इसे निरपेक्ष शुन्य कहते हैं)* क्रमसूचक मापनी की तुलना में यह मापनी अधिक उपयोगी है। मनोवैज्ञानिक तथ्यों के मापन में यह बहुलता के साथ प्रयुक्त होती है। इस स्तर पर सापेक्ष शून्य होने की वजह से इस स्तर पर किये गए मापन में जोड़ना एवं घटना आदि अंकगणितीय क्रियाएं तो की जा सकती है परन्तु गुणा एवं भाग संभव नहीं। उदहारण के लिए किसी व्यक्ति का आई क्यू शुन्य है यह नहीं कहा जा सकता परन्तु आई क्यू 20, 40, 100 आदि है कहा जा सकता है। इससे सांख्यिकीय गणनाएं संभव होती हैं। इसका सबसे अच्छा उदहारण तापमान मापने का सेल्सियस स्केल है जिस पर यह तो कहा जा सकता है कि 20 डिग्री तापमान 10 डिग्री तापमान से 10 ज्यादा है परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि 20 डिग्री तापमान 10 डिग्री तापमान से दुगुना है। यह मापनी केवल सापेक्षिक मापन करती है। इसमें वास्तविक शून्य बिन्दु का अभाव होने से किसी वस्तु के गुण का निरपेक्ष मापन करने में यह सक्षम नही है। यह इस विधि की एक बड़ी कमी है, उदाहरणार्थ कोई छात्र परीक्षा में शून्य अंक प्राप्त करता है इसका आशय यह नही कि वह छात्र उस विषय में कुछ ज्ञान नही रखता है।

अनुपात स्तर/ मापनी (Ratio Scale)

यह स्तर सर्वोच्च स्तर है जो अन्य मापनीयों की तुलना में श्रेष्ठ, उच्चस्तरीय एवं वैज्ञानिक है। अन्तराल मापनी के समस्त विशेषताओं के साथ -साथ इस मापनी में एक निरपेक्ष शून्य (Absolute Zero)बिन्दु विद्यमान रहता है जो अन्य किसी भी मापनी में नही पाया जाता। वास्तविक शुन्य का तात्पर्य 'गुण की अनुपस्थिति' से है। प्राकृतिक विज्ञानों में जैसे 0 मीटर का मतलब है कोई लम्बाई नहीं 0 किलोग्राम का मतलब है कोई वजन नहीं इसे निरपेक्ष शुन्य कहते हैं। इसी कारण इसे अन्तराल मापनी से श्रेष्ठ माना जाता है। इसमें शून्य बिन्दु कोई कल्पित बिन्दु नही होता अपितु इसका अर्थ किसी गुण या विशेषता की शून्य मात्रा से है। सामान्यत: मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक मापन अधिकतर अन्तराल स्तर के मापन होते है।

13.4 मूल्यांकन का अर्थ एवं परिभाषाएं (Evaluation: Meaning, Definition and Charectaristics)

शिक्षा एक उद्देश्य पूर्ण क्रिया है जिसका कार्य है पूर्व निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों की छात्रों के व्यवहार परिवर्तन के रूप में प्राप्ति। शिक्षण क्रियाओं द्वारा ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों का विकास किया जाता है। निष्पति परीक्षा द्वारा ज्ञानात्मक पक्ष के विकास का मापन किया जाता है। भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों के विकास का मापन करना

कठिन होता है। शैक्षिक मापन का कोई महत्व नहीं है यदि हम उसका तुलनात्मक विवरण न प्रस्तुत करें। उदहारण के लिए किसी विद्यार्थी ने वार्षिक परीक्षा में 98% अंक प्राप्त किये हैं क्या इस मापन के आधार पर आप कह सकते हैं कि वह एक कुशाग्र विद्यार्थी है? सामान्यतः आपका उत्तर होगा हाँ परन्तु इस परिस्थिति पर विचार करें कि उस कक्षा अन्य सभी विद्यार्थियों ने 99% अंक प्राप्त किये हैं ऐसे में वर्णित विद्यार्थी अपनी कक्षा में सबसे पीछे है। मापन की इसी समस्याको दूर करता है मूल्यांकन। यदि आप कहते हैं कि विद्यार्थी ने 98% अंक प्राप्त करके अपनी कक्षा में सबसे ऊपर अथवा सबसे पीछे अथवा दूसरे स्थान पर रहा तब यह स्पष्ट होता है कि विद्यार्थी की वास्तविक संप्राप्ति का स्तर क्या है। सामान्य अर्थों में मापन को सार्थक बनाने की प्रक्रिया मूल्यांकन है। इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है:

मूल्यांकन = मापन + मूल्य निर्णय (विद्यार्थी का प्राप्तांक + कक्षा में उसका स्थान)

मापन प्रक्रिया के अन्तर्गत जहां किसी वस्तु को आंकिक स्वरूप प्रदान किया जाता है वहीं मूल्यांकन में उस वस्तु का मूल्य निर्धारित किया जाता है अर्थात् मूल्यांकन में यह निर्णय किया जाता है कि गुण विशेष के मापदंड पर कौन सी चीज अच्छी है। शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन प्रक्रिया के अन्तर्गत न केवल छात्रों की विषय सम्बन्धी योग्यता की जानकारी प्राप्त की जाती है बल्कि यह भी जानने का प्रयास किया जाता है कि उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास किस सीमा तक हुआ है साथ ही शिक्षण पाठ्यक्रम शिक्षण-विधियों आदि की सफलता के बारे में जानकारी प्राप्त करने में भी मूल्यांकन प्रक्रिया एकांगी न होकर विभिन्न कार्यो की श्रृंखला है जिसके अन्तर्गत मात्र केवल एक ही कार्य निहित नही होता वरन् अनेक सोपान सम्मिलित रहते है। सारांशतः मूल्यांकन एक निर्णयात्मक एवं व्यापक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत विषय-वस्तु की उपयोगिता के विषय में निर्णय लिया जाता है। मूल्यांकन के अन्तर्गत विद्यार्थी के व्यवहार परिवर्तन का अध्ययन एवं उसके मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया मूल्यांकन कहलाती है।

आइये देखें कि विभिन्न शिक्षाविदों/ मनोवैज्ञानिकों ने मूल्यांकन की क्या परिभाषा दी है?

डांडेकर के अनुसार -

'विद्यार्थी के द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों को किस सीमा तक प्राप्त किया गया है यह जानने की व्यवस्थित प्रक्रिया मूल्यांकन है'।

(Evaluation may be defined as a systematic process of determining the extent to which educational objectives are achieved by pupil" Dandekar)

टॉरगेर्सन तथा एडम्स के अनुसार -

'मूल्यांकन का अर्थ है: 'वस्तु अथवा प्रक्रिया का मूल्य निर्धारित करना' इस प्रकार शैक्षिक मूल्यांकन का तात्पर्य शिक्षण प्रक्रिया अथवा अधिगम -अनुभवों की उपयोगिता के सम्बन्ध में मूल्य प्रदान करना है।'

(To Evaluate is to ascertain the value of some process or things thus educational evaluation is the passing of judgement on the degree of worth wholeness of some teaching process or learning experience."

-T.L. Turgersen and G.S. Adams.)

कोठारी कमीशन (1966) के अनुसार 'मूल्यांकन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो शिक्षा प्रणाली का अभिन्न अंग है। इसका शैक्षिक उद्देश्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध है'।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT) के अनुसार, 'मूल्यांकन व्यवस्थित और अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है जिसका सम्बन्ध निम्नांकित के निर्धारण से है:

- **पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हो रही है।**
- **कक्षा मे दिए जाने वाले अधिगम अनुभव कितने प्रभावशाली रहे है।**
- **शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति कितने अच्छे से हुई है।**

मूल्यांकन की विशेषताएं:

मूल्यांकन की उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करें तो मूल्यांकन की निम्नांकित विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं:

1. **मूल्यांकन एक सतत प्रक्रिया है (Evaluation is a continuous process) मुल्यांकन पाठ्यक्रम की समाप्ति पर सम्पन्न की जानेवाली प्रक्रिया नहीं है बल्कि यह सम्पूर्ण शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का अभिन्न अंग है।**
2. **मूल्यांकन एक व्यापक प्रक्रिया है (Evaluation is a comprehensive process) मूल्यांकन एक व्यापक प्रक्रिया है जिसमे छात्र के सभी पक्षों की अर्थात शारीरिक संवेगात्मक एवं बौद्धिक जानकारी प्राप्त होती है और इससे छात्र के समग्र व्यवहार का चित्र प्रस्तुत होता है।**
3. **मूल्यांकन एक गतिशील प्रक्रिया है (Evaluation is a dynamic process) मूल्यांकन एक गत्यात्मक प्रक्रिया है अर्थात मूल्यांकन के द्वारा पाठ्यक्रम, अनुदेशन और विद्यार्थी सभी में अनवरत सुधार करने का अवसर मिलता रहता है और तदनुसार मूल्यांकन विधियों मे परवर्तन होते हैं।**

4. मूल्यांकन एक सहयोगी प्रक्रिया है (Evaluation is a collaborative process) मूल्यांकन एक सहयोगी प्रक्रिया है क्योंकि इसमें अध्यापक और विद्यार्थी दोनो का सहयोग अपेक्षित है।
5. मूल्यांकन उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है (Evaluation is a purposeful activity) मूल्यांकन उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है अर्थात इसकी सहायता से पता लगाया जाता है की शिक्षण द्वारा पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हो गई है।
6. मूल्यांकन छात्र केन्द्रित प्रक्रिया है (Evaluation is a Student-Centered process) मूल्यांकन छात्र केन्द्रित प्रक्रिया है क्योंकि इसका केंद्र है विद्यार्थी क्योकि मूल्यांकन द्वारा यह निर्धारित किया जाता है कि शैक्षिक उद्देश्यों की विद्यार्थियों द्वारा संप्राप्ति का स्तर क्या है।

मूल्यांकन की आवश्यकता एवं उसका महत्व

1. शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति का स्तर जानने के लिए।
2. नैदानिक शिक्षण (Diagnostic Teaching) के लिए।
3. विद्यार्थियों की शैक्षिक संप्राप्ति के अनुसार उनकी रैंकिंग (Ranking) के लिए।
4. शिक्षण की विधियो तथा प्रविधियों की उपादेयता और आवश्यक हो तो उनमे परिवर्तन के लिए।
5. शिक्षण-व्यूह रचना (Teaching Strategy) में सुधार हेतु।
6. पाठ्यक्रम मूल्यांकन के लिए ।

13.5 आकलन: परिभाषा, अर्थ एवं विशेषताएं

मूलतः शब्द Assessment की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'ad sedere' (to sit beside) से मानी जाती है जिसका अर्थ है ' पास में बैठना'। वस्तुतः मध्यकालीन लैटिन समुदाय में जज के सहायक का कार्य टैक्स निर्धारित करने के उद्देश्य से किसी की संपत्ति का अनुमान लगाना होता था। बाद में इस शब्द का अर्थ परिवर्तित होकर 'किसी विचार आदि के बारे में निर्णय लेना' हो गया। सामान्य अर्थों में आकलन का अर्थ है किसी व्यक्ति या समूह से सबंधित सूचना संग्रहण की प्रक्रिया से है ताकि व्यक्ति या समूह विशेष के सन्दर्भ में कोई निर्णय लिया जा सके।

वालेस, लार्सन एवं एल्क्सनीन, 1992, के अनुसार "आकलन का तात्पर्य किसी व्यक्ति या समूह के बारे में सूचना संग्रहण, विश्लेषण एवं उनका अर्थ निकालने की प्रक्रिया से है जिस

से किसी व्यक्ति के बारे में अनुदेशनात्मक, निर्देशनात्मक अथवा प्रशासनिक निर्णय लिये जा सकें।"

(Assessment refers to the process of gathering, analyzing and interpreting information in order to make instructional, administrative and / or guidance decisions about or for an individual (Wallace, Larsen and Elksnin, 1992))

आकलन का अर्थ उद्देश्यपूर्ण क्रियाओं द्वारा सूचना संग्रहण एवं व्यवस्थापन की प्रक्रिया से है ताकि शिक्षण, अधिगम एवं विभिन्न व्यक्तियों के सन्दर्भ में उनका अर्थ निकला जा सके और प्राय: पूर्व निर्धारित मानदंडों से उसकी तुलना की जा सके।

Assessment is the process of collecting and organising information from purposeful activities (e.g., tests on performance or learning) with a view to drawing inferences about teaching and learning, as well as about persons, often making comparisons against established criteria. (Lampriyanou & Athanasou, 2009)

यदि हम आकलन की उपरोक्त परिभाषा का विश्लेषण करें तो यह पाते हैं कि आकलन के मुख्यत: पांच पहलू हैं:

- **उद्देश्य पूर्ण कार्य (Purposeful Activity)**
- **सूचना संग्रहण (Collection of Information)**
- **सूचनाओं का विश्लेषण (Analysis of Information)**
- **सूचना का अर्थ निकलना (Interpretation of Information)**
- **अनुदेशनात्मक, प्रशासनिक अथवा निर्देशनात्मक निर्णय (Instructional, Administrative or Guidance related decision making)**

<u>आकलन के उद्देश्य (Purpose of Assessment):</u>

d. शिक्षण पूर्व उद्देश्य :

- **अनुदेशन से पूर्व विद्यार्थी के पूर्व ज्ञान को जानने के लिए**
- **अधिगम की कठिनाई अथवा अग्रिम ज्ञान को जानने के लिए**
- **अनुदेशन की योजना बनाने के लिए**

e. शिक्षण के दौरान के उद्देश्य

- अनुदेशन की प्रभाविता को जानने के लिए
- अधिगम के दौरान विद्यार्थी की समस्याओं को जानने के लिए
- अनुदेशन के बारे मे प्रतिपुष्टि के लिए
- नैदनिक अनुदेशन के लिए

f. शिक्षण के उपरांत के उद्देश्य

- शैक्षिक संप्राप्ति के प्रमाणन के लिए
- विद्यार्थियों के शैक्षिक संप्राप्ति के आधार प्र ग्रेड प्रदान करने के लिए
- सम्पूर्ण शिक्षण की प्रभाविता जानने के लिए
- शिक्षक के स्वमूल्यांकन के लिए

13.5.1 आकलन की आवश्यकता एवं महत्व (Need and Importance oAssessment)

आकलन शिक्षा प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। आकलन एक शिक्षक को अपने शिक्षण के उद्देश्य एवं एवं उनके सन्दर्भ में विद्यार्थियों की संप्राप्ति को जानने में, अधिगम में विद्यार्थी को हो रही कठिनाई और उसके कारणों का विश्लेषण करने में एवं तदनुसार नैदानिक शिक्षण की योजना बनाने में मदद करता है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में आकलन का महत्व निम्नांकित है:

1. आकलन विद्यार्थियों में आत्म समझ विकसित करने एवं अपनी क्षमताओं को अच्छे से समझने में सहायक है:

आकलन विद्यार्थी की क्षमताओं एवं सीमाओं की विस्तृत जानकारी प्रदान करता है जो विद्यार्थियों में आत्म समझ भी विकसित करता है और साथ ही शिक्षक द्वारा दी गयी प्रतिपुष्टि उन्हें अपने आप को परिमार्जित (Improve) करने में सहायता करता है। साथ ही यह विद्यार्थियों को उनकी रूचि को समझने एवं तदनुसार आगे के अध्ययन के लिए भी तैयार करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि आकलन विद्यार्थी में स्व-समझ विकसित करता है और उनकी उन्नति में सहायक होता है।

2. आकलन शिक्षक को विद्यार्थियों को उनकी सम्पूर्णता में समझने में सहायता करता है:

आकलन विद्यार्थियों को उनकी सम्पूर्णता में समझने में सहायक है क्योंकि आकलन शिक्षक को विद्यार्थियों के विभिन्न पक्षों के निरीक्षण में सहायता करता है और विद्यार्थी के व्यक्तित्व की सम्पूर्ण जानकारी प्रदान करता है। आकलन के द्वारा शिक्षक को विद्यार्थियों की शक्तियों व सीमाओं सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकती है। प्रभावी शिक्षण हेतु विद्यार्थी के सभी

पहलुओं की जानकारी शिक्षक के लिए आवश्यक है क्योंकि जब तक वह बालक की क्षमताओं एवं सीमाओं को नहीं जानेगा, वह विद्यार्थी को उपयुक्त मार्गदर्शन नहीं दे सकता है और न ही उसकी समस्याओं का समाधान कर सकता है। इस कार्य में आकलन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि शिक्षक विभिन्न प्रकार के उपकरणों एवं प्रविधियों की सहायता से विद्यार्थी के सम्बन्ध में सूचनाएं प्राप्त करने में सहायक है ताकि शिक्षण अधिगम प्रभावी हो सके।

3. आकलन विद्यार्थियों के लिए अभिप्रेरणा का काम करता है:

एक व्यापक आकलन विद्यार्थियों के लिए अभिप्रेरणा का काम करता है। जब विद्यार्थियों को उनकी संप्राप्ति की व्यापक जानकारी दी जाती है, उन्हें उनके मजबूत विन्दुओं एवं उन विन्दुओं जहाँ पर उन्हें अधिक मेहनत की आवश्यकता है इसकी जानकारी हो जाती है तब वे अपने प्रदर्शन में सुधार के लिए सही दिशा में श्रम कर पाते हैं। साथ ही उनके मजबूत पक्षों की जानकारी उनका आत्मविश्वास भी बढाती है। उदाहरणार्थ यदि कोई विद्यार्थी छात्र के परीक्षा में कक्षा में उच्च स्थान प्राप्त करता है तब उसका आत्मविश्वास बढ़ता है और आगे की कक्षाओं में भी वह कक्षा में अव्वल आने का प्रयास करता है।

4. अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति की जानकारी एवं उनके मूल्यांकन में:

शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक सर्वप्रथम अपने शिक्षण के निर्धारित करता है और फिर इन्ही उद्देश्यों के आधार पर वह छात्रों को शिक्षित करता है। आकलन एक शिक्षक को अवसर प्रदान करता है कि वह जान सके कि विद्यार्थियों में वांछित व्यवहार परिवर्तन हुए हैं या नहीं अर्थात् शिक्षण के लिए अपने जिन उदेश्यों का निर्धारण किया गया था उन उद्देश्यों की प्राप्ति हो रही है या नहीं। शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया सही दिशा में आगे जा रही है या नहीं? यदि नहीं तो इसके कारण क्या हैं और उन्हें दूर कैसे किया जा सकता है? या फिर कही शिक्षण उदेश्यों की समीक्षा करने की आवश्यकता तो नहीं है? इस प्रकार आकलन के द्वारा एक ओर तो शिक्षक विद्यार्थियों के वांछित दिशा में अधिगम की जानकारी तो प्राप्त करता ही है साथ ही यह अधिगम उदेश्यों केमूल्यांकन एवं आवश्यतानुसार परिवर्तन करने में भी मददगार है ।

5. आकलन प्रभावी शिक्षण अधिगम के लिए उपयुक्त शिक्षण सामग्री एवं विधि के चयन में सहायक है: उपरोक्त कार्यो के अलावा आकलन के आधार पर देखा जा सकता है कि अधिगम अनुभव के रूप में प्रयुक्त की गई विषय सामग्री कितनी उपयुक्त है अर्थात अधिगम सामग्री को प्रस्तुत करने के लिए प्रयुक्त शिक्षण विधियां विषय वस्तु की प्रकृति एवं विद्यार्थियों के स्तर के अनुकूल है अथवा नही। शिक्षण को सरल एवं प्रभावशाली बनाने की दृष्टि से उपयुक्त सहायक सामग्री का प्रयोग किया गया है अथवा नही।

6. सम्पूर्ण शिक्षण अधिगम की गुणवत्ता को उन्नत बनाने में:

मूल्यांकन, शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की सफलता का अध्ययन करने के साथ-साथ उसमें सुधार करने में सहायता प्रदान करता है। मापन एवं मूल्यांकन के आधार पर शिक्षण विधियों को प्रभावशाली बनाने, सहायक सामग्री की उपयुक्तता
जानने में सहायता मिलती है। शिक्षण कार्य को सुधारने एवं प्रभावी बनाने में भी सहायक है अर्थात उपयुक्त आकलन सम्पूर्ण शिक्षण अधिगम की गुणवत्ता को सुधरने में भी सहायक है।

7. छात्रों की रूचि, योग्यता एवं उनकी छुपी प्रतिभा का अध्ययन करने में :

आकलन सिर्फ शैक्षिक निष्पति का ही अध्ययन कने मे सहायक नहीं है बल्कि यह विद्यार्थियों की रूचि, अभिवृति, योग्यता एवं उनके अन्दर छुपी प्रतिभा को उजागर कर पाने भी सहायक है। आकलन की प्रक्रिया में विभिन्न उपकरणों की सहायता से विभिन्न परिस्थतियों में विद्यार्थी का व्यापक निरीक्षण एवं प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण विद्यार्थी की छपी हुई प्रतिभा को सामने लाने में, उसकी रूचि को समझने में, उसकी अभिक्षमता को समझने में अत्यंत सहायक है।

8. नैदानिक शिक्षण की योजना बनाने में:

प्रयेक विद्यार्थी की किसी विषय विशेष को समझने में कठिनाई के अकी आयाम एवं कई कारन हो सकते हैं जो एक दूसरे से भिन्न हो सकते हैं ऐसे में आकलन शिक्षक को विद्यार्थियों के अधिगम की समस्याओं को गहरे से समझने एवं तदनुसार नैदानिक शिक्षण की योजना बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है

9. विद्यार्थियों के मार्गदर्शन एवं परामर्श में:

विद्यार्थियों का उपयुक्त मार्गदर्शन एवं परामर्श शिक्षक की नैतिक जिम्मेवारी है। आकलन के द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर शिक्षक विद्यार्थियों को उपयुक्त मार्गदर्शन एवं परामर्श प्रदान करने में भी सहायक है। शिक्षक प्राप्त सूचनाओं के आधार पर विद्यार्थी की क्षमताओं एवं रूचि के आधार पर उन्हें उच्च अध्ययन के लिए उपयुक्त विषय चुनने अथवा उनके लिए कैरियर विकल्प सुझाने या आगे के व्यवसाय के चयन में सहायता प्रदान करने में भी सहायक है। इस प्रकार यदि देखें तो आकलन अपने व्यापक उपयोगिता में विद्यार्थी के मार्गदर्शन एवं परामर्श में अत्यंत कारगर है।

13.6 मापन एवं मूल्यांकन में अन्तर

जैसा आपने इकाई में देखा मापन, विभिन्न गुणों के साथ निश्चित एवं स्वीकार्य नियमों के आधार पर अंक को जोड़ने की प्रक्रिया है अर्थात कसीस गुण की परिमाणात्मक अभिव्यक्ति मापन है जबकि मापन एवं मूल्य निर्धारण की समन्वित प्रक्रिया मूल्यांकन है अर्थ यह कहा

जा सकता है कि मूल्यांकन में मापन हमेशा समाहित है मापन एवं मूल्यांकन में कुछ प्रमुख अंतर निम्नांकित हैं:

मापन एवं मूल्यांकन में अंतर			
क्रम सं	अंतर का आधार	मापन	मूल्यांकन
1	व्यापकता	मापन का क्षेत्र सीमित होता है।	मूल्यांकन का क्षेत्र व्यापक होता है इसमें छात्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की परीक्षा की जाती है। मूल्यांकन के लिए मापन एवं मूल्य निर्णय दोनों आवश्यक हैं।
2	तुलनात्मकता	मापन के द्वारा तुलनात्मक अध्ययन सम्भव नही।	मूल्यांकन के द्वारा तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
3	स्पष्टता	मापन किसी छात्र के संप्राप्ति के सम्बन्ध में स्पष्ट धारणा व्यक्त नही करता।	मूल्यांकन के आधार पर किसी विद्यार्थी के शैक्षिक संप्राप्ति के बारे में स्पष्ट धारणा बनाई जा सकती है।
4	कार्य	मापन का कार्य साक्ष्यों का एकत्रीकरण करना होता है।	मूल्यांकन का कार्य साक्ष्यों के विश्लेषण से निष्कर्ष निकालना है।
5	समय एवं श्रम	मापन में अधिक श्रम एवं समय की आवश्यकता नही होती।	मूल्यांकन में अपेक्षाकृत में अधिक श्रम एवं समय की आवश्यकता होती है।
6	मुख्य केंद्र	मापन पाठ्य वस्तु केन्द्रित होता है।	मूल्यांकन शैक्षिक उद्देश्य केन्द्रित होता है।
7	प्रकृति	मापन उन निरीक्षणों की और संकेत करता है जिन्हें अंकात्मक रूप से प्रदर्शित किया जाता है।	मूल्यांकन के अन्तर्गत अंकात्मक एवं गुणात्मक दोनों ही प्रकार के निरीक्षणों को स्थान दिया जाता है।
8	प्रयुक्त विधियाँ	मापन में निश्चित विधियों का ही उपयोग होता है जो लिखित, मौखिक तथा प्रायोगिक परीक्षा के रूप में होता है।	मूल्यांकन की प्रयोग में आने वाली प्रविधियां साक्षात्कार, पर्यवेक्षण, अवलोकन आदि।

13.7 आकलन एवं मूल्यांकन में अंतर

मूल्यांकन निर्धारित करता है कि पूर्व निर्धारित मानदंड के अनुसार विद्यार्थी ने सीखा या नहीं (सफल/ असफल) जबकि आकलन विद्यार्थी के दृढ़ विन्दुओं, उन क्षेत्रों जिनमे सुधार आवश्यक है एवं अंतर्दृष्टि के लिए प्रतिपुष्टि प्रदान करता है। वस्तुत: मूल्यांकन एक परंपरागत अवधारणा है जिसका प्रमुख उद्देश्य है विद्यार्थियों के बीच शैक्षिक संप्राप्ति के आधार पर अंतर करना और इसकी प्रकृति प्राय: योगात्मक है जबकि आकलन एक नवीन अवधारणा

है जिसका उद्देश्य है विद्यार्थी निष्पादन में सुधार। आकलन एवं मूल्यांकन के प्रमुख अंतर को निम्नांकित टेबल में स्पष्ट किया गया है :

क्रम सं.	अंतर का मानदंड	आकलन	मूल्यांकन
1	विषयवस्तु	रचनात्मक, अधिगम की उन्नति	योगात्मक, विद्यार्थी संप्राप्ति को जानना
2	केंद्र	प्रक्रिया उन्मुख: शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया	उत्पाद उन्मुख: क्या सीखा गया
3	उपयोगिता	नैदानिक: उन क्षेत्रों की पहचान जहाँ पर विद्यार्थी को समस्या है	निर्णयात्मक: ग्रेड एवं अंक के रूप में विद्यार्थी द्वारा क्या सीखा गया का निर्णय
4	मुख्य भूमिका	विद्यार्थी एवं मूल्यांकनकर्ता दोनों की	मूल्यांकनकर्ता की
5	प्रतिपुष्टि का आधार	व्यापक, निरीक्षण पर आधारित मजबूत एवं कमजोर (Strength and Weaknesses) पक्षों के रूप में	पूर्व निर्धारित मानक पर आधारित गुणवत्ता के स्तर के रूप में
6	रिपोर्ट में वर्णन	विद्यार्थी के मजबूत विन्दु और किस प्रकार विद्यार्थी अपने प्रदर्शन को उन्नत कर सकता है अर्थात रचनात्मक आलोचना (Constructive Criticism)	प्रदर्शन की गुणवत्ता पूर्व निर्धारित मानदंडों पर आधारित एवं कक्षा के अन्य विद्यार्थियों की तुलना में
7	रिपोर्ट का उपयोगकर्ता	मुख्यतः विद्यार्थी (अपने प्रदर्शन में सुधार के लिए) एवं शिक्षक (नैदानिक शिक्षण की योजना बनाने के लिए)	अन्य लोग यथा माता पिता, रोजगार प्रदाता अथवा अन्य संस्थाएं

8	रिपोर्ट का उपयोग	विद्यार्थी के प्रदर्शन में सुधार	विद्यार्थी के सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए

13.8 परीक्षण, परीक्षा एवं मापन (Test, Examination and Measurement)

परीक्षण (Test): परीक्षण वस्तुतः मापन, मूल्यांकन एवं आकलन का एक उपकरण मात्र है। परीक्षण से तात्पर्य उद्दीपकों के उस समूह से है जिसके आधार पर दिए गए अनुक्रिया मापन के लिए प्रयोग की जाती है। यह शाब्दिक हो सकता है अथवा आशाब्दिक, यह शक्ति परीक्षण हो सकता है या गति परीक्षण, यह एक वस्तुनिष्ठ परीक्षण हो सकता है या व्यक्तिनिष्ठ परीक्षण, यह एक बुद्धि परीक्षण हो, सकता है अभिक्षमता परीक्षण हो सकता है, पाठ्यक्रम आधारित परीक्षण हो सकता है या निष्पादन परीक्षण। विभिन्न मानदंडों के आधार पर इसके कई प्रकार हो सकते हैं सबका उद्देश्य एवं कार्य है मापन के लिए आधार प्रदान करना।

परीक्षा (Examination): परीक्षा का सामान्य तात्पर्य है नियंत्रित परिस्थितियों में दिए गए परीक्षण पर विद्यार्थी की अनुक्रिया रिकॉर्ड करने की एक प्रक्रिया ताकि उसके आधार पर उसका मापन , मूल्यांकन अथवा आकलन किया जा सके। इसे मापन, मूल्यांकन अथवा आकलन की प्रक्रिया के एक चरण के रूप में माना जा सकता है।

13.9 सारांश

मनोविज्ञान एवं शिक्षा में मापन मूल्यांकन एवं आकलन का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।मापन का सामान्य अर्थ है किसी गुण के साथ एक निश्चित नियम के अनुसार अंकों को जोड़ना। किसी व्यक्ति अथवा वस्तु मे कोई विशिष्ट गुण कितनी मात्रा में विद्यमान है इसकी जानकारी मापन द्वारा ही मिलती है।मापन की प्रक्रिया के तीन मुख्य अवयव हैं:उन वस्तुओं/ व्यक्तियों की उपस्थिति जिनमें किसी गुण अथवा विशेषता का मापन करना हो,आंकिक मान/संकेत एवं इकाई अथवा मात्रक। मापन के चार स्तर हैं:नामित स्तर,नामित स्तर, मापन का सरलतम रूप है जिसमें वस्तुओं अथवा घटनाओं को किसी गुण या विशेषता के आधार पर अलग-अलग समूहों में रख दिया जाता है। क्रमिक स्तर/मापनी मापन का दूसरा स्तर है जिसमे मापन मे व्यक्तियों, वस्तुओं, घटनाओं को किसी विशेष गुण अथवा लक्षण के आधार पर उच्चतम से निम्नतम के क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। अन्तराल स्तर / मापनी जो मापन का तृतीय स्तर है जिसमें इकाइयों अथवा वर्गों की दूरी अथवा अन्तर सामान होते हैं एवं अनुपात स्तर/ मापनी जो मापन का सर्वोच्च स्तर है एवं अन्य मापनीयों की तुलना में श्रेष्ठ,

उच्चस्तरीय एवं वैज्ञानिक है। अन्तराल मापनी के समस्त विशेषताओं के साथ -साथ इस मापनी में एक निरपेक्ष शून्य (Absolute Zero)बिन्दु विद्यमान रहता है ।सामान्य अर्थों में मापन को सार्थक बनाने की प्रक्रिया मूल्यांकन है । मूल्यांकन = मापन + मूल्य निर्णय (विद्यार्थी का प्राप्तांक + कक्षा में उसका स्थान) । मूल्यांकन एक सतत, व्यापक, गतिशील,सहयोगी, उद्देश्यपूर्ण, छात्र केन्द्रित प्रक्रिया है । आकलन का तात्पर्य किसी व्यक्ति या समूह के बारे में सूचना संग्रहण, विश्लेषण एवं उनका अर्थ निकालने की प्रक्रिया से है जिस से किसी व्यक्ति के बारे में अनुदेशनात्मक, निर्देशनात्मक अथवा प्रशासनिक निर्णय लिये जा सकें। यह एक उद्देश्य पूर्ण,सूचना संग्रहण,सूचनाओं का विश्लेषण,सूचना का अर्थ निकलना, एवं अनुदेशनात्मक, प्रशासनिक अथवा निर्देशनात्मक निर्णय लेने की प्रक्रिया है । आकलन विद्यार्थियों में आत्म समझ विकसित करने, विद्यार्थियों को उनकी सम्पूर्णता में समझने,विद्यार्थियों के लिए अभिप्रेरणा, अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति की जानकारी एवं उनके मूल्यांकन,आकलन प्रभावी शिक्षण अधिगम के लिए उपयुक्त शिक्षण सामग्री एवं विधि के चयन में, सम्पूर्ण शिक्षण अधिगम की गुणवत्ता को उन्नत बनाने में, छात्रों की रूचि, योग्यता एवं उनकी छुपी प्रतिभा का अध्ययन करने में, नैदानिक शिक्षण की योजना बनाने में एवं विद्यार्थियों के मार्गदर्शन एवं परामर्श में सहायक है ।

13.10 अभ्यास प्रश्न -

1 मापन के संप्रत्य को स्पष्ट कीजिए ।

2 मूल्यांकन को परिभाषित करें एवं इसकी विशेषताओं एवं आवश्यकता का वर्णन करें।

3 आकलन को परिभाषित करें एवं इसकी विशेषताओं एवं आवश्यकता का वर्णन करें।

4 मापन एवं मूल्यांकन में अंतर स्पष्ट करें ।

5 मूल्यांकन एवं आकलन में अंतर स्पष्ट करें ।

6 मापन के विभिन्न स्तरों की व्याख्या करें ।

13.11 संदर्भ ग्रंथ / अन्य अध्ययन

- Anthony J. Nitko, Susan M. Brookhart (2007) Educational Assesment of Students, Pearson Merrill Prentice Hall
- बिपिन अस्थाना (2017) अधिगम के लिए आकलन, अग्रवाल प्रकाशन

- रमण बिहारी लाला एवं सुनीता पलोड़ (2017) अधिगम के लिए आकलन , आर लाल बुक डिपो

- CBSE (2014) "रचनात्मक मूल्यांकन हेतु शिक्षक संदर्शिका" C.B.S.E.
- CIE(2016) Assessment for Learning: Cambridge International Examination
- Gardner, J., (2016) Assessment for Learning: A practicalGuide, The northern Ireland Curriculum, retrieved from http://ccea.org.uk/sites/default/files/docs/curriculum/assessment/assessment_for_learning/afl_practical_guide.pdf
- NCA (2016) Assessment for Learning Leaflet, Retrieved from http://www.ncca.ie/ga/Foilseach%C3%A1n/Foilseach%C3%A1in_Eile/Assessment_for_Learning.pdf
- NCERT (2005) National Curriculum Framework, 2005, NCERT.
- NCTE (2009) National Curriculum Framework for Teacher Education, N.C.F. 2005की रिपोर्ट.
- http://www.hkeaa.edu.hk/DocLibrary/SBA/HKDSE/Eng_DVD/doc/Afl_principles.pdf
- https://arc.duke.edu/documents/The%20difference%20between%20assessment%20and%20evaluation.pdf

****

इकाई-14 - रचनात्मक एवं योगात्मक आकलन

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 रचनात्मक आकलन
14..3.1 रचनात्मक आकलन की सामान्य विशेषताएँ
14.4 योगात्मक आकलन
14.4.1 रचनात्मक व योगात्मक आकलन में अंतर
14.5 पाठ्यचर्या आधारित मापन
14.5.1 CBM का विकास
14.5.2 CBM क्या है ?
14.5.3 परंपरागत टेस्ट और CBM में अंतर
14.5.4 CBM के कुछ उदहारण
14.6 सारांश
14.7 शब्दावली
14.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
14.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
14.10 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

शिक्षा प्रक्रिया के तीन प्रमुख आधार शिक्षण, अधिगम, तथा परीक्षा है। अगर इनमें से कोई भी एक आधार कमजोर होता है तो उसका दुष्परिणाम शिक्षा प्रक्रिया के विभिन्न पक्षों पर पड़ना स्वाभाविक ही है और परिणामतः सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था पूरी तरह से प्रभावित हो जाती है। अध्यापक के रूप में आपको अपने छात्रों की निष्पादन क्षमता का आकलन करना पड़ता है और इस कार्य के लिए परीक्षा को ही अधिक उपयोग में आने वाला साधन माना जाता है। परीक्षा वास्तव में शिक्षण अधिगन प्रक्रिया के परिणामों को जानने का एक मात्र साधन है। यद्यपि हम जानते हैं कि निष्पादन क्षमता को जांचने का यही एक मात्र तरीका नहीं है। इसके लिए कई और भी तरीके हैं जिनसे छात्रों की सही जाँच की जा सकती है। विगत कुछ वर्षों में परीक्षा तथा मूल्यांकन के क्षेत्र में अनेक नवाचारों का प्रादुर्भाव हुआ है। इनमें कुछ नवाचार अत्यंत महत्वपूर्ण हैं तथा मूल्यांकन के क्षेत्र में कार्यरत विद्वतजनों ने इनको अंगीकृत कर लिया है। मूल्यांकन के कुछ नवीन नवाचारों में मुख्यतः संरचनात्मक तथा योगात्मक मूल्यांकन, स्व आकलन, सतत एवं व्यापक मूल्यांकन,ग्रेड प्रणाली, सेमेस्टर प्रणाली आदि हैं। आशा है कि इनको अपनाने से परीक्षा व मूल्यांकन के क्षेत्र में व्याप्त दोषों को काफी सीमा तक कम किया जा सकेगा एवं छात्रों की विभिन्न योग्यताओं का मूल्यांकन अधिक वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय तथा वैध ढंग से करना संभव होगा। इस इकाई में आप मूल्यांकन के नवाचारों संरचनात्मक तथा योगात्मक मूल्यांकन तथा पाठ्यचर्या आधारित मापन(CBM) का विस्तृत अध्ययन करेंगे। अध्यापक के लिए इन नवाचारों को जानना आवश्यक है, इसलिए इस इस इकाई का विशेष महत्व है।

14.2 उद्देश्य :

- रचनात्मक आकलन को समझ सकेंगे।
- योगात्मक आकलन को समझ सकेंगे।
- रचनात्मक व योगात्मक आकलन में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।
- पाठ्यचर्या आधारित मापन (CBM) को समझकर कक्षा कक्ष में लागू कर सकेंगे।
- परंपरागत टेस्ट और CBM में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।

14.3 रचनात्मक आंकलन (Formative Assessment):

रचनात्मक आंकलन को प्रारंभिक आंकलन भी कहते हैं। यह एक ऐसा उपकरण है जो शिक्षक द्वारा विद्यार्थी की नियमित प्रगति देखने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। यदि इसे अच्छी तरह प्रयोग किया जाय तो छात्र की उपलब्धि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उसकी उपलब्धि में लगातार वृद्धि होती जाती है,जिससे उसके आत्म सम्मान में वृद्धि होती है। रचनात्मक आंकलन की दो प्रमुख विशेषताएँ होती हैं :

कारणों का पता लगाना (Diagnostic): बच्चा जब विद्यालय में प्रवेश लेता है तो वह बहुत कुछ अपने साथ लेकर आता है। शिक्षक को यह पता लगाना होता है कि बच्चे में क्या- क्या विशेषताएँ हैं, उसे किस विधि से अधिगम कराया जाय। यहाँ पर शिक्षक की भूमिका एक डाक्टर की तरह होती है इसे एक उदहारण से समझते हैं। करन कक्षा 5 का विद्यार्थी है। वह पढाई में सामान्य बच्चा है। उसे गणित विषय में परेशानी होती है। अब शिक्षक को उसकी इस कमजोरी के कारणों का पता लगाना है तो वह कई तरह की निदानात्मक परीक्षाएं लेता है। जैसे कोई मरीज डाक्टर के पास जाता है तो डाक्टर मरीज के कई टेस्ट करता है ताकि सही बीमारी का पता चल सके। शिक्षक भी कई तरह के टेस्ट लेकर छात्र की कमजोरी का पता करता है। ये टेस्ट मौखिक या लिखित हो सकते हैं। इस प्रकार शिक्षक पता लगा लेता है कि करन को गणित विषय में अभ्यास की कमी है घर पर भी उसके माता-पिता कम पढ़े लिखे हैं इसलिए वह गणित विषय में अधिक ध्यान नहीं दे पता है और इस कारण उसका उपलब्धि स्तर कम होते जाता है।

उपचारात्मक (Remedial): जिस प्रकार एक डाक्टर मरीज की बीमारी पता चलने पर इलाज शुरू कर देता है। ठीक उसी प्रकार एक शिक्षक भी छात्र की कमजोरी पता करके विभिन्न विधियों की सहायता से उसका इलाज शुरू कर देता है। जैसे- शिक्षक करन को गणित विषय में बहुत अभ्यास करने को कहता है और करन का उचित मार्गदर्शन करता है तो बहुत हद तक करन की समस्या का समाधान हो जाता है। करन न्यूनतम अधिगम स्तर तक तो कर ही लेता है। इस प्रकार शिक्षक की भूमिका एक डाक्टर की तरह होती है।

कारणों का पता लगने के पश्चात शिक्षक उपचार करता है, जिससे उसे विद्यार्थियों का पृष्ठपोषण (Feedback) मिलता रहता है और छात्र अधिगम के समय सक्रिय भागीदारी निभाते हैं। रचनात्मक आंकलन को विद्यालयों में सख्ती से लागू किया

जाता है। यह सिर्फ पेपर-पेंसिल तक ही सीमित नही है वरन इसमें दूसरे तरह की परीक्षा भी शामिल है। जैसे- क्विज, साक्षात्कार,मौखिक, दृश्य, प्रोजेक्ट, सत्रीय कार्य,प्रयोग कार्य, बातचीत, निबंध लेखन, वाद-विवाद प्रतियोगिता, आदि शामिल है।

रमेश एक बहुत होनहार शिक्षक है। वे छात्रों को व्यक्तिगत रूप से पढ़ाते हैं। अप्रैल में जब कक्षाएं आरम्भ हो जाती हैं तो वे अर्धवार्षिक परीक्षाओं तक की पूरी इकाईयां अपनी अध्यापक डायरी में लिख लेते हैं। अप्रैल और मई के महीने में केवल दो ही इकाई पढ़ाते हैं और गर्मी की छुट्टी से पहले इन दो इकाईयों का टेस्ट लेते हैं। ये टेस्ट किसी भी रूप में हो सकते हैं। कभी वे क्विज प्रतियोगिता कराते हैं कभी पेपर पेंसिल टेस्ट लेते हैं आदि आदि। इस प्रकार उन्हें छात्रों की प्रगति के बारे में- करता है और छात्र पहले से अच्छा करने की कोशिश करते हैं।

14.3.1रचनात्मक आंकलन की सामान्य विशेषताएँ :

- नैदानिक और सुधारात्मक है।
- वह प्रभावी प्रतिक्रिया के लिए प्रावधान करता है ।
- वह छात्रों के स्वयं सीखने में उनकी सक्रिय भागीदारी के लिए मंच प्रदान करता है ।
- वह शिक्षकों को आकलन के नतीजों को ध्यान में रखते हुए अध्यापन को समायोजित करने में सक्षम करता है।
- वह उस अगाध प्रभाव की पहचान करता है जो आकलन छात्रों की प्रेरणा और आत्म-सम्मान, जिनके सीखने की प्रक्रिया पर महत्वपूर्ण प्रभाव होते हैं, पर डालता है।
- वह छात्रों की स्वयं का आकलन करने और सुधार करने के तरीके को समझने में सक्षम होने की जरूरत की पहचान करता है।
- वह जो कुछ पढ़ाया जाना है उसकी परिकल्पना के लिए छात्रों के पूर्व ज्ञान और अनुभव की नींव पर विकसित होता है ।
- कैसे और क्या पढ़ाया जाना है यह तय करने के लिए सीखने की विभिन्न शैलियों को समाविष्ट करता है।
- छात्रों को वे मापदंड समझने को प्रोत्साहित करता है जिनका उपयोग उनके काम को परखने के लिए किया जाता है।

- छात्रों को प्रतिक्रिया के बाद उनके काम को सुधारने का अवसर प्रदान करता है।
- छात्रों की उनके समकक्षों की सहायता करने, और उनके द्वारा सहायता किए जाने में मदद करता है।

स्वमूल्यंकित प्रश्न भाग- 1

1. वर्तमान में अध्यापक की भूमिका ..... की तरह होती है।
2. विद्यार्थी की नियमित प्रगति देखने के लिए ..... प्रयोग में लाया जाता है।
3. रचनात्मक आकलन एक की प्रमुख विशेषता लिखिए।

14.4 संकल्पनात्मक आंकलन (Summative Assessment) या योगात्मक मूल्यांकन :

वर्ष के मध्य और अन्त में शिक्षक द्वारा जो परीक्षाएँ ली जाती हैं, उसे योगात्मक मूल्यांकन कहा जाता है। योगात्मक आंकलन को 'सीखने के आंकलन' के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार के आंकलन का प्रयोजन शिक्षक को छात्रों की उपलब्धि और कार्य प्रदर्शन की पहचान करने में सक्षम करना है, जिसमें सीखने की अवधि एक सत्र या वर्ष हो सकती है। योगात्मक आंकलन का उपयोग आम तौर पर एक छात्र की अन्य छात्रों के समक्ष तुलना करने के लिए किया जाता है ,जबकि निर्माणात्मक आंकलन का उपयोग सीखने की प्रगति के लिए किया जाता है।

योगात्मक आंकलन का उद्देश्य है :

- समय विशेष एवं विभिन्न कार्यों पर एक विद्यार्थी ने कितना निष्पादित किया है, का पता लगाना।
- अधिगम को सुगम बनाना व ग्रेड प्रदान करना।
- ऐसे विद्यार्थी का पता लगाना, जो अपने साथियों के समकक्ष सम्प्राप्ति में कठिनाई अनुभव कर रहा है।
- अगली इकाई के अनुदेशन से पूर्व प्रगति का पता लगाना।
- अगली कक्षा में बच्चों को विषय चुनने में सहायता करना।

योगात्मक आंकलन के लिए शिक्षक द्वारा विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। जैसे- प्रश्नावली, सर्वे, साक्षात्कार, अवलोकन, टेस्ट और प्रोजेक्ट। इसके लिए बाह्य परीक्षाएँ भी

होती हैं और अध्यापक द्वारा निर्मित परीक्षण रेटिंग स्केल भी प्रयोग किए जाते हैं। यद्यपि इसका प्रमुख उद्देश्य ग्रेड देना ही है, परन्तु इससे पाठ्यक्रम की प्रभाविता के बारे में निर्णय लेने में भी सहायक सूचना मिलती है।

योगात्मक आंकलन का प्रयोग प्राजेक्ट, सेमेस्टर, कार्यक्रम या वर्ष के अन्त में विद्यार्थी के अधिगम, कौशल एवं उपलब्धि की जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है। योगात्मक मूल्यांकन के लिए कुछ मानकीकृत परीक्षणों (Standardized Test) का प्रयोग किया जाता है।

14.4.1रचनात्मक आंकलन एवं संकल्पनात्मक आंकलन में अंतर :

रचनात्मक आंकलन	संकल्पनात्मक आंकलन
• निर्माणात्मक आंकलन का अभिप्राय ऐसे शैक्षिक कार्यक्रम, योज़ना प्रक्रिया या सामग्री के आंकलन से है, जिसमें आंकलन के आधार पर सुधार हो। अर्थात पढ़ाई के दौरान अधिगम कि प्रगति को जानने, समझने और सुधारने के लिए जो आंकलन किया जाता है उसे निर्माणात्मक या रचनात्मक आंकलन कहते हैं • इसका मुख्य उद्देश्य " विद्यार्थी कितना सीख रहे हैं" होता है। इससे अध्यापक व विद्यार्थी को पता चलता रहता है कि अधिगम कितना सफल या असफल रहा है। इससे छात्रों को या पता चलता है कि सफल अधिगम को कैसे सबल किया जाए और कौन सी अधिगम गलती सुधारने की आवश्यकता है।	• संकल्पनात्मक आंकलन से अभिप्राय किसी पूर्व निर्मित शैक्षिक कार्यक्रम,योजना या सामग्री की वांछनीयता ज्ञात करने की प्रक्रिया से है। अर्थात पढ़ाई के पश्चात यह मालूम करना होता है कि एक विशेष अवधि पूरी होने पर शैक्षिक उद्देश्यों को कितनी मात्रा में पूरा कर लिया गया है। • संकल्पनात्मक आंकलन को 'of learning' कहते हैं। • इसका उद्देश्य विद्यार्थी के अधिगम को अंतिम स्तर पर जांचना है और इससे यह प्रमाणित किया जाता है कि एक विशेष कार्यक्रम के पश्चात विद्यार्थी ने निर्धारित अधिगम उद्देश्यों को कितनी अच्छी तरह पूरा कर लिया है। इसका उद्देश्य ही ग्रेड देने के लिए होता है।इससे

• रचनात्मक आंकलन में किसी निर्माणाधीन कार्यक्रम,योजना प्रक्रिया, या सामग्री को अंतिम रूप देने से पूर्व उसके प्रारंभिक प्रारूप का आंकलन किया जाता है जिससे उसकी निर्माणाधीन कमियों को पूरा किया जा सके। • इस आंकलन द्वारा नवीन शिक्षण विधि,पाठ्यक्रम,सहायक सामग्री आदि में संशोधन किया जाता है । • इसमें छात्रों की मासिक परीक्षाएँ लेकर समय-समय पर उनकी उपलब्धि स्तर को जाँचा जाता है। • इससे अध्यापक और छात्रों को पृष्ठ पोषण मिलता है और वे अपने शैक्षिक प्रयासों को और अधिक व्यवस्थित करते हैं। अत: यह अल्पकालिक निर्णय लेने में महत्वपूर्ण है। • इस आंकलन से आंकलनकर्ता शिक्षा जगत की वास्तविकताओं के अधिक निकट रहता है और सामग्री या शैक्षिक कार्यक्रमों के निर्माण में सक्रिय भूमिका अदा करता है। • रचनात्मक आंकलनकर्ता शैक्षिक क्रम को निर्धारित करने वाला होता है और वह भरसक प्रयास करता है कि वह अधिगम को अच्छा बना सके। अध्यापन के दौरान छात्रों से प्रश्न पूछकर,गृहकार्य देकर तथा मासिक परीक्षाएँ लेकर हम अध्यापन की प्रभाविता के बारे में निर्णय लेने में सहायक सूचना मिलती है। • इस आंकलन में पहले से स्वीकृत कार्यक्रमों, योजनाओं या सामग्री को भविष्य में यथावत जारी रखने या उपलब्ध अनेक विकल्पात्मक सामग्री में से कोई एक सर्वाधिक उपयुक्त चयन करने की दृष्टि से किया जाता है। • इस आंकलन द्वारा विकल्पों के गुण-दोषों का आंकलन करके सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प को ज्ञात कर लेते हैं। • विगत वर्षों से चल रही प्रवेश विधि, शिक्षण विधि तथा पाठ्यक्रम को जारी रखने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । • इससे छात्रों को अगली कक्षा में प्रोन्नत किया जाता है। • इससे छात्रों की सफलता के आधार पर शिक्षण व अनुदेशन की प्रभावशीलता का आंकलन किया जाता है। अत: यह दीर्घकालीन निर्णय लेने में महत्वपूर्ण है। • इसमें आंकलनकर्ता निर्णायक का कार्य करता है वह शैक्षिक कार्यक्रम के सन्दर्भ में निस्पृह भूमिका अदा करता है।

रचनात्मक आंकलन ही करते हैं। इसका प्रमुख कार्य ही छात्र तथा अध्यापक को यह बताना है कि उनके अध्यापन व अधिगम में क्या समस्याएँ हैं और किन विधियों का द्वारा इन समस्याओं को दूर किया जा सकता है और उनके अधिगम में क्या-क्या सुधार किया जा सकता है।	• संकल्पनात्मक आंकलनकर्ता निष्पक्ष व प्रतिबद्ध व्यक्ति होता है जो शैक्षिक प्रयासों पर निर्णय देता है। इसका प्रमुख कार्य छात्रों को ग्रेड देना ही है। भविष्य में छात्र को कौन से विषय लेना चाहिए, इसकी जानकारी इसी आंकलन से मिलती है। वार्षिक परीक्षाओं के माध्यम से हम संकल्पनात्मक या योगात्मक आंकलन ही करते हैं।

डेनियल स्टुफलबीम ने अपने मूल्यांकन मॉडल CIPP को मूल्यांकन की निर्माणात्मक तथा संकल्पनात्मक भूमिकाओं से जोड़ने का प्रयास किया। उसने निर्णय लेने के लिए मूल्यांकन तथा जवाबदेही के लिए मूल्यांकन में विभेद किया। उनके अनुसार "जब मूल्यांकन निर्माणात्मक भूमिका अदा करता है तब यह पूर्व क्रियाशील होता है और इसका उद्देश्य निर्णय लेने वालों की सहायता करता है। जब मूल्यांकन संकल्पनात्मक भूमिका अदा करता है तब इसका उद्देश्य पश्चोक्रियाशील(retro-active) होता है, तब यह जवाबदेही के आधार पर कार्य करता है। इनके अंतर को इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि जब कोई रसोइया खाना चखता है तो यह रचनात्मक आंकलन है और जब कोई उपभोक्ता खाना खाता है तो यह संकल्पनात्मक आंकलन है।

स्वमूल्यंकित प्रश्न- भाग 2

1. योगात्मक आकलन को ..... के नाम से भी जाना जाता है।
2. योगात्मक आकलन में किन विधियों का प्रयोग किया जाता है ?

14.5 पाठ्यचर्या आधारित मापन (Curriculum Based Measurement) :

विद्यालयों का मुख्य उत्तरदायित्व यह है कि वे समाज के उन नागरिकों को तैयार करे जो इस समाज की नींव हैं। विद्यालय में केवल कौशलों का ही विकास नहीं होता वरन् वहाँ बच्चों के सभी कौशलों का मापन भी किया जाता है। परंपरागत शिक्षा प्रणाली में छात्रों की परीक्षा का आधार भी परम्परागत ही था। लेकिन वर्तमान में शिक्षक का कार्य छात्रों की प्रगति को निकटता से देखना है। छात्रों के बुनियादी विषय जैसे गणित,पढ़ना, और लिखने में वर्तनी की शुद्धता या अशुद्धता में कौशलों का विकास करने के लिए पाठ्यचर्या आधारित मापन का प्रयोग किया जाता है, जो छात्रों के शैक्षिक कार्यक्रम से सीधा जुड़ा होता है। शिक्षक इसे एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में प्रयोग करते हैं, जिससे अल्प एवं दीर्घकाल के लिए छात्रों की प्रगति स्तर का आकलन किया जा सके।CBM शिक्षकों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली वह विधि है, जिससे वे छात्र के बुनियादी शैक्षिक क्षेत्रों जैसे- गणित, पढ़ने, लिखने और वर्तनी में उनकी प्रगति का पता लगाते हैं। शिक्षक को यह पता चल जाता है कि प्रति सप्ताह छात्र की क्या प्रगति है? यदि छात्र की उपलब्धि शिक्षक की आशाओं के विपरीत होती है तो शिक्षक अपने अधिगम के तरीकों में परिवर्तन करता है, जिससे छात्र एक शैक्षिक सत्र में शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त कर सके। NCF(2005) के अनुसार : " स्कूली पाठ्यचर्या के तीन सुपरिचित क्षेत्रों- भाषा, गणित और सामाजिक विज्ञान में महत्वपूर्ण परिवर्तनों का सुझाव दिया गया है। इस दृष्टि से कि शिक्षा आज की और भविष्य की जरूरतों के लिए ज्यादा प्रासंगिक बन सके और बच्चों को उस दबाव से मुक्त किया जा सके जो वे आज झेल रहे हैं। यह राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज इस बात की सिफारिश करता है कि विषयों के बीच की दीवारें नीची कर दी जाएँ ताकि बच्चों को ज्ञान का समग्र आनंद मिल सके। इसके साथ ही यह भी सुझाया गया है कि पाठ्यपुस्तक और दूसरी सामग्री की बहुलता हो जिनसे स्थानीय ज्ञान और पारंपरिक कौशल शामिल हो सकते हैं और बच्चों को घर और सामुदायिक परिवेश में जीवंत सम्बन्ध बनाने वाले स्फूर्तिदायक स्कूली माहौल को सुनिश्चित किया जा सके"।

3.5.1 CBM का विकास:

1977 में डेनो और मिरकिन (Deno & Mirkin) ने DBPM (Data based Program Modification) आरम्भ किया, जिससे CBM का विकास हुआ। DBPM एक मॉडल के रूप में विशिष्ट शिक्षा के लिए प्रयोग किया गया। DBPM को विशिष्ट शिक्षक के लिए एक संसाधन के रूप में डिजाइन किया गया, ताकि वे उन बच्चों के लिए हस्तक्षेप कर सकें जो शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े थे। DBPM की वैधता विशिष्ट शिक्षा के लिए सही नहीं पायी गई।

अतः इसकी वैधता और विश्वसनीयता को सही सिद्ध करने के लिए छह वर्षों के लिए शोध और कार्यक्रम किए गए। इस शोध से एक प्रश्न सामने आया कि क्या रचनात्मक मूल्यांकन से शिक्षकों की प्रभावशीलता बढ़ाई जा सकती है ?और इस प्रकार एक तुलनात्मक अध्ययन किया गया कि शिक्षक इस प्रकार के मॉडल से अधिक प्रभावशाली हो सकते हैं।(Fuchs et,al,1984)और इस प्रकार CBM को मिनेसोटा विश्वविद्यालय में ही 1985 में स्टेन डेनो (Stan Deno) के शोध निर्देशन में प्रारंभ किया गया। इससे तीन मुख्य प्रश्न सामने आये (a) क्या मापना है ?(What to measure) (b) कैसे मापना है ?(How to measure) (c) कैसे प्रयोग करना है ? (How to use) दस वर्षों के अध्ययन के दौरान यह देखा गया कि गणित, पढ़ने, लिखने और वर्तनी के लिए छात्रों का मापन किया जा सकता है क्योंकि: (a) इसका निर्माण किया जाना आसान था। (b) यह क्रियान्वयन करने तथा आंकड़ों को प्राप्त करने के लिए सरल था। (c) पर्याप्त रूप से वैध और विश्वसनीय था।

3.5.2 CBM क्या है?

CBM शिक्षकों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली वह विधि है जिससे वे छात्र के बुनियादी शैक्षिक क्षेत्रों जैसे- गणित, पढ़ना, लिखना तथा वर्तनी में उनकी प्रगति का पता लगाते हैं। CBM अभिभावकों के लिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा उन्हें अपने बच्चे की प्रगति की जानकारी प्राप्त होती रहती है। इसके द्वारा यह भी देखा जाता है कि यदि छात्र ने शिक्षक की अपेक्षाओं से काम कार्य किया है तो वह अपने अधिगम के तरीकों में परिवर्तन करता है, जिससे वह बच्चा उसी शैक्षिक सत्र में लक्ष्यों को प्राप्त कर सके। CBM को 6 चरणों में पूरा किया जाता है :

चरण 1 – उपयुक्त टेस्ट का चयन या सृजन करना।

चरण 2 – टेस्ट को क्रियान्वित करके आंकड़ों को प्राप्त करना।

चरण 3 – आंकड़ों को ग्राफ में प्रदर्शित करना।

चरण 4 – लक्ष्यों का निर्धारण करना।

चरण 5 – अनुदेशात्मक निर्णय लेना।

चरण 6 – छात्रों की प्रगति की जानकारी लेना।

NCF (2005) " यह तथ्य कि बच्चा ज्ञान का सृजन करता है, इसका निहितार्थ है कि पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक शिक्षक को इस बात के लिए सक्षम बनाए कि वे बच्चों की प्रकृति एवं वातावरण के अनुरूप कक्षाई अनुभव आयोजित करे, ताकि सारे बच्चों को अवसर मिल सके। शिक्षण का उद्देश्य बच्चे के सीखने की सहज इच्छा और

युक्तियों को समृद्ध करना होना चाहिए। ज्ञान को सूचना से अलग करने की जरूरत है और शिक्षण को एक पेशेवर गतिविधि के रूप में पहचानने की जरूरत है न कि तथ्यों को रटने औए प्रसार के प्रशिक्षण के रूप में। सक्रिय गतिविधि के जरिए ही बच्चा अपने आसपास की दुनिया को समझने की कोशिश करता है। इसलिए प्रत्येक साधन का उपयोग इस तरह किया जाना चाहिए कि बच्चों को खुद को अभिव्यक्त करने में, वस्तुओं का इस्तेमाल करने में, अपने प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश की खोजबीन करने में और स्वस्थ रूप से विकसित होने में मदद मिले। NCF के इन्हीं उद्देश्यों को पूरा करने के लिए CBM का प्रयोग भारत में भी कक्षा कक्ष में किया जाने लगा है। इस विधि में बच्चे की प्रगति पता करने के लिए शिक्षक एक हफ्ते में एक टेस्ट लेता है, जो 1 से 5 मिनट का होता है। उस 1 से 5 मिनट में छात्र द्वारा किए गए सही और गलत उत्तरों को शिक्षक द्वारा गिना जाता है। यही छात्र के आँकड़े होते हैं। इन आंकड़ों को ग्राफ में सुरक्षित रख लिया जाता है और उस ग्राफ की तुलना छात्र से जो अपेक्षा की गई थी, उससे कर ली जाती है।

आंकड़ों को ग्राफ में सुरक्षित रखने के पश्चात अध्यापक यह निर्णय लेता है कि अनुदेशन का तरीका यही रखा जाए या इसमें कोई परिवर्तन की आवश्यकता है। परिवर्तन तभी किया जाता है जब छात्र की सीखने की गति धीमी होती है। शिक्षक कई तरह से अनुदेशन में परिवर्तन कर सकता है उदाहरण के लिए वह समय सीमा बढ़ा सकता है,शिक्षण विधियों में परिवर्तन कर सकता है या विषय वस्तु को प्रदर्शित करने के लिए सामग्री में परिवर्तन कर सकता है या समूह में किए जाने वाले कार्यों की व्यवस्था में परिवर्तन कर सकता है। उदाहरण के लिए व्यक्तिगत अनुदेशन के बजाय छोटे- छोटे समूह में अनुदेशन की व्यवस्था की जा सकती है। इस परिवर्तन के पश्चात अध्यापक फिर देखता है कि छात्र के आंकड़ों में सुधार हुआ कि नहीं। यदि नहीं तो वह फिर से शिक्षण विधियों में परिवर्तन करता है।

14.6 परंपरागत टेस्ट एवं CBM में अंतर :

परंपरागत टेस्ट	पाठ्यचर्या आधारित मापन(CBM)
• इसमें एक या दो इकाई पूरी करने के पश्चात मासिक परीक्षाएँ ली जाती हैं। • यह परीक्षा तनाव व दबाव से युक्त होती है क्योंकि छात्र को पहले से ही इस परीक्षा के बारे में बता दिया जाता है।	• इसमें एक सप्ताह में छात्र की प्रगति का आकलन किया जाता है। • इसमें छात्र को पूर्व सूचना नहीं होती है। शिक्षक कभी भी सप्ताह में छात्र की उपलब्धि के बारे में पता कर सकता है।

• इससे बुनियादी कौशलों का कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि इकाई पूरी होने के पशचात सीधे टेस्ट लिए जाते हैं। • यह बड़ी कक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण है जब छात्रों में सभी दक्षताओं का विकास हो जाता है। • यह परीक्षाएँ सामूहिक कराई जाती हैं। शिक्षक छात्र पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान नहीं दे पाता है। • इस परीक्षाओं में कमजोर और पिछड़े छात्र- छात्राएँ अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाते हैं, जिससे उनके आत्मविश्वास में कमी होती है।	• इससे छात्र के बुनियादी कौशलों का विकास होता है। जैसे- पढ़ना, लिखना,वर्तनी तथा गणित। • यह छोटी कक्षाओं (कक्षा 1 से 3) तक के छात्र-छात्राओं लिए महत्वपूर्ण है, जब छात्रों की दक्षताओं का विकास करना आवश्यक होता है। • शिक्षक छात्र पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देता है। • कमजोर और अधिगम में पिछड़े छात्र-छात्राओं के लिए महत्वपूर्ण है, जिससे उनका आत्मविश्वास बढ़ता है।

14.6.1 CBM के कुछ उदाहरण:

- **पढ़ना(Reading) : छात्र की पढ़ने के प्रवाह (reading fluency) के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए अध्यापक उसकी किताब से ही किसी भी अनुच्छेद का चयन कर लेता है। वह छात्र के साथ व्यक्तिगत रूप से बैठ जाता है और छात्र को 1 मिनट का समय देता है। उस एक मिनट में छात्र कितनी गलतियां कर रहा है,उन गलतियों को छाँटता है और सही पढ़े गए शब्दों की सूची बना लेता है। इस प्रकार अध्यापक तीन अनुच्छेदों में से पढ़े गए सही शब्दों का मध्यमान निकाल लेता है। मध्यमान के ये आँकड़े अच्छे संकेत के रूप में कार्य करते हैं, जिससे छात्र की सही पढ़ने की दर का पता चलता है। जैसे:कक्षा 2 या 3 के बच्चों की अंग्रेजी में पढ़ने के प्रवाह के बारे में पता लगाना है तो छात्र की ही किताब से कोई भी अनुच्छेद उसे दिया जाता है।**

READING	CBM

Arun is exited to go to Nainital. 7 On his way he saw many monkeys 14 He eats maize on his way also. 21 He took much enjoy in Nainital 27 His parents eat Pakora and tea. 33	Arun is *exited* to go to Nainital. On his way he saw many *monk* He eats *maize* on his way also. He took much enjoy in Nainital His *parents* eat Pakora and tea. कुल गलत पढ़े गए शब्द – 4(*exited……* जिनका उच्चारण नहीं किया गया – 2(Pako tea.) Way को may पढ़ा गया- 1 इस प्रकार 33 शब्दों में से सही शब्द पढ़े गए 1=26

शिक्षक अपने पास stop watch रख लेता है। जहाँ पर छात्र को पढ़ना नहीं आता वहाँ पर उसकी मदद करता है। जब छात्र पुनः पढ़ता है तो फिर से stop watch दबा देता है। गलत शब्द कौन से माने जाएँगे – जिनका गलत उच्चारण किया गया हो, जिन शब्दों को पढ़ने में चूक हो गई हो, सही शब्द जैसे way को may पढ़ लेना, विराम चिह्नों पर ध्यान दिए बिना पढ़ते जाना। इस प्रकार शिक्षक तीन अनुच्छेदों को पढ़वाकर मध्यमान निकाल लेता है।

Student Name -……..	Class -3		Reading level- 1B Date -……
	Correctly read words	Errors	Percent Accuracy
Story Name – Banyan Tree	40	10	80%

Nainital 79%	26	7
Two little Monkeys 82%	38	8

इन तीनों में सबसे अधिक 10 है और सबसे कम 7 है। इन दोनों के बीच 7 है। अतः शिक्षक यही मान लेता है कि छात्र 1 मिनट में 7 अशुद्धियां करता है।

- गणित(Math) : गणित में दो तरह की CBM जाँच करते हैं – एकल कौशल वर्कशीट (Single Skill Worksheet) में एक ही तरह की समस्या होती है। बहु कौशल वर्कशीट (Multi Skill Worksheet) में मिली जुली समस्याएं होती हैं। कौन सी वर्कशीट का प्रयोग किया जा रहा है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। बच्चों को यह वर्कशीट दे दी जाती है, जिसके लिए उन्हें दो मिनट का समय दिया जाता है। अधिकांशतः परंपरागत तरीके में गणित में उत्तर गलत होता है तो पूरे अंक कट लिए जाते हैं। इसके विपरीत CBM के द्वारा आंकलन करने पर उत्तर में यदि एक भी अंक (digit) सही होता है तो उसके लिए अंक प्रदान किए जाते हैं। जैसे- दो अंकों का जोड़ 13+6=19 यह पूरा सही है अतः छात्र को पूरे दो अंक मिलते हैं। 46-18=27 करता है तो उसे एक ही अंक मिलता है। क्योंकि यहाँ पर उसने 16 में से 8 घटाकर 7 लिखा है जो गलत है और 3 में से 1 घटाकर 2 लिखा है जो कि सही है। इसलिए उसे 1 ही अंक मिलता है।
- वर्तनी (Spelling): छात्र कितना सही लिख पाते हैं इसका पता लगाने के लिए अध्यापक जोर-जोर से शब्दों को पढ़ता है और छात्र सही वर्तनी लिखने की कोशिश करते हैं। अध्यापक दो मिनट में 12 से 17 शब्द लिखने के लिए दे सकता है। CBM अंकन तकनीकी के अनुसार उन्हीं शब्दों के लिए अंक दिए जाते हैं जिसमें अक्षर क्रम जोड़े के रूप में होते हैं। जैसे NEED शब्द में 4 अक्षर हैं। लेकिन मान लिया जाता है कि इसमें 5 अक्षर हैं, जो इसके आरम्भ और अन्त में हों सकते हैं। _ NEED_
  1. जब पहला काल्पनिक शब्द N के साथ जुड़ता है तो यह पहला अक्षर क्रम बनाता है।

2. N E के साथ दूसरा अक्षर क्रम बनाता है।
3. E E के साथ तीसरा अक्षर क्रम बनाता है।
4. E D के साथ चौथा अक्षर क्रम बनाता है।
5. D फिर से अन्त में काल्पनिक शब्द के साथ के साथ मिलकर जोड़ा बनाता है।

- लिखना (writing) : अध्यापक छात्रों के समक्ष कहानी आरम्भ करने के लिए शब्द देता है और एक मिनट में छात्रों को कहानी सोचनी होती है। उसके पश्चात तीन मिनट का समय उन्हें कहानी लिखने के लिए दिया जाता है। इसमें अध्यापक यह देख लेता है कि कितने शब्द कहानी में लिखे गए हैं, जितने शब्द सही होते हैं उसी के अनुसार अंक दिए जाते हैं। जैसे:

छात्र का नाम ..... कक्षा ..... दिनाँक .....
एक दिन सीमा बाज़ार जा रही थी। अचानक तूफान आ गया और वह उस तूफान में फँस गई
.....
.....
.....
.....

इसमें इस प्रकार अंक दिए जाएंगे- कुल कितने शब्द हैं ?
कितने शब्द सही लिखे हैं ?
कितने स्वर और व्यंजन हैं ?
सही क्रम में लिखे गए कितने वाक्यहैं?

CBM की विशेषताएँ:

- CBM ग्राफ से अध्यापक को यह पता चलता है कि उसने अपने लक्ष्य को कितना प्राप्त किया है और छात्र का प्रगति स्तर क्या है?
- CBM के द्वारा ही अभिभावक अपने बच्चे की प्रगति का पता कर सकते हैं और अध्यापक व अभिभावक के बीच बातें स्पष्ट हो जाती हैं।
- CBM ग्राफ को अध्यापकों व प्रशासकों के बीच सम्मलेन में प्रयोग किया जा सकता है, जिससे बच्चे की प्रगति व शिक्षक द्वारा प्रयोग किए गए विशिष्ट उपकरणों की जानकारी मिलती है।
- CBM ग्राफ का उपयोग IEP (Individualized Education Program) में भी प्रयोग किया जाता है।

- CBM वैध, विश्वसनीय और समझने में आसान होता है।
- शैक्षिक प्रक्रिया में CBM छात्रों के बारे में सही सूचना प्राप्त करने के लिए एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है, जिसे छात्र हित में निर्णय लेने के लिए प्रयोग किया जाता है।
- यह छात्रों के प्रत्यक्ष आकलन से सम्बंधित होता है।
- यह आकलन करने की तकनीकी प्रक्रिया है, जिसमें उद्देश्यों को अच्छी तरह से डिजाइन किया जाता है।
- यह कम खर्चीला है। इसका उपयोग शिक्षक आसानी से जब चाहे कर सकता है।
- इससे शिक्षकों को पढ़ाने में आसानी होती है।
- इससे एक सप्ताह में छात्रों के पढ़ने, लिखने, वर्तनी तथा गणित में सही उपलब्धि का पता चल जाता है।
- इसका मुख्य उद्देश्य अनुदेशन के समय आकलन की प्रभावशीलता को बढ़ाना है।

स्वमूल्यंकित प्रश्न भाग-3

1. CBM को .....में आरम्भ किया गया।
2. CBM से छात्र के …….. में प्रगति का पता लगाते हैं।
3. NCF-2005 के अनुसार बच्चा ज्ञान का ..... करता है।
4. CBM की दो विशेषताएँ लिखिए।

14.6 सारांश

विगत कुछ वर्षों में मूल्यांकन के क्षेत्र में कई नवाचारों का प्रयोग किया जा रहा है। जिसमें रचनात्मक व योगात्मक आकलन महत्वपूर्ण हैं। रचनात्मक आकलन विद्यार्थी की नियमित प्रगति देखने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इसकी दो प्रमुख विशेषताएँ होती हैं – बच्चे की कमजोरियों के कारणों का पता लगाना और कारणों का पता लगाकर उनका उपचार करना। इस प्रकार अध्यापक की भूमिका एक डाक्टर की तरह होती है। यह सिर्फ पेपर-पेंसिल तक ही सीमित नही है वरन इसमें दूसरे तरह की परीक्षा भी शामिल है। जैसे- क्विज, साक्षात्कार,मौखिक, दृश्य, प्रोजेक्ट, सत्रीय कार्य,प्रयोग कार्य, बातचीत, निबंध लेखन, वाद-विवाद प्रतियोगिता, आदि शामिल है। योगात्मक आंकलन का प्रयोग प्राजेक्ट, सेमेस्टर,

कार्यक्रम या वर्ष के अन्त में विद्यार्थी के अधिगम, कौशल एवं उपलब्धि की जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है । योगात्मक मूल्यांकन के लिए कुछ मानकीकृत परीक्षणों (Standardized Test) का प्रयोग किया जाता है । छात्र कक्षा में कितना सीख रहा है ? वे बुनियादी क्षेत्र में कितना सीख रहे हैं ? इन्हीं क्षेत्रों में छात्र की प्रगति का पता लगाने के लिए 1985 में स्टेन डेनो ने पाठ्यचर्या आधारित मूल्यांकन का विकास किया । छात्र के बुनियादी क्षेत्र हैं – गणित, पढ़ना, लिखना, तथा वर्तनी । इस विधि में बच्चे की प्रगति पता करने के लिए शिक्षक एक हफ्ते में एक टेस्ट लेता है, जो 1 से 5 मिनट का होता है। उस 1 से 5 मिनट में छात्र द्वारा किए गए सही और गलत उत्तरों को शिक्षक द्वारा गिना जाता है। यही छात्र के आँकड़े होते हैं। इन आंकड़ों को ग्राफ में सुरक्षित रख लिया जाता है और उस ग्राफ की तुलना छात्र से जो अपेक्षा की गई थी, उससे कर ली जाती है। यह कमजोर और अधिगम में पिछड़े छात्र- छात्राओं के लिए महत्वपूर्ण है, जिससे उनका आत्मविश्वास बढ़ता है ।

14.7 शब्दावली

कारणों का पता लगाना (Diagnostic) : जैसे एक डाक्टर मरीज की बीमारी को 'diagnos' करता है, उसी प्रकार अध्यापक छात्र की विषय में कमजोरी का पता लगते हैं ।

उपचारात्मक (Remedial): डाक्टर मरीज की बीमारी को 'diagnos' करके उसी के अनुसार इलाज करता है, उसी प्रकार अध्यापक भी छात्र की विषय में कमजोरी को पहचान कर अनेक विधियों द्वारा उसकी विषयगत कमजोरी को दूर करने का प्रयास करता है ।

CBM: CBM शिक्षकों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली वह विधि है जिससे वे छात्र के बुनियादी शैक्षिक क्षेत्रों जैसे- गणित, पढ़ना, लिखना तथा वर्तनी में उनकी प्रगति का पता लगाते हैं । ।

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

भाग 1 :

1. मार्गदर्शक
2. रचनात्मक आकलन
3. रचनात्मक आकलन छात्रों की स्वयं का आकलन करने और सुधार करने के तरीके को समझने में सक्षम होने की जरूरत की पहचान करता है।

भाग 2 :

1. सीखने के आकलन

2. योगात्मक आकलन में विभिन्न विधियों जैसे- प्रश्नावली, सर्वे, साक्षात्कार, अवलोकन, टेस्ट और प्रोजेक्ट का प्रयोग किया जाता है।
3. 15-35 आयु वर्ग के करीब 8 करोड़ लोगों तक प्रयोजन मूलक साक्षरता पहुँचाना।
4. उत्तम विद्यालयों (quality schools)

भाग 3 :

1. 1985
2. बुनियादी शैक्षिक क्षेत्रों
3. सृजन
4. CBM की दो विशेषताएँ :

- शैक्षिक प्रक्रिया में CBM छात्रों के बारे में सही सूचना प्राप्त करने के लिए एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है, जिसे छात्र हित में निर्णय लेने के लिए प्रयोग किया जाता है।
- यह छात्रों के प्रत्यक्ष आकलन से सम्बंधित होता है।

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- गुप्ता,अल्का,गुप्ता, बी.एस.पी, दूरस्थ शिक्षा, शारदा पुस्तक भंडार, इलाहाबाद।
- IGNOU, ES – 333,शैक्षिक मूल्यांकन,अध्यापन अधिगम प्रक्रिया में मूल्यांकन
- www.google.com- Assessment: formative & summative, curriculum based Measurment.
- Singh, Pritam, (1989): Hamdbook of Pupil Evaluation, Allied Publishers, New Delhi
- Remmers,H.H.(et.al) (1967): A Practical Introduction to Measurment and Evaluation Universal Bookstall, Delhi

14.10 निबंधात्मक प्रश्न

1 रचनात्मक आकलन से आप क्या समझते हैं? उदहारण सहित लिखिए ।रचनात्मक आकलन की विशेषताएँ लिखिए

2 रचनात्मक व योगात्मक आकलन में अंतर स्पष्ट कीजिए।

3 पाठ्यचर्या आधारित मापन क्या है? उदाहरण द्वारा विस्तार से समझाइये।

4 पाठ्यचर्या आधारित मापन की विशेषताओं को लिखिए तथा परंपरागतम टेस्ट एवं CBM में अंतर स्पष्ट कीजिए।

इकाई-15 - विद्यालयी मूल्यांकन में मूल संप्रत्ययों की पुनः चर्चा:अधिगमकर्ताओं की छंटनी, अंक, क्रेडिट, ग्रेडिंग, पसंद, वैकल्पिक प्रमाणन, पारदर्शिता, आंतरिक-बाह्य अनुपात, सुधार हेतु विकल्प

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 विद्यालय मूल्यांकन की अवधारणा

15.4 मूल्यांकन के उद्देश्य

15.5 अधिगमकर्ताओं की छंटनी

15.6 मूल्यांकन में अंकन प्रणाली

15.7 क्रेडिट व्यवस्था

15.8 ग्रेडिंग व्यवस्था

15.9 वैकल्पिक प्रमाणन

15.10 पारदर्शिता

15.11 आंतरिक बाह्य अनुपात

15.12 सुधार हेतु विकल्प

15.13 प्रासंगिक शब्दावली की व्याख्या

15.14 सारांश

15.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.16 संदर्भ ग्रंथ व कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.17 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

मूल्यांकन शिक्षा का अभिन्न अंग है जिसके अंतर्गत विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं की पहचान कर उनकी शैक्षिक उपलब्धि की गुणवत्ता के संबंध में निर्णय लिया जाता है। विद्यालयी व्यवस्था में मूल्यांकन प्रशासनिक कार्यों एवं निर्देशन संबंधी कार्यों में भी शैक्षिक प्रशासकों एवं शिक्षकों की सहायता करता है। शिक्षक को यह जानना जरूरी होता है कि उसने पूर्व में निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति कर ली है या नहीं? उसके द्वारा प्रदान किए गए अधिगम अनुभव किस हद तक प्रभावशाली रहे हैं? इससे शिक्षक को आगामी शिक्षण योजना बनाने में काफी मदद मिलती है। विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रगति में मूल्यांकन की अहम भूमिका होती है। विभिन्न परीक्षणों में अपेक्षित परिणाम न मिलने की स्थिति में विद्यार्थियों को सफल अधिगम हेतु अभिप्रेरित व उत्साहित करना भी मूल्यांकन प्रक्रिया का हिस्सा है। विद्यार्थियों को अगली कक्षाओं में भेजने का महत्वपूर्ण निर्णय भी मूल्यांकन के द्वारा ही लिया जाता है।

व्यक्तियों की विशेष अभिरुचियों, योग्यताओं व कमजोरियों को जानकर उन्हें शैक्षिक तथा व्यवसायिक निर्देशन के कार्य में भी विद्यालयी मूल्यांकन की मुख्य भूमिका होती है। उपयुक्त पाठ्यक्रम अथवा उपयुक्त रोजगार का चयन करने तथा भावी सफलता का पूर्व आंकलन करने के लिए विद्यार्थियों के संबंध में आवश्यक यह सूचनाएँ विद्यालयी मूल्यांकन से ही प्राप्त हो सकता है। अत: इस आधार पर हम कह सकते है कि किसी भी विद्यालय से जुड़ी सभी प्रकार की प्रक्रियाओं का सुचारु तथा सफल होना काफी हद तक मूल्यांकन कार्य पर आश्रित है।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

1. विद्यालयी मूल्यांकन की अवधारणा स्पष्ट कर सकेंगे।

2. विद्यालयी मूल्यांकन की प्रक्रिया की व्याख्या कर सकेंगे।
3. विद्यालय स्तर पर मूल्यांकन के उद्देश्यों को बता सकेंगे।
4. अधिगमकर्ताओं की छंटनी के तरीकों की व्याख्या कर सकेंगे।
5. मूल्यांकन में अंकन प्रणाली की भूमिका पर प्रकाश डाल सकेंगे।
6. क्रेडिट एवं ग्रेडिंग व्यवस्था की आवश्यकता स्पष्ट कर सकेंगे।
7. वैकल्पिक प्रमाणन के उपायों पर चर्चा कर सकेंगे।
8. मूल्यांकन में पारदर्शिता कैसे लायी जाए? कुछ सुझाव प्रस्तुत कर सकेंगे।
9. मूल्यांकन में आंतरिक- बाह्य अनुपात किस प्रकार हो ? यह बता सकेंगे।
10. मूल्यांकन प्रणाली में 'सुधार हेतु विकल्प' संबंधी अवधारणा स्पष्ट कर सकेंगे।
11. विद्यालयी मूल्यांकन से जुड़े सम्प्रत्यों को उदाहरण सहित स्पष्ट कर सकेंगे।

15.3 विद्यालय मूल्यांकन की अवधारणा

मूल्यांकन शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन से तात्पर्य विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि की गुणवत्ता का निर्धारण करने से है। मूल्यांकन प्रक्रिया यह बताती है कि निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुई है? कक्षा में दिए गए अधिगम अनुभव कितने प्रभावशाली रहे हैं मूल्यांकन लगातार चलने वाली प्रक्रिया है, यह मूल्य निर्धारण में विद्यार्थियों के शैक्षिक स्तर तथा उपलब्धियों को जानने में सहायक होता है। नये उद्देश्यों को तय करने में, अधिगम अनुभवों को प्रस्तुत करने और विद्यार्थियों की संप्राप्ति की जांच में मूल्यांकन योगदान देता है। इसके अतिरिक्त शिक्षण और पाठ्य विवरण सुधारने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मूल्यांकन शिक्षक को सही दिशा में बढ़ने मे सहायक होता है। आप सभी अवगत हैं कि शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में जो विभिन्न क्रियाएँ होती है वो इस प्रकार हैं –

1. कक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित करना।
2. उद्देश्यों के अनुरूप अधिगम अनुभवों की तैयारी निश्चित करना।
3. विद्यार्थियों की अधिगम अनुभवों की कठिनाइयों का पता करना।
4. विशिष्ट कार्यकलाप के लिए कक्षा में विभिन्न वर्ग बनाना।
5. समायोजन की समस्याओं के निराकरण में विद्यार्थियों की मदद करना।
6. विद्यार्थी की प्रगति रिपोर्ट तैयार करना।

प्रभावशाली ढंग से निर्णय लेने में मूल्यांकन की आवश्यकता पड़ती है । उदाहरणस्वरूप एक पूरे समूह के विद्यार्थियों को कई श्रेणियों अथवा वर्गों में बाटना हो तो उनकी उपलब्धि का मूल्यांकन और उसका प्रभाव मालूम करना होगा । अध्यापन-अधिगम की परिस्थिति में मूल्यांकन की आवश्यकता इतनी अधिक अनुभव की जाती है कि तुरंत ही एक योजना बद्ध व क्रमबद्ध मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। मूल्यांकन शिक्षक को सही दिशा में कदम बढ़ाने मे सहायक होता है।

अभ्यास प्रश्न

1.3.1 विद्यालय स्तर पर मूल्यांकन से आपका क्या तात्पर्य है?

15.4 मूल्यांकन का उद्देश्य

मूल्यांकन मूल्य निर्धारण की एक प्रक्रिया है। मूल्यांकन प्रक्रिया अधिक व्यापक है । मूल्यांकन के अंतर्गत व्यक्ति या वस्तु के गुणों अथवा विशेषताओं की उपयोगिता पर दृष्टि डालते है । मूल्यांकन एक ऐसा कार्य अथवा प्रक्रिया है जिसमें मापन से प्राप्त परिणामों की वांछनीयता का निर्णय किया जाता है। शैक्षिक मूल्यांकन के प्रमुख उद्देश्य संक्षेप में इस प्रकार है –

(1) विद्यार्थियों द्वारा अर्जित ज्ञान की जांच करना।

(2) विद्यार्थियों की वृद्धि तथा विकास में उत्पन्न नकारात्मक कारणों की पहचान करना ।

(3) विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रगति के बाधक तत्वों को जानना।

(4) विद्यार्थियों की कमियों व कठिनाईयों को जानना व उसका निवारण करना।

(5) विद्यार्थियों को अधिगम के लिए प्रेरित करना।

(6) अध्यापकों की शिक्षण प्रभावशीलता का पता लगाना।

(7) विद्यालयों की कक्षा शिक्षण एवं पाठ्यक्रम में सुधार के लिए आधार तैयार करना।

(8) विद्यार्थियों के शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन के लिये नीव तैयार करना है।

(9) विद्यार्थियों का योग्यता-आधारित वर्गीकरण करना तथा शैक्षिक मानकों का निर्धारण करना है।

अभ्यास प्रश्न

1.4.1 विद्यालय स्तर पर मूल्यांकन के क्या उद्देश्य हैं? स्पष्ट कीजिए।

15.5 अधिगमकर्ताओं की छंटनी

कक्षा शिक्षण सफल एवं सुचारु से चल रहा है या नहीं, कक्षा शिक्षण के पश्चात अध्यापक का इस विषय में आकलन करना प्रमुख उत्तरदायित्व है। सर्वप्रथम शिक्षक पढ़ाये जाने वाले विषयों से संबन्धित शैक्षिक उद्देश्य का निर्माण करता है तत्पश्चात उसके द्वारा बनाए गये उद्देश्यों को पूरा करने के लिए शिक्षण कार्य करता है जिसमे वह विभिन्न शिक्षण विधियों तथा शिक्षण सहायक सामग्री के प्रयोग द्वारा विद्यार्थियों को विषय के बारें में व्यावहारिक एवं सम्पूर्ण जानकारी प्रदान करता है। शिक्षण कार्य पूरा करने के उपरांत शिक्षक की चिंता विद्यार्थियों का मूल्यांकन करने की रहती है, जिससे कि शिक्षक को विद्यार्थियों के अधिगम स्तर का पता चलता है कि कौन से छात्रो को विषय से संबन्धित सभी प्रकरण समझ में आ गया और किन छात्रों को समझ में नहीं आया इस बात की प्रतिपुष्टि मूल्यांकन द्वारा मिलती है। मूल्यांकन हेतु शिक्षक, शिक्षण उद्देश्यों से संबन्धित विषय ज्ञान की जांच के लिए परीक्षण का निर्माण करता है तत्पश्चात इस परीक्षण को कक्षा में विद्यार्थियों पर प्रशासित करता है। प्रशासित परीक्षण पूरा होने के पश्चात अध्यापक परीक्षण पुस्तिकाएं विद्यार्थियों से एकत्रित कर लेता है तथा इन परीक्षण पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करता है। मूल्यांकन करने के पश्चात शिक्षक विद्यार्थियों का परीक्षण में संप्राप्ति के आधार पर विद्यार्थियों की छटनी उच्च प्राप्तांक वाले , निम्न प्राप्तांक वाले तथा औसत प्राप्तांक वाले विद्यार्थियों के रूप में करता है। इसके उपरांत शिक्षक निम्न प्राप्तांक वाले विद्यार्थियों के लिए नैदानिक कक्षाओं की व्यवस्था भी करता है। नैदानिक कक्षाओं में इन विद्यार्थियों की विषयवस्तु से संबन्धित कठिनाइयों एवं समस्याओं की पहिचान कर उनके निदान हेतु प्रयास करता है अर्थात विषय से संबन्धित जिन प्रकरणों को समझने में कठिनाई हो रही है उन्हें दूसरे तरीके से समझाना तथा पुनः प्रतिपुष्टि प्राप्त करना। जिससे यह ज्ञात हो जाए कि विद्यार्थी की समस्या का समाधान हो पाया है या नहीं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो यह सीखने की उचित विधि है जिसमें विद्यार्थी को अपने गति से सीखने का अवसर प्राप्त होता है। इस प्रकार का मूल्यांकन कार्य शिक्षक को भी शिक्षण कार्य में सहायता प्रदान करता है साथ ही साथ विद्यार्थियों के व्यक्तिगत विभिन्नता, उम्र, बुद्धिलब्धि, रुचि, अवधान का भी ध्यान रखता है।

विद्यार्थियों की छटनी का एक उद्देश्य प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की पहचान कर उनके लिए संवर्धित शिक्षण कार्यक्रम तैयार करना होता है जिसमें व्याख्या के स्तर एवं उदाहरणों की प्रकृति में कठिनाई का स्तर बढ़ाया जाता है। विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की पहचान उनके उपलब्धि प्राप्तकों के अनुसार उन्हें संबन्धित श्रेणी में रखकर

उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षण योजना तैयार की जाती है। निम्न प्राप्तांक वाले विद्यार्थियों के लिए उपचारात्मक शिक्षण की भी व्यवस्था की जा सकती है।

अभ्यास प्रश्न

1.5.1 अधिगमकर्ताओं की छंटनी क्यों की जाती है? चर्चा कीजिए।

15.6 मूल्यांकन में अंकन प्रणाली (Mark System in Evaluation)

विभिन्न विषयों में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि मापने के लिए विद्यार्थियों के द्वारा परीक्षा में दिए गए उत्तरों के लिए परीक्षकों के द्वारा अंक प्रदान करने की विधि अधिक प्रचिलित है। जिसमें समान्यत: 101 बिन्दु अंकन प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। अर्थात विद्यार्थियों को शून्य से सौ तक के कुल 101 प्राप्तांकों मे से कोई एक अंक प्रदान किया जाता है । प्राचीन अंकन प्रणाली मे छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि की संख्यात्मक अभिव्यक्ति हेतु शून्य से लेकर 100 मे से कोई एक अंक प्रदान कर 101 समूहों में बांटते है अर्थात 101 बिन्दु मापनी का प्रयोग किया जाता है। इसके साथ-2 छात्रों को प्रथम, द्वितीय या तृतीय श्रेणी देने तथा अनुतीर्ण घोषित करने के लिए पूर्व निर्धारित विभाजन बिन्दुओं का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए वर्तमान परीक्षा प्रणाली में 59.75 % अंक पाने वाले विद्यार्थियों को द्वितीय श्रेणी तथा 60% अंक पाने वाले विद्यार्थियों को प्रथम श्रेणी दी जाती है । अंकन प्रणाली की दो कमियाँ है – प्रथम, मूल्यांकनकर्ता के निर्णय मे जरा सी चूक होने पर कभी-2 एक या दो अंक के कारण छात्र की श्रेणी अथवा उत्तीर्ण अथवा अनुतीर्ण की स्थिति बदल सकती है अर्थात एक या दो अंक के इस मामूली अंतर से द्वितीय श्रेणी वाला छात्र, प्रथम श्रेणी तथा प्रथम श्रेणी वाला छात्र द्वितीय श्रेणी पा सकता है। इसी प्रकार के जरा से अंतर से कोई भी विद्यार्थी उत्तीर्ण या अनुतीर्ण भी हो सकता है। यदि व्यक्ति की योग्यता को अंक प्रदान करने का कोई वस्तुनिष्ठ उपकरण होता तो इस विधि को विश्वसनीय एवं वैध माना जा सकता था परंतु ऐसा नही है। परीक्षक द्वारा प्रदान किए गए अंक विद्यार्थी की वास्तविक योग्यता का प्रतिनिधित्व नहीं करते है अर्थात परिक्षक द्वारा प्रदान किए गए अंकों मे व्यक्तिनिष्ठता हो सकती है इसी कारण विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को इतनी यथार्थ तथा असंदिग्ध ढंग से नहीं मापा जा सकता है। द्वितीय, विभिन्न विषयों के छात्रों के शैक्षिक उपलब्धि के मूल्यांकन के मानदंडों में विभिन्नताओं का होना कुछ विषयों में मूल्यांकनकर्ता के द्वारा कम अंक प्रदान किए जाते है और कुछ विषयों मे पूर्णांक तक प्रदान किया जाता है

। उदाहरण के लिए गणित या विज्ञान जैसे विषयों में प्रायः 0 से 100 तक के पूर्ण प्रसार में मूल्यांकनकर्ता द्वारा प्राप्तांक प्रदान किए जाते हैं। जबकि भाषा या इतिहास जैसे विषयों में प्रसार प्रायः प्राप्तांक 100 या पूर्णांक से काफी कम होता है। मूल्यांकनकर्ता के द्वारा प्राप्तांकों की न्यूनतम व उच्चतम सीमाओं तथा प्रसार के निर्धारण में उनकी व्यक्तिगत पसंद के साथ-साथ विषय की प्रकृति की भी अवांछित भूमिका रहती है। ऐसी स्थिति में विभिन्न विषयों के प्राप्तांकों का योग करके श्रेणी ज्ञात करने की प्राचीन विधि का कोई वैज्ञानिक आधार प्रतीत नहीं होता है।

अभ्यास प्रश्न

1.6.1 मूल्यांकन में अंकन प्रणाली की क्या सीमाएँ हैं?

15.7 क्रेडिट व्यवस्था (Credit System)

अकादमिक क्रेडिट व्यवस्था विद्यार्थियों की प्रगति का आकलन उनकी शिक्षा के दौरान करता है। विद्यार्थियों को पूर्ण कालिक विद्यार्थी स्थिति का हकदार होने के लिए उन्हे इसी क्रम में कुछ निश्चित संख्याओं के क्रेडिट प्राप्त करना पड़ता है। प्रत्येक कोर्स कुछ निश्चित संख्या के क्रेडिट अंको का होता है जो कि विभिन्न मानदंडों पर आधारित होता है जैसे विद्यार्थियों का कार्यभार, अधिगम परिणाम तथा संपर्क घंटे। जिस कोर्स में विद्यार्थी को जितना अधिक कार्य और प्रयास करने की आवश्यकता होती है वह कोर्स उतना ही अधिक क्रेडिट्स के लायक होता है।

अकादमिक क्रेडिट अध्ययन माडुल को सफलतापूर्वक पूरा करके या व्यक्तिगत अध्ययन कोर्स को पूरा करके प्राप्त हो सकता है जो कि विश्वविद्यालय संबंधी नीतियों पर निर्भर करता है। विद्यार्थियों को अवार्ड जैसे डिग्रियाँ तभी मिलती है जब वे निश्चित अंकों के क्रेडिट प्राप्त कर लेते है। कुछ देशों में क्रेडिट स्थानांतरण तथा संग्रह पर एक मत नहीं है तथा संस्थाओं के बीच व्यवस्थाओं में बहुत भिन्नता है।

क्रेडिट प्रणाली के कुछ लाभ :

1. क्रेडिट प्रणाली से विद्यार्थी प्रक्रिया की जानकारी द्वारा यह निश्चय करना आसान हो जाता है कि कब वह विशिष्ट अकादमिक डिग्री प्राप्त करने की आवश्यकताओं को पूरा कर ले रहा है।

2. क्रेडिट प्रणाली से एक कार्यक्रम के कार्यभार के अच्छे आकलन का प्रस्ताव प्राप्त होता है तथा किस प्रकार इसे विभिन्न उच्च शिक्षा गतिविधियों में बांटे इसका भी ज्ञान प्राप्त होता है।
3. कुछ क्रेडिट व्यवस्थाएँ विद्यार्थियों को एक कार्यक्रम से दूसरे कार्यक्रम में क्रेडिट अंक को स्थानांतरित करने की अनुमति देती है तथा पूर्व में अर्जित क्रेडिट अंक को भी भविष्य में डिग्री प्रदान करने हेतु गणना की जाती है।
4. यदि एक विद्यार्थी किसी अध्ययन कार्यक्रम में स्नातक की डिग्री प्राप्त नहीं कर सका है किन्तु वह एक उपयुक्त नौकरी खोजना चाहता है ऐसी स्थिति में उसके द्वारा अर्जित किए गए क्रेडिट अंक पूर्व अध्ययन के प्रमाण के रूप में नियोक्ता के समक्ष प्रस्तुत किए जा सकते है।
5. कुछ विश्वविद्यालय अकादमिक अध्ययन क्रेडिट्स का उपयोग कार्यक्रम के शुल्क को तय करने में करते है।

अभ्यास प्रश्न

1.1.1 मूल्यांकन में क्रेडिट व्यवस्था से क्या लाभ हैं?

15.8 ग्रेडिंग व्यवस्था (Grading System)

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) तथा शिक्षा आयोग (1964-66) ने अंको के स्थान पर ग्रेड का उपयोग करने का सुझाव दशकों पूर्व दिया था। परीक्षा सुधार पर शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय के कार्यदल ने भी सन 1971 में अंकों के स्थान पर ग्रेड प्रदान करने का सुझाव दिया था। सन 1975 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT) के द्वारा भी ग्रेड प्रणाली प्रयोग की सिफ़ारिश की गयी है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) के द्वारा प्रकाशित "परीक्षा सुधार : एक कार्य योजना" (Examination Reforms: A Plan of Action) नामक प्रतिवेदन में भी ग्रेड को स्वीकार करने का समर्थन किया गया है। नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की क्रियान्वयन योजना में भी विश्वविद्यालय स्तर पर ग्रेड प्रणाली को स्वीकार करने की बात कही गयी है।

अंक प्रणाली के स्थान पर ग्रेड प्रणाली को अपनाने के प्रस्ताव में मूलभूत मान्यता यह है कि छात्रों को उनकी शैक्षिक योग्यता के आधार पर 101 समूहों मे विभाजित करना व्यावहारिक दृष्टि से संभव नहीं है । अंक प्रदान करने का कोई पर्याप्त, वैध, वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय तथा सार्थक आधार उपलब्ध नहीं है तथा परीक्षकों में भी इतनी क्षमता नहीं होती है कि वे छात्रों को 101 समूहों में त्रुटिरहित ढंग से बाँट सकें । परीक्षक अधिक से अधिक छात्रों को कुछ सीमित संख्या वाली गुणात्मक श्रेणियों आदि में सफलतापूर्वक विभाजित कर सकते है । इन गुणात्मक श्रेणियों को ही ग्रेड श्रेणी कहा जाता है । इन श्रेणियों को संकेताक्षर जैसे ए (A), बी (B), सी (C), डी (D), ई (E) तथा एफ (F) आदि से अथवा संकेतांक जैसे 0, 1, 2, 3, 4 आदि से प्रदर्शित करते है । इन ए, बी, सी, डी, ई तथा एफ आदि अक्षरों को अथवा 0, 1, 2, 3, 4 आदि बिन्दुओं को ही ग्रेड कहा जाता है । अर्थात अंक प्रणाली के विपरीत ग्रेड प्रणाली वास्तव में छात्रों को कुछ गुणात्मक श्रेणियों में बांटती है । परीक्षा सुधार के क्षेत्र में कार्यरत विशेषज्ञों का मानना था कि अंकन वर्गों की संख्या को कम कर के अंकन की त्रुटियों को काफी सीमा तक समाप्त किया जा सकता है । अमेरिका आदि विकसित देशों में तो काफी समय से ग्रेड प्रणाली का प्रयोग किया जा रहा है। भारत मे भी कुछ प्रगतिशील संस्थाओं में ग्रेड प्रणाली का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया गया है किन्तु ग्रेड की संख्या पर कोई सर्वसम्मत निर्णय नहीं हो पाया है अर्थात कुछ विद्वान 5 बिन्दु ग्रेड प्रणाली को, तथा कुछ 7 तथा कुछ विद्वान 9 बिन्दु ग्रेड प्रणाली को उचित ठहराते है । सैद्धांतिक दृष्टि से ग्रेड प्रणाली में कितने भी बिन्दु हो सकते है ।

यू० जी० सी० (UGC) के द्वारा 1975-1976 में ग्रेड प्रणाली पर आयोजित की गयी क्षेत्रीय कार्यशालाओं में 7 बिन्दु ग्रेड प्रणाली को अपनाए जाने पर आम सहमति थी क्योंकि इससे मूल्यांकन में आवश्यक परिमार्जन रहेगा तथा किसी भी ग्रेड के अंदर बहुत अधिक विभिन्नताएँ नहीं होगी । प्राप्तांकों को ग्रेड में बदलने के लिए प्राप्तांकों के विवरण को सामान्य प्रायिकता वक्र (NPC) के आधार पर 7 भागों में विभाजित करके उन्हे ग्रेड प्रदान किया जा सकता है ।

ग्रेड प्रणाली के लाभ –

1. विभिन्न परीक्षा संस्थाओं या विश्वविद्यालयों के द्वारा घोषित छात्रों के परिणामों की तुलना करने की दृष्टि से ग्रेड प्रणाली अत्यधिक उपयोगी है ।
2. ग्रेड प्रणाली की सहायता से छात्रों का मूल्यांकन अधिक विश्वसनीय ढंग से हो सकता है । अतः ग्रेड प्रणाली की सहायता से परीक्षा परिणामों की विश्वसनीयता को बढ़ाता है ।

3. छात्रों की अभिरुचि तथा योग्यता के आधार पर भावी पाठ्यक्रम के चयन करने की दृष्टि से ग्रेड प्रणाली अधिक उपयुक्त तथा वैज्ञानिक है।

अभ्यास प्रश्न

1.8.1 ग्रेडिंग की क्यों आवश्यकता है?

15.9 वैकल्पिक प्रमाणन (Alternate Certification)

विद्यालयी मूल्यांकन में वैकल्पिक प्रमाणन से तात्यपर्य विद्यार्थियों के उपलब्धियों को प्रमाणित करने के लिए गैर परंपरागत तरीकों /सूचकों के प्रयोग से है। परंपरागत तरीकों के अंतर्गत मूल्यांकनकर्ता विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों के लिए निर्धारित प्रश्नों पर दिये गए उत्तरों की जांच करता है और इस आधार पर उसकी योग्यता को आंकिक रूप में प्रस्तुत कर समूह में उसकी स्थिति/क्रम को बताता है एवं पूर्व निर्धारित कसौटियों के आधार पर उसकी उपलब्धि को प्रथम, द्वितीय , तृतीय श्रेणी , उत्तीर्ण एवं अनुतीर्ण श्रेणियों में बाटता है। विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धि समूह के औसत प्रदर्शन द्वारा निर्धारित मानक से तुलना करके ज्ञात की जाती है। विद्यार्थी समूह में औसत से ऊपर है या नीचे है तथा पदानुक्रम में किस क्रम में है अर्थात विद्यार्थी की सापेक्षिक स्थिति ज्ञात की जाती है।

राबर्ट ग्लेजर (1963) ने अपने लेख के माध्यम से शिक्षाशास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों का ध्यान उन कमियों की ओर आकर्षित किया जो परंपरागत मापन के प्रत्ययों को नवीन अभिक्रमित अनुदेशन तकनीकों से संबन्धित परिस्थितियों में लागू करने से हो रही थी। उन्होने अपने लेख में प्रचलित मानक संदर्भित मापन के विकल्प के रूप में निकष संदर्भित मापन के प्रत्यय को प्रस्तुत किया और कहा कि मानक संदर्भित मापन की सहायता से किसी विद्यार्थी की अन्य विद्यार्थियों से सापेक्षिक स्थिति ज्ञात की जाती है जबकि निकष संदर्भित मापन में विद्यार्थी की निरपेक्ष स्थिति का वर्णन किया जाता है। पाठ्य वस्तु संदर्भित मापन (Content Referenced Measurement), उद्देश्य संदर्भित मापन (Objective Referenced Measurement) तथा क्षेत्र संदर्भित मापन (Domain Referenced Measurement) जैसे नामों का प्रयोग भी निकष संदर्भित मापन के लिए किया जाता है।

वैकल्पिक प्रमाणन विदेशों में शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम के अंत में शिक्षण योग्यता का प्रमाण पत्र प्रदान करने का एक गैर-परंपरागत रास्ता है। शिक्षकों की कमी को पूरा करने के उद्देश्य से शिक्षा शास्त्र विषय से इतर विषय से स्नातक किए हुए इच्छुक विद्यार्थियों को अवसर देकर लघु प्रशिक्षण देकर शिक्षण का लाइसेन्स/प्रमाणपत्र देना

वैकल्पिक प्रमाणन का उदाहरण है। ऐसे विद्यार्थी शिक्षण व्यवसाय में रहते हुए भी दूरस्थ विधि या ऑनलाइन विधि से ऐसे टीचिंग सर्टिफिकेट कोर्स कर सकते हैं। इस कोर्स के अंतर्गत उनमें किसी विशेष शिक्षा स्तर के लिए आवश्यक शिक्षण कौशलों एवं ज्ञान में निपुण बनाने हेतु कोर्स वर्क, शिक्षण अनुभव, मानकीकृत परीक्षण की व्यवस्था होती है। उत्तर प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा पिछले सालों में शिक्षकों की भारी कमी को दूर करने हेतु बीएड डिग्री किए हुए विद्यार्थियों को प्राथमिक शिक्षक बनने का मौका देकर उनको छः माह का विशिष्ट बी.टी.सी का प्रशिक्षण देकर बेसिक शिक्षण प्रमाण पत्र प्रदान करना वैकल्पिक प्रमाणन का उपयुक्त उदाहरण है। इसमें राज्य सरकार द्वारा तैयार किया गया 'विशिष्ट बीटीसी प्रशिक्षण कार्यक्रम' माध्यमिक स्तर के लिए प्रशिक्षित(बीएड डिग्री धारी) अभ्यर्थियों को प्राथमिक शिक्षक बनने का अवसर प्रदान करता है। 'विशिष्ट बीटीसी प्रशिक्षण कार्यक्रम' हेतु चयन चाहे विभिन्न शैक्षिक स्तर की योग्यता के प्राप्तांकों के गुणांक के आधार पर हो या शिक्षक पात्रता परीक्षा के प्राप्तांक के आधार पर हो, दोनों ही स्थितियों में अभ्यर्थियों का चयन एवं प्रशिक्षण कर शिक्षण का लाइसेन्स/ प्रमाण पत्र देना वैकल्पिक प्रमाणन के अंतर्गत माना जाएगा।

अभ्यास प्रश्न

1.9.1 मूल्यांकन में वैकल्पिक प्रमाणन के उपायों पर चर्चा कीजिए।

15.10 पारदर्शिता (Transparency)

विद्यालयी मूल्यांकन में पारदर्शिता अत्यंत आवश्यक है। मूल्यांकन में पारदर्शिता तभी आ सकती है जब कक्षागत स्थिति में अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों का मूल्यांकन करने हेतु बनाए गये परीक्षण के इकाई में वस्तुनिष्ठता हो जिससे विद्यार्थियों का उचित मूल्यांकन किया जा सके। परीक्षण वस्तुनिष्ठता से तात्पर्य परीक्षण के विभिन्न प्रश्नों पर किसी परीक्षार्थी द्वारा दिये गये उत्तरों का अंकन करते समय परीक्षक की व्यक्तिगत पसंद-नापसंद के प्रभाव से मुक्त होने से है। परीक्षण की वस्तुनिष्ठता का संबंध मापन की व्यक्तिगत त्रुटियों से है। किसी परीक्षण को तभी वस्तुनिष्ठ परीक्षण कहा जाता है, जब उस परीक्षण पर अंकन करते समय परीक्षक की व्यक्तिगत पसंद-नापसंद का परीक्षार्थी द्वारा प्राप्त अंकों पर बिलकुल भी प्रभाव नहीं पड़ता हैं। परंतु यदि किसी परीक्षण पर किसी परीक्षार्थी की उत्तरपुस्तिका का अंकन करके कोई परीक्षक उसे 50 में से 42 अंक दे एवं कोई अन्य परीक्षक 48 अंक दे, तो ऐसे परीक्षण को वस्तुनिष्ठ परीक्षण नहीं कहा जायेगा। बहुविकल्प प्रश्न, सत्य-असत्य प्रश्न, पुनः स्मरण प्रश्न, मिलान प्रश्न, पूर्ति प्रश्न, वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के कुछ प्रकार है। लघु उत्तर प्रश्नों तथा निबन्धात्मक प्रश्नों में

विस्तृत अथवा वर्णनात्मक उत्तर होने के कारण प्रायः वस्तुनिष्ठता का अभाव रहता है। इसलिए इन्हें व्यक्तिनिष्ठ प्रश्न कहते है। किसी भी परीक्षण को अत्यधिक वस्तुनिष्ठ बनाने के लिए निम्न उपाय कर सकते है।

- ✓ परीक्षण में वस्तुनिष्ठ प्रश्नों की संख्या बढ़ा देनी चाहिए।
- ✓ वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के अंकन के लिए अंकन कुंजी तथा लघु उत्तर व दीर्घ उत्तर प्रश्नों के लिए आँकन प्रारूप पूर्व में ही तैयार कर लेना चाहिए।
- ✓ लघु उत्तर तथा दीर्घ उत्तर प्रश्नों के मानक उत्तरों को पूर्व में ही तैयार करना चाहिए।
- ✓ दो या दो से अधिक परीक्षकों से उत्तर पुस्तिकाओं का अंकन करा करके उनके द्वारा दिये गये अंकों का औसत ज्ञात करना चाहिए।
- ✓ लघु उत्तर प्रश्नों तथा निबंधात्मक प्रश्नों को स्पष्ट भाषा में लिखना चाहिए तथा अपेक्षित उत्तर के संदर्भ में स्पष्ट निर्देश भी दिये होने चाहिए।

इस प्रकार हम देखते है कि विद्यालयी मूल्यांकन में पारदर्शिता लाने के लिए हमे सर्वप्रथम कक्षागत स्थिति में प्रशासित परीक्षण में वस्तुनिष्ठता लानी होगी जिससे विद्यार्थियों के अधिगम स्तर का सही-सही पता लग सके। अतः सही आंकलन हेतु पारदर्शिता अत्यंत आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न

1.10.1 मूल्यांकन में पारदर्शिता किस प्रकार लायी जा सकती है ? स्पष्ट कीजिए।

15.11 आंतरिक बाह्य अनुपात (Internal-External Ratio)

आंतरिक वाह्य अनुपात को दो संदर्भों में समझा जा सकता है। एक तो यह कि शिक्षण देने वाला शिक्षक मूल्यांकन करते समय कुल मूल्यांकन का कितने प्रतिशत भाग विभिन्न यूनिट के टेस्ट में तथा कुछ यूनिटस का मूल्यांकन सेमेस्टर के अंत में एक साथ समग्र रूप में करे तब उन दोनों के प्राप्तांक मिल करके ही उस पूरे सेमेस्टर के आंकलन को प्रदर्शित करेंगे। आंतरिक वाह्य अनुपात इस बात से तय होता है कि विद्यार्थी के कुल मूल्यांकन का कितना प्रतिशत हिस्सा आंतरिक मूल्यांकन के लिए तथा कितना प्रतिशत भाग वाह्य मूल्यांकन के लिए रखा जाए। कितनी इकाईयां है तथा इन इकाइयों का परीक्षण हर तीन

महीने पर लिए जाएं, या मासिक स्तर पर लिए जाए तथा निर्धारित अंकों के अनुसार विद्यार्थियों को अंक प्रदान किए जाते है। वर्तमान में स्कूलों, महाविद्यालयो तथा विश्वविद्यालयों में प्रचलन के अनुसार प्राप्तांकों का आंतरिक वाह्य अनुपात 70:30 का है अर्थात यदि परीक्षण 100 अंक का है तो 70 प्रतिशत वाह्य मूल्यांकन हेतु तथा 30 प्रतिशत आंतरिक मूल्यांकन हेतु रखा जाता है। मुक्त विश्वविद्यालयों जैसे इग्नू में भी यही व्यवस्था है कि आंतरिक मूल्यांकन हेतु असाइनमेंट, प्रोजेक्ट रिपोर्ट लेने की व्यवस्था है , इसी क्रम में हम यूनिट टेस्ट का भी आयोजन करते है। आंतरिक मूल्यांकन के अंतर्गत ही बच्चों का पावर प्वाइंट प्रेजेंटेशन भी कराया जाता है और भी विभिन्न गतिविधियों और क्रियाओं के माध्यम से उनका मूल्यांकन किया जाता है। आंतरिक मूल्यांकन की मुख्य ज़िम्मेदारी उस अध्यापक की होती है जो उस विषय को पढ़ा रहा होता है तथा वाह्य मूल्यांकन हेतु सेमेस्टर के अंत में तैयार प्रश्न पत्र तथा टाइम टेबल किसी दूसरे शिक्षक/परीक्षक द्वारा तैयार किया जाता है इसलिए इसे वाह्य मूल्यांकन की श्रेणी में रखा जाता है। ये अनुपात विभिन्न शिक्षाविदों तथा विभिन्न संस्थाओं के प्रमुखों द्वारा, प्राचार्यों द्वारा, कुलपतियों द्वारा विभिन्न समितियों के प्रस्ताव एवं अनुमोदन के उपरांत किया गया है या राज्य स्तर के बोर्ड द्वारा भी ऐसी व्यवस्था लागू की गयी है जैसे की यू॰ पी॰ बोर्ड , सी॰ बी॰ एस॰ ई ॰ बोर्ड , आई॰ सी॰ एस॰ ई॰ बोर्ड आदि। अगर हम इन बोर्ड की मूल्यांकन प्रणाली को ध्यान से देखे तो हम पाएंगे कि 100 अंक में से 70 अंक वाह्य मूल्यांकन हेतु तथा 30 अंक आंतरिक मूल्यांकन हेतु निर्धारित किए गये है तथा यह आंतरिक वाह्य अनुपात बहुत प्रचलित है। इसप्रकार हम देखते है कि विद्यालयी मूल्यांकन में आंतरिक वाह्य अनुपात काफी हद तक सक्रिय भूमिका निभाती है जिससे हम विद्यार्थियों का मूल्यांकन उचित ढंग से कर सकते है। साथ ही हम कह सकते है कि आंतरिक मूल्यांकन अति आवश्यक है जो कि इस व्यवस्था के अंतर्गत विषय पढ़ाने वाले शिक्षक को भी विद्यार्थी का मूल्यांकन करने का अवसर प्रदान करता है। शिक्षक भली भाति अपने विद्यार्थियों के अधिगम स्तर को जानता एवं समझता है तथा इसी आधार पर शिक्षक अपनी भविष्य की रणनीति तय करता है कि आगे उसे किस प्रकार की तैयारी करके शिक्षण कार्य करना है। आंतरिक मूल्यांकन के अंतर्गत पाठ्यसहगामी क्रियाओं में सहभागिता के आंकलन का अवसर प्रदान करता है।

अभ्यास प्रश्न

1.1.2 मूल्यांकन में आंतरिक-बाह्य अनुपात का प्रचिलित रूप क्या है? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

15.12 सुधार हेतु विकल्प (Improvement Option)

सुधार हेतु विकल्प से तात्पर्य है विद्यार्थी के पास अपनी शैक्षिक उपलब्धि में सुधार करने के अवसर की उपलब्धता। यदि कोई विद्यार्थी कक्षागत परिस्थिति में पढ़ाने वाले शिक्षक द्वारा परीक्षण लेने पर निम्न प्राप्तांक पाया है ऐसी स्थिति में उसके पास सुधार हेतु सेमेस्टर/अंतिम परीक्षा से पहले भी अवसर या विकल्प होता है। यदि कोई छात्र यूनिट टेस्ट / सत्र परीक्षा मे कम प्राप्तांक पाया है तो आगे उसके पास छ माह पर होने वाले सेमेस्टर परीक्षा में यह अवसर होता है कि वह अपने प्राप्तांक में सुधार कर सके। यदि विद्यार्थी सेमेस्टर परीक्षा में भी सुधार नहीं कर पाया तो आगे उसके पास दूसरे सेमेस्टर अर्थात वार्षिक परीक्षा में प्राप्तांक सुधारने का मौका मिल जाता है यह प्रक्रिया ही विद्यालयी मूल्यांकन प्रक्रिया में सुधार हेतु विकल्प के रूप में जाना जाता है। इसके द्वारा विद्यार्थियों को अलग-अलग अवसर प्राप्त हो जाता है यदि कोई विद्यार्थी पूर्व में बीमार है या उसके साथ कोई समस्या रही है तो आगे वह अपने प्राप्तांकों में सुधार कर सकता है।

अभ्यास प्रश्न

1.12.1 मूल्यांकन में सुधार हेतु विकल्प से क्या तात्पर्य है?

15.13 प्रासंगिक शब्दावली की व्याख्या

1.1.3 ग्रेडिंग- ग्रेडिंग से तात्पर्य विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को विभिन्न गुणात्मक श्रेणियों में बाँटना। इन गुणात्मक श्रेणियों में एक पदानुक्रम होता है। प्रत्येक श्रेणी को ग्रेड कहा जाता है जैसे- A, B, C, D एवं E इत्यादि।

1.1.4 क्रेडिट- अकादमिक क्रेडिट व्यवस्था विद्यार्थियों की प्रगति का आकलन उनकी शिक्षा के दौरान करता है। विद्यार्थियों को पूर्ण कालिक विद्यार्थी स्थिति का हकदार होने के लिए उन्हे इसी क्रम में कुछ निश्चित संख्याओं के क्रेडिट प्राप्त करना पड़ता है। प्रत्येक कोर्स कुछ निश्चित संख्या के क्रेडिट अंको का होता है जो कि विभिन्न मानदंडों पर आधारित होता है जैसे विद्यार्थियों का कार्यभार, अधिगम परिणाम तथा संपर्क घंटे।

1.1.5 वैकल्पिक प्रमाणन- वैकल्पिक प्रमाणन से तात्पर्य वैकल्पिक प्रमाणन से तात्यपर्य विद्यार्थियों के उपलब्धियों को प्रमाणित करने के लिए गैर परंपरागत तरीकों के प्रयोग से है।

15.14 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने विद्यालयी मूल्यांकन के संप्रत्यय एवं मूल्यांकन के उद्देश्यों को समझा। आपने मूल्यांकन के विभिन्न संप्रत्ययों के संबंध में यह समझा कि विद्यार्थियों की छंटनी क्यों की जाती है? विद्यार्थियों की छंटनी का प्रमुख उद्देश्य उन्हें शैक्षिक उपलब्धियों या आवश्यकताओं के अनुरूप विभिन्न श्रेणियों में बांटकर तदनुसार उचित शिक्षण की व्यवस्था की जाती है। अंकन प्रणाली की विशेषताओं एवं कमियों से भी अवगत हुए। विद्यार्थियों को उनकी शैक्षिक उप्लब्धि के आधार पर 101 समूहों में वर्गीकृत करने में गलती होने की संभावना अधिक होने की वजह से उपलब्धि की गुणात्मक श्रेणियों को कम करने का सुझाव शिक्षविदों ने दिया। अंकन प्रणाली की कमियों को कम करने के लिए ग्रेडिंग प्रणाली की आवश्यकता को भी रेखांकित किया गया। इसके पश्चात क्रेडिट व्यवस्था की विशेषताएँ व उसके लाभ पर भी आपसे चर्चा हुई। मूल्यांकन में प्रचिलित वैकल्पिक प्रमाणन की व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला गया। मूल्यांकन में पारदर्शिता लाने के लिए परीक्षणों को वस्तुनिष्ठ बनाने की आवश्यकता पर बल दिया गया। इस हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के समावेश का सुझाव प्रमुख रूप से प्रस्तुत हुआ। मूल्यांकन में बाह्य-आंतरिक अनुपात के प्रचिलित रूप 70:30 जो कि कुछ राज्यों के बोर्डों एवं विश्वविद्यालयों को स्पष्ट किया गया। इकाई के अंत में विद्यार्थियों के पास अपनी शैक्षिक उपलब्धि में सुधार के अवसरों की उपलब्धता को सुधार हेतु विकल्प के रूप में समझा गया।

15.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.3.1 शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन से तात्पर्य विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि की गुणवत्ता का निर्धारण करने से है। मूल्यांकन प्रक्रिया यह बताती है कि निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुई है? कक्षा में दिए गए अधिगम अनुभव कितने प्रभावशाली रहे हैं?

1.4.1 विद्यालय स्तर पर मूल्यांकन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

- ✓ विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं की जानकारी प्राप्त करना ।
- ✓ विद्यार्थियों की कमियों व कठिनाइयों को चिन्हित कर उनका निवारण करना।
- ✓ विद्यार्थियों द्वारा अर्जित ज्ञान की वांछनीयता ज्ञात करना।
- ✓ अध्यापक की शिक्षण प्रभावशीलता ज्ञात करना।

- ✓ विद्यार्थियों का योग्यता आधारित वर्गीकरण कर कक्षा उन्नति या रोजगार के लिए शैक्षिक योग्यता प्रमाण पत्र देना।

1.5.1 विद्यार्थियों की छटनी का उद्देश्य उनकी शैक्षिक उपलब्धि की श्रेणियों के अनुरूप शिक्षण योजना का निर्धारण करना। पिछड़े विद्यार्थियों पर विशेष ध्यान देने के लिए उनको छांटना लाभकारी होता है जिससे उनके लिए उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था की जा सके। इसी प्रकार प्रतिभाशाली विद्यार्थियों के लिए संवर्धित शिक्षण योजना तैयार कर लागू की जा सके। विशिष्ट बच्चों को उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं तथा विकलांगता/अक्षमता के प्रकार के अनुरूप छांटकर अध्ययन योजना तैयार करना आवश्यक होता है।

1.6.1 अंकन प्रणाली की दो सीमाएँ हैं – प्रथम, मूल्यांकनकर्ता के निर्णय मे जरा सी चूक होने पर कभी-2 एक या दो अंक के कारण छात्र की श्रेणी अथवा उत्तीर्ण अथवा अनुतीर्ण की स्थिति बदल सकती है अर्थात एक या दो अंक के इस मामूली अंतर से द्वितीय श्रेणी वाला छात्र, प्रथम श्रेणी तथा प्रथम श्रेणी वाला छात्र द्वितीय श्रेणी पा सकता है। इसी प्रकार के जरा से अंतर से कोई भी विद्यार्थी उत्तीर्ण या अनुतीर्ण भी हो सकता है । परीक्षक द्वारा प्रदान किए गए अंक विद्यार्थी की वास्तविक योग्यता का प्रतिनिधित्व नहीं करते है अर्थात परिक्षक द्वारा प्रदान किए गए अंकों मे व्यक्तिनिष्ठता हो सकती है इसी कारण विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को इतनी यथार्थ तथा असंदिग्ध ढंग से नहीं मापा जा सकता है । द्वितीय, विभिन्न विषयों के छात्रों के शैक्षिक उपलब्धि के मूल्यांकन के मानदंडों में विभिन्नताओं का होना कुछ विषयों में मूल्यांकनकर्ता के द्वारा कम अंक प्रदान किए जाते है और कुछ विषयों मे पूर्णांक तक प्रदान किया जाता है । उदाहरण के लिए गणित या विज्ञान जैसे विषयों में प्रायः 0 से 100 तक के पूर्ण प्रसार में मूल्यांकनकर्ता द्वारा प्राप्तांक प्रदान किए जाते हैं। जबकि भाषा या इतिहास जैसे विषयों में प्रसार प्रायः प्राप्तांक 100 या पूर्णांक से काफी कम होता है। मूल्यांकनकर्ता के द्वारा प्राप्तांकों की न्यूनतम व उच्चतम सीमाओं तथा प्रसार के निर्धारण में उनकी व्यक्तिगत पसंद के साथ-साथ विषय की प्रकृति की भी अवांछित भूमिका रहती है।

1.7.1 क्रेडिट व्यवस्था से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं: क्रेडिट प्रणाली से विद्यार्थी प्रक्रिया की जानकारी द्वारा यह निश्चय करना आसान हो जाता है कि कब वह विशिष्ट अकादमिक डिग्री प्राप्त करने की आवश्यकताओं को पूरा कर ले रहा है । क्रेडिट प्रणाली

से एक कार्यक्रम के कार्यभार के अच्छे आकलन का प्रस्ताव प्राप्त होता है तथा किस प्रकार इसे विभिन्न उच्च शिक्षा गतिविधियों में बांटे इसका भी ज्ञान प्राप्त होता है।

1.8.1 विद्यार्थियों को उनकी शैक्षिक योग्यता के आधार पर 101 समूहों मे विभाजित करना व्यावहारिक दृष्टि से संभव नहीं है। अंक प्रदान करने का कोई पर्याप्त, वैध, वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय तथा सार्थक आधार उपलब्ध नहीं है तथा परीक्षकों में भी इतनी क्षमता नहीं होती है कि वे छात्रों को 101 समूहों में त्रुटिरहित ढंग से बाँट सकें। परीक्षक अधिक से अधिक छात्रों को कुछ सीमित संख्या वाली गुणात्मक श्रेणियों आदि में सफलतापूर्वक विभाजित कर सकते है। अंकन वर्गों की संख्या को कम कर के अंकन की त्रुटियों को काफी सीमा तक समाप्त किया जा सकता है। इसलिए ग्रेडिंग की आवश्यकता महसूस की गयी।

1.9.1 विद्यालयी मूल्यांकन में वैकल्पिक प्रमाणन से तात्यपर्य विद्यार्थियों के उपलब्धियों को प्रमाणित करने के लिए गैर परंपरागत तरीकों /सूचकों के प्रयोग से है।

1.10.1 विद्यालयी मूल्यांकन में पारदर्शिता लाने के लिए हमे सर्वप्रथम कक्षागत स्थिति में प्रशासित परीक्षण में वस्तुनिष्ठता लानी होगी जिससे विद्यार्थियों के अधिगम स्तर का सही-सही पता लग सके। वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के समावेश एवं मॉडल उत्तर के निर्धारण से मूल्यांकन में पारदर्शिता लायी जा सकती है।

1.11.1 आंतरिक वाह्य अनुपात इस बात से तय होता है कि विद्यार्थी के कुल मूल्यांकन का कितना प्रतिशत हिस्सा आंतरिक मूल्यांकन के लिए तथा कितना प्रतिशत भाग वाह्य मूल्यांकन के लिए रखा जाए। कितनी इकाईयां है तथा इन इकाइयों का परीक्षण हर तीन महीने पर लिए जाएं, या मासिक स्तर पर लिए जाए तथा निर्धारित अंकों के अनुसार विद्यार्थियों को अंक प्रदान किए जाते है। वर्तमान में स्कूलों, महाविद्यालयो तथा विश्वविद्यालयों में प्रचलन के अनुसार प्राप्तांकों का आंतरिक वाह्य अनुपात 70:30 का है अर्थात यदि परीक्षण 100 अंक का है तो 70 प्रतिशत वाह्य मूल्यांकन हेतु तथा 30 प्रतिशत आंतरिक मूल्यांकन हेतु रखा जाता है।

1.12.1 सुधार हेतु विकल्प से तात्पर्य है विद्यार्थी के पास अपनी शैक्षिक उपलब्धि में सुधार करने के अवसर की उपलब्धता। यदि कोई विद्यार्थी कक्षागत परिस्थिति में पढ़ाने वाले शिक्षक द्वारा परीक्षण लेने पर निम्न प्राप्तांक पाया है। ऐसी स्थिति में उसके पास सुधार हेतु सेमेस्टर/अंतिम परीक्षा से पहले भी अवसर या विकल्प होता है।

15.16 संदर्भ ग्रंथ व कुछ उपयोगी पुस्तकें

- गुप्ता, एस॰ पी॰(2011),॰ आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन॰ शारदा पुस्तक भवन॰ इलाहाबाद।
- **Anastasi, A. (1968). Psychological Testing. New York: The Mc Millan Company.**
- **Cronback, L.J. (1970). Essentials of Psychological Testing. New York: Harper and Row Publisher.**
- **Ebel, R.L. (1965). Measuring Educational Achievement. Englewood Cliffs, N.J.: Prentice Hall Inc.**
- **Freeman, F.S. (1965). Theory and Practice of Psychological Testing. New Delhi: Oxford and IBH Publishing Co.**
- **Gronlund, N.E. (1954).Measurement and Evaluation in Teaching. New York: McGraw Hill Books Company.**
- **Guilford, J.P.(1954). Psychometric Methods. New York: McGraw Hill Books Company.**
- **Singh, A.K. (2011). Tests, Measurements and Research Methods in Behavioral Sciences. Patna: Bharti Bhawan Publishers & Distributers.**

15.17 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न संख्या 1 – विद्यालयी मूल्यांकन में शिक्षक की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न संख्या 2 – विद्यालयी स्तर पर क्रेडिट एवं ग्रेडिंग व्यवस्था संबंधी चुनौतियों पर चर्चा कीजिए।

प्रश्न संख्या 3 - मूल्यांकन में वैकल्पिक प्रमाणन, पारदर्शिता संबंधी मुद्दों की विस्तृत विवेचना कीजिए।

इकाई-16- आकलन:रणनीतियाँ एवं अभ्यास (Assessment: Strategies and Practices) भाग I

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 आकलन का अर्थ
16.4 आकलन की रणनीतियाँ
16.4.1 मौखिक परीक्षा
16.4.2 लिखित परीक्षा
16.4.3 परियोजना
16.4.4 प्रेक्षण/अवलोकन
16.4.5 प्रस्तुतीकरण
16.4.6 समूह चर्चा
16.4.7 आकस्मिक परीक्षा
16.5.8 असामयिक परीक्षा
16.5.9 पोर्ट फोलियो आकलन
16.5.10 खुली पुस्तक परीक्षा
16.5 सारांश
16.6 शब्दावली
16.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
16.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
16.9 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

वर्तमान शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्र – छात्राओं में सकारात्मक व्यवहारिक परिवर्तन को लाना है। इन परिवर्तनों को प्रभावी रूप से क्रियान्वित करने हेतु शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया के दौरान वांछित परिवर्तनों की प्राप्ति के लिए शिक्षा के उदेश्यों अथवा अनुदेशन उदेश्यों का निर्धारण किया जाता है। विभिन्न अधिगम क्रियाओं द्वारा, निर्धारित उदेश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक सफल रही इसका निर्धारणआकलन प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् के अनुसार आकलन एक ऐसी सतत व व्यवस्थित प्रक्रिया है जिसके द्वारा निर्धारित शैक्षिक उदेश्यों की प्राप्ति सीमा, कक्षा में दिए अधिगम अनुभवों की प्रभावशीलता एवं शिक्षा के उदेश्यों की पूर्णता का आंकलन करता है। व्यापकता की दृष्टि से आकलन अत्यंत व्यापक एवं बहुआयामी प्रत्यय है। नवीनता के आधार पर आकलन सिर्फ पारम्परिक परीक्षाओं में अधिगमकर्ता द्वारा प्राप्त अंको तक ही न सिमित होकर उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास से संदर्भित है। वर्तमान नवीन परिप्रेक्ष्य में हम छात्रों की विविध क्षमताओं का आकलन विभिन्न मापन विधियों, प्रविधियों तथा उपकरणों के समुचित एवं प्रभावशाली प्रयोग के माध्यम से करते है । शिक्षा एक सोद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है और इन उदेश्यों की प्राप्ति इसका प्रमुख लक्ष्य। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए इस इकाई का मुख्य उदेश्य वर्तमान शिक्षा के परिप्रेक्ष्य मेंआकलन की आवश्यकता एवं इसकी प्रभावशीलता का अध्ययन एवं आकलन की व्यूहरचनाओं के तहत विभिन्न प्रविधियों के अर्थो एवं उनकी प्रक्रियाओं से अवगत कराते हुए इसकी व्यापकता से परिचित करना है।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

1. आकलन का अर्थ समझ सकेंगे ।
2. आकलन की विभिन्न रणनीतियाँ एवं उनकी प्रक्रियाओं को समझ सकेंगे ।

16.3 आकलन का अर्थ

किसी भी शैक्षणिक कार्यक्रम के बारे में निर्णय लेने की प्रक्रिया को आकलन कहा जा सकता है। आकलन का महत्त्व आकलन के औजारों की तरह है क्योंकि आकलन से हमें इन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त होते हैं : हम कक्षाओं में क्या पढ़ा रहे हैं? छात्र सीखने की सामग्री के साथ किस

तरह कार्य कर रहे हैं? स्कूल के परिवेश में कैसा ज्ञान दिया जा रहा है? सीखी हुई बातों को छात्र किस तरह आत्मसात और उपयोग कर रहे हैं? आकलन वह प्रक्रिया है, जिससे हमें छात्रों के प्रतिदिन की उपलब्धि का पता चलता है। विद्यालय परिसर में आते ही छात्र का आकलन आरम्भ हो जाता है। जिसमें शैक्षिक और गैर-शैक्षिक पक्ष दोनों ही सम्मिलित होते हैं। शिक्षक आकलन के लिए अनेक विधियों का प्रयोग करता है जैसे- प्रोजेक्ट और इसका प्रस्तुतीकरण, मासिक परीक्षा, मौखिक परीक्षा, समूह चर्चा, आकस्मिक टेस्ट लेकर, दत्त कार्य, पोर्ट फोलियो, लिखित परीक्षा, तथा अनेक अन्य प्रतियोगिताएँ करवाकर आदि शिक्षक शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कक्षा में अधिगम करवाता है। अधिगम के पश्चात वह यह पता लगता है कि शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति कहाँ तक हुई है ? छात्र के व्यवहार में यदि परिवर्तन होता है तो उद्देश्यों की पूर्ति पूरी मानी जाती है।यदि ऐसा नहीं होता है तो शिक्षक अधिगम के लिए दूसरी विधियों का प्रयोग करता है। आकलन के प्रत्यय को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है।

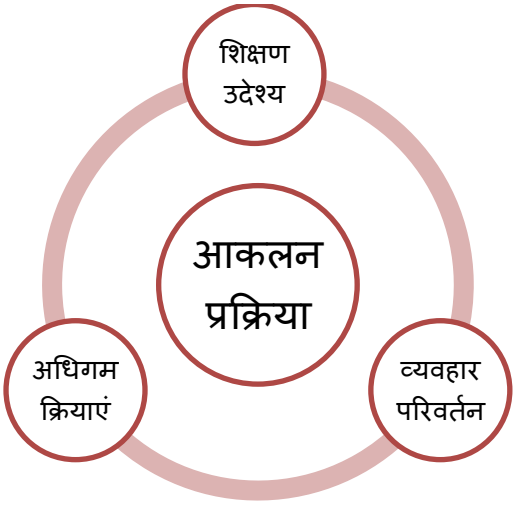

16.4 आकलन की रणनीतियाँ

16.4.1 मौखिक परीक्षा

मौखिक परीक्षा के माध्यम से छात्रों की निष्पत्तियों अथवा उपलब्धियों के उन पक्षों काआकलन किया जाता है जिनकाआकलन लिखित परीक्षाओं के आधार पर नहीं किया जा सकता। इसके तहत मौखिक प्रश्नों, वाद –विवाद, विचार

विमर्श, नाट्य प्रदर्शन आदि द्वारा छात्रों द्वारा अधिगम क्रियाओं से प्राप्त ज्ञान काआकलन सफलतापूर्वक किया जाता है। इनके प्रयोग से छात्रों को अपने विचारों को व्यक्त करने का अवसर प्राप्त होता है जिसके फलस्वरूप छात्रों के अन्दर आत्मविश्वास में वृद्धि के साथ- साथ अध्यापक के प्रति विश्वास की डोर मजबूत होती है और झिझक, घबराहट एवं संकोच जैसी नकारात्मक प्रवृति कम होती है। स्मरण शक्ति, तर्कशक्ति, विवेक एवं उच्चारण शुद्धत्ता में वृद्धि और ज्ञान का स्थाईकरण लम्बे समय तक रहता है।

मौखिक परीक्षा निश्चित अंतराल पर आयोजित की जानी चाहिए। एक परिपक्व अध्यापक की भूमिका रूप में मौखिक प्रश्नावली का निर्माण, वाद-विवाद, विचार विमर्श के विषयों का चयन सावधानीपूर्वक किया जाना नितान आवश्यक है। सर्वप्रथम उन पाठ्यवस्तुओं को चिन्हित करे जिनकी प्रभावशीलता का आकलन लिखित परीक्षा से संभव नहीं है, तत्पश्चात उचित मौखिक प्रविधि यथा प्रश्न, भाषण, समूह चर्चा, वाद- विवाद, नाट्य रूपांतरण आदि का चयन कर छात्रों को नियत दिन व समय की सूचना प्रदान करें ताकि छात्र यथासमय अपनी तैयारी कर सकें। मौखिक प्रश्नों को छात्रों की योग्यतानुसार एक सुसबद्ध क्रम में पूछने चाहिए तथा वे चिंतन एवं तर्क को प्रोत्साहित करने वाले होने चाहिए। मौखिक प्रश्न अनुमानन प्रवृति को बढावा देने वाले नहीं होने चाहिए।

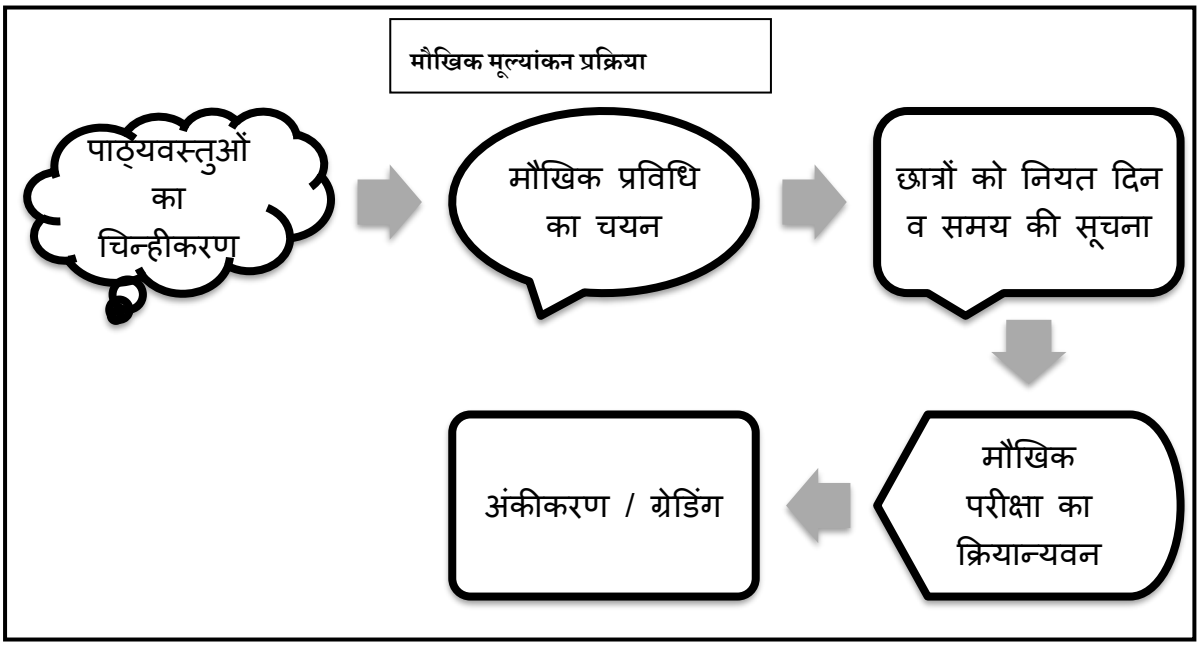

16.4.2 लिखित परीक्षा

आकलन व्यूह रचनाओं में लिखित परीक्षा एक महत्वपूर्ण प्रविधि है। वर्तमान परीक्षा प्रणाली में लिखित परीक्षा आकलन हेतु सर्वाधिक रूप से प्रचलन में लाई जा रही है। मौखिक परीक्षाओं की कमियों को लिखित परीक्षाओं के द्वारा कम किया जा सकता है। इसके द्वारा छात्र कठिन संक्रियाओं का लिखित रूप से सरलतम प्रस्तुतीकरण कर सकते है। विचारों को क्रमबद्ध एवं तर्कपूर्ण तरीके से प्रस्तुत करने, सजगता, स्वाध्याय को प्रोत्साहित करने, विचारों को शाब्दिक रूप से अभिव्यक्त करने की क्षमता के विकास में लिखित परीक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अधिगम प्रक्रिया से प्राप्त ज्ञान की उच्चतम सीमा की रचनात्मक अभिव्यक्ति को लिखित शब्दों में व्यक्त करने और उसका समुचित आकलन लिखित परीक्षाओं के माध्यम से ही संभव है। वर्तमान में आकलन हेतु लिखित परीक्षाओं में विभिन्न प्रकार के प्रश्न जैसे वस्तुनिष्ठ, अति लघुत्तरीय, लघुत्तरीय, दीर्घ उत्तरीय रूप से पूछे जाते है। इन प्रश्नों के माध्यम से हम छात्रों के ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों में प्राप्त ज्ञान का आकलन करते हैं और मानकानुसार छात्रों की निष्पत्तियों की अंकना अथवा ग्रेडिंग करते है।

लिखित परीक्षा से छात्रों में व्यवस्थित, शुद्ध, स्वच्छ एवं व्यापक प्रस्तुतीकरण की भावना का प्रभावशाली विकास होता है। कमज़ोर छात्रों के उचित मार्ग दर्शन के निर्धारण के लिए लिखित परीक्षा एक समुचित शैक्षिक उपकरण के रूप में प्रयुक्त होती है। चूँकि लिखित परीक्षा पर छात्रों के सभी पक्षों में अर्जित ज्ञान के परीक्षणों का अत्यधिक दबाब होता है, ऐसे में प्रश्नों के निर्माण में अध्यापक की भूमिका अत्यंत चुनौतीपूर्ण होती है। एक अध्यापक को प्रश्न निर्माण में समय, व्याकरणिक त्रुटियों, पाठ्यवस्तु चयन, प्रश्नानुसार अंक विभाजन आदि का विशेष ध्यान रखना होता है। प्रश्न निर्माण के दौरान छात्रों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं का संज्ञान बेहद ज़रूरी है ।

लिखित परीक्षा की प्रक्रिया को निम्नांकित पदों के आधार पर क्रियान्वित किया जाना चाहिए।

1. विश्लेषित पाठ्यवस्तु/ विषयवस्तु को शिक्षण एवं संतुलन के उचित समानुपात के अनुसार चयन।
2. उद्देश्यो के आधार पर अंकानुसार ब्लूप्रिंट का प्रारूपीकरण एवं निर्माण।
3. नील पत्र आधारित प्रश्नों का कुशलतापूर्वक और सावधानीपूर्वक निर्माण।

4. छात्रों के समक्ष प्रश्नपत्र का प्रस्तुतीकरण।
5. लिखित परीक्षा का संचालन।
6. परीक्षा के उपरांत मानकानुसार आकलन ।

लिखित परीक्षा का मुख्य कार्य निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति एवं छात्रों द्वारा आत्मसात् किये गए ज्ञान का परिक्षण होता है। इनकी प्राप्ति में यदि सफलता नहीं मिलती है तो इस स्थिति में हमें शिक्षण- अधिगम प्रक्रिया को पुनः परिष्कृत कर कमियों को दूर कर लेना चाहिए।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न : भाग 1

1. आकलन के लिए प्रयुक्त की जाने वाली कोई दो विधियाँ लिखिए ।
2. वाद- विवाद ..... परीक्षा की विधि है ।
3. मौखिक परीक्षा से .... जैसी नकारात्मक प्रवृत्ति कम होती है ।
4. लिखित परीक्षा विचारों को ..... अभिव्यक्त करने की क्षमता का विकास करती है ।
5. प्रश्न निर्माण के दौरान छात्रों की ..... का संज्ञान बेहद जरूरी है ।

16.4.3 प्रयोजना/ परियोजना आधारितआकलन

प्रयोजनवादी दार्शनिकता से प्रभावित इस विधि के जन्मदाता विलियम किल्पैट्रिक ने सर्वप्रथम १९१८ में 'दी प्रोजेक्ट मेथड' नामांकित शोध पत्र इसका विवरण प्रस्तुत किया था। विशेषतया यह विधि छात्रों की सक्रियता पर बल देते हुये समस्या समाधान हेतु उन्हें समूल रूप से ज्ञानार्जन के लिए प्रेरित करती है। किल्पैट्रिक द्वारा प्रदत्त परिभाषा के अनुसार "प्रायोजना वह सहृदय उद्देश्यपूर्णकार्य होता है, जो पूर्ण संलग्नता के साथ सामाजिक वातावरण में सम्पादित किया जाता है। " प्रायोजना मुख्यतः दो प्रकार की होती है।

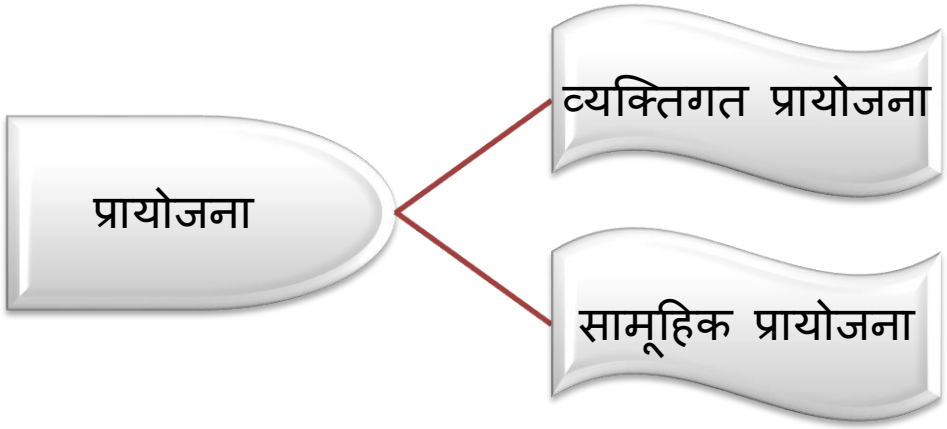

प्रायोजना विधि द्वारा आकलन के पद-

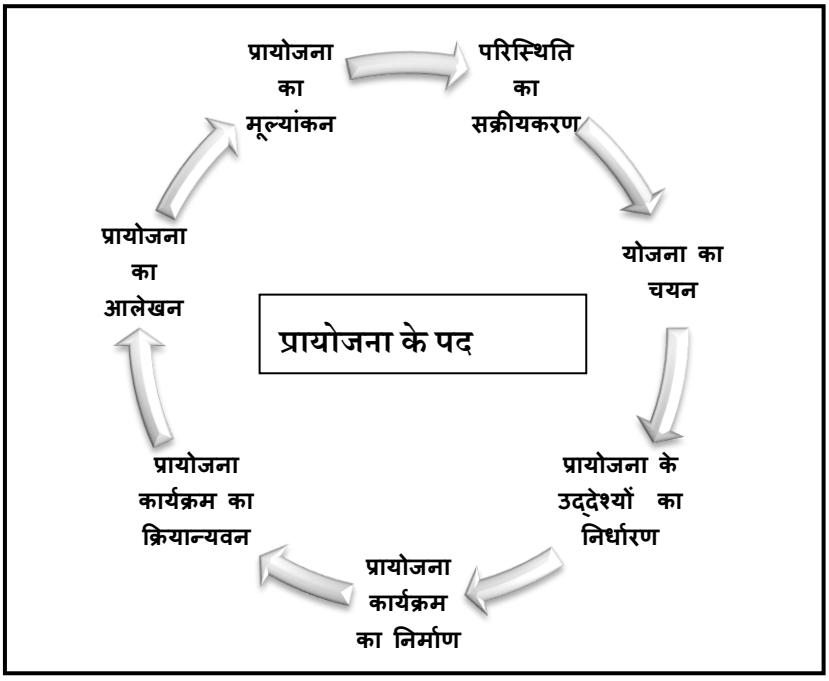

प्रायोजना आधारितआकलन में इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाना आवश्यक है की प्रायोजना के प्रत्येक पहलू /पद कीआकलन प्रक्रिया पूर्व निर्धारित होनी चाहिए। बाल केन्द्रित विधि होने के कारण यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। ये छात्रों को तत्पर रखते हुए छात्रों को प्रभावी अधिगम हेतु प्रेरित करती है। प्रायोजना द्वारा छात्रों की रचनात्मक तथा सृजनात्मक योग्यताओं का आकलन सफलतापूर्वक किया जाता है। 'करके सीखने' तथा 'अनुभव द्वारा अधिगम' के मूल सिद्धान्तों को

फलीभूत करते हुए ये विधि छात्रों की न केवल संज्ञानात्मक अपितु संक्रियात्मक आकलन को सम्पादित करने अवसर प्रदान करती है।

5.4.4 प्रेक्षण/ अवलोकन आधारितआकलन

आकलन की इस विधि में अवलोकन / प्रेक्षण की जाने वाली प्रत्येक गतिविधि/ विशेषताओं हेतु सुस्पष्ट और सुनियोजित योजना का निर्माण अत्यंत सावधानीपूर्वक किया जाना आवश्यक है । कोई भी प्रेक्षण तभी सफलतापूर्वक सम्पादित किया जा सकता है जब वो निष्पक्ष, विश्वसनीय एवं वैधता से परिपूर्ण हो। इस विधि द्वारा हम छात्रों के विभिन्न व्यवहारिक कुशलताओं यथा शाब्दिक, अशाब्दिक, अभिनय, पढना, लिखना, श्रवण योग्यता,वाकपटुता आदि का समुचितआकलन कर सकते है।

प्रेक्षण/ अवलोकन प्रक्रिया के दौरान छात्रों पर किसी भी प्रकार का तनाव अथवा दबाब नहीं होना चाहिए ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर छात्र अपनी प्राकृतिक योग्यताओं को परिलक्षित करने में असमर्थ रहते है औरआकलन के उद्देश्यों की प्राप्ति में व्यधान उत्पन्न होता है। प्रेक्षण नियत समय एवं स्वतंत्र वातावरण में बारम्बार विभिन्न परीक्षकों अथवा विशेषज्ञों द्वारा सम्पादित किया जाना चाहिए।

प्रेक्षण/ अवलोकन के अंतर्गत विभिन्न गतिविधियों केआकलन हेतु विभिन्न उपकरणों/ साधनों का सहयोग लिया जाता है जो निम्नवत है।

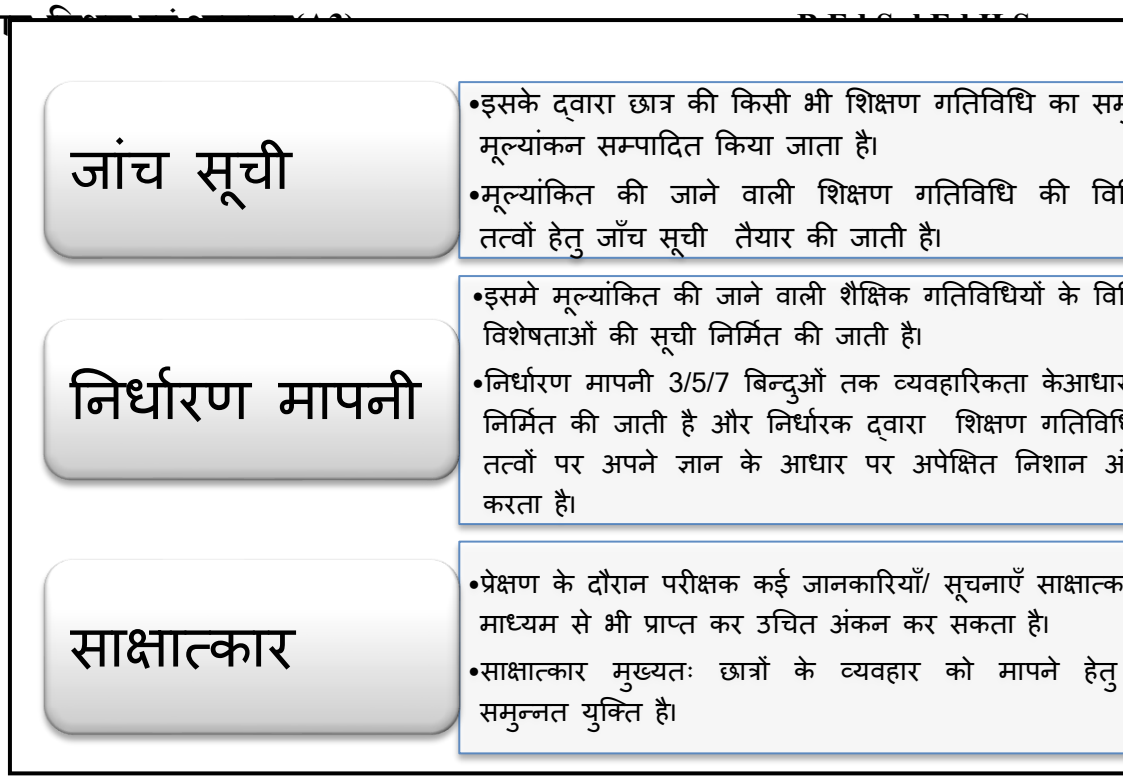

1-

16.4.5 प्रस्तुतीकरण आकलन विधि

छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान के अतिरिक्त उनके व्यावहारिक दक्षताओं काआकलन करने हेतु प्रस्तुतीकरण विधि अत्यधिक प्रभावकारक है। प्रस्तुतीकरण द्वारा हम छात्रों के आत्मविश्वास, सक्रियता, शरीरिक भाषा, सम्प्रेषण, सामंजस्य, सहयोग,लेखन विधा, विचारोत्प्रेरकता, क्रमबद्धता जैसे कई विशेषताओं काआकलन करते है। प्रस्तुतीकरण से पूर्व छात्र अधिकतम प्रयास द्वारा दिए गए प्रकरण के लिए आपसी सहयोग अथवा व्यक्तिगत रूप से समुचित तैयारी कर अपने कार्य का प्रस्तुतीकरण पूरे आत्मविश्वास के साथ सबके समक्ष प्रस्तुत करता है।

एक अध्यापक के रूप में प्रस्तुतीकरण द्वारा आकलन विषयवस्तुओं का चयन, छात्रों की योग्यताओं के आधार पर शीर्षकों विभाजन, उपलब्ध प्रस्तुतीकरण के संसाधनों एवं आकलन के विभिन्न अवयवों को दृष्टिगत रखते हुए करना चाहिए । चूँकि प्रस्तुतीकरण छात्रों की न केवल ज्ञानात्मक अपितु व्यक्तित्व के कई शील गुणों का भी आकलन करता है, ऐसे में आकलन के दौरान अंकना का विभाजन अनुपातिक रूप से किया जाना चाहिए। प्रस्तुतीकरण आधारित आकलन के क्रियान्यवन को निम्नांकित चक्र से समझा जा सकता है :

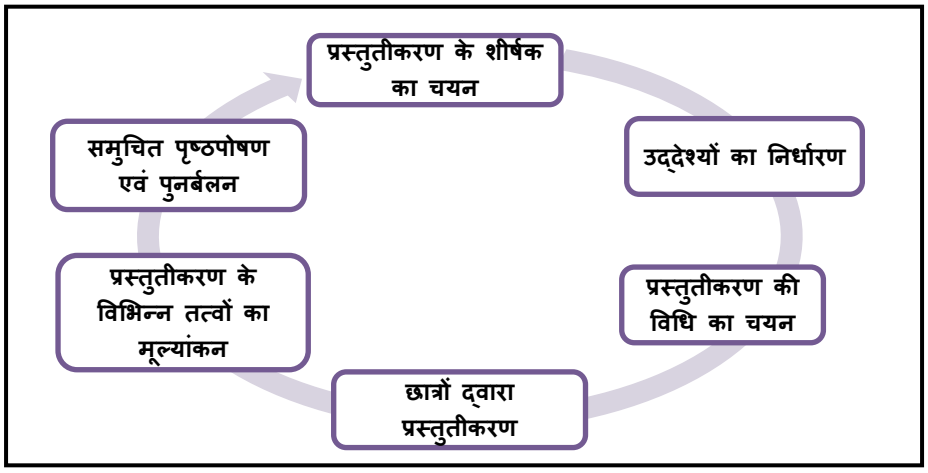

16.4.6 समूह चर्चा

आकलन व्यूह रचनाओं की विभिन्न विधियों / प्रविधियों में से समूह चर्चा प्रमुख से प्रयुक्त की जाती है। समूह चर्चा छात्रों की न केवल शैक्षिक बल्कि रचनात्मक उपलब्धियों का भी आकलन करती है। सम- सामायिक विषयों के प्रति विद्यर्थियों की सजगता, छात्रों में सामाजिक परिपक्वता और शैक्षिक दक्षता के सामंजस्य के आकलन में समूह चर्चा समुचित रूप से सफलतम विधि है। छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान के आत्मसातीकरण को सामाजिकता के आधार पर एवं उनकी निर्णय लेने की क्षमता, वाकपटुता, स्व-अभिव्यक्ति, आपसी सामंजस्य एवं प्रस्तुतीकरण जैसे अवययों के परिक्षण हेतु समूह चर्चा आकलन की समुचित विधि के रूप में व्याप्त है।

इस विधि के सफलतम क्रियान्यवन में शिक्षक की विशेष भूमिका होती है। सभी छात्रों के प्रति एक समान भाव, समूह चर्चा के दौरान छात्रों की प्रत्येक गतिविधि पर पैनी नज़र,आकलन प्रपत्र का निर्माण एवं अंकना जैसी महत्वपूर्ण गतिविधियों का निर्वहन शिक्षक द्वारा अनिवार्यत: सम्पादित की जाती है।

अग्रांकित बिन्दुओं को संज्ञान में रखते हुए समूह चर्चा द्वाराआकलन सफलतापूर्वक सम्पादित किया जा सकता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न: भाग 2

1. प्रोजेक्ट विधि के जन्मदाता कौन थे?
2. प्रोजेक्ट विधि में किन सिद्धांतों को लागू किया जाता है?
3. प्रेक्षण विधि के अंतर्गत किन साधनों का प्रयोग किया जाता है?
4. प्रस्तुतीकरण के कितने सोपान हैं?
5. समूह चर्चा से किन उपलब्धियों का आकलन किया जाता है?

16.4.7 आकस्मिक परीक्षा

छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान के स्थाईकरण के स्तर को, ज्ञानात्मक पक्ष के विभिन्न अव्ययों तथा तात्कालिक सजगता, ज्ञान को जानने हेतु आकस्मिक परीक्षण, आंकलन की एक प्रभावशाली विधि है। यद्दपि छात्रों द्वारा आकस्मिक परीक्षण को ज्यादा सराहा नहीं जाता पर फिर भी इस परिक्षण के लाभों के आधार पर इसे छात्रों के कक्षागत व्यवहार परिवर्तनों केआकलन हेतु प्रयुक्त करना सर्वथा उचित है।

छात्रों की अरुचि के चलते इस परिक्षण प्रणाली के क्रियान्यवन में शिक्षक की भूमिका बेहद अहम है। शिक्षक को आकस्मिक परिक्षण के विभिन्न अव्ययों यथा, परिक्षण की विषयवस्तु, परिक्षण पदों का निर्माण, अंकन पत्र, समय आदि कार्यों का सजगतापूर्वक चयन करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। एक अध्यापक को इस परिक्षण हेतु छात्रों को प्रोत्साहित करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। अतः परीक्षा में

दिए जाने वाले प्रश्नों का स्तर सरल एवं रूचि आधारित होने चाहिए। इस परिक्षण को क्रियान्वित करने हेतु निम्न आवश्यक तत्वों को दृष्टिगत रखना आवश्यक है।

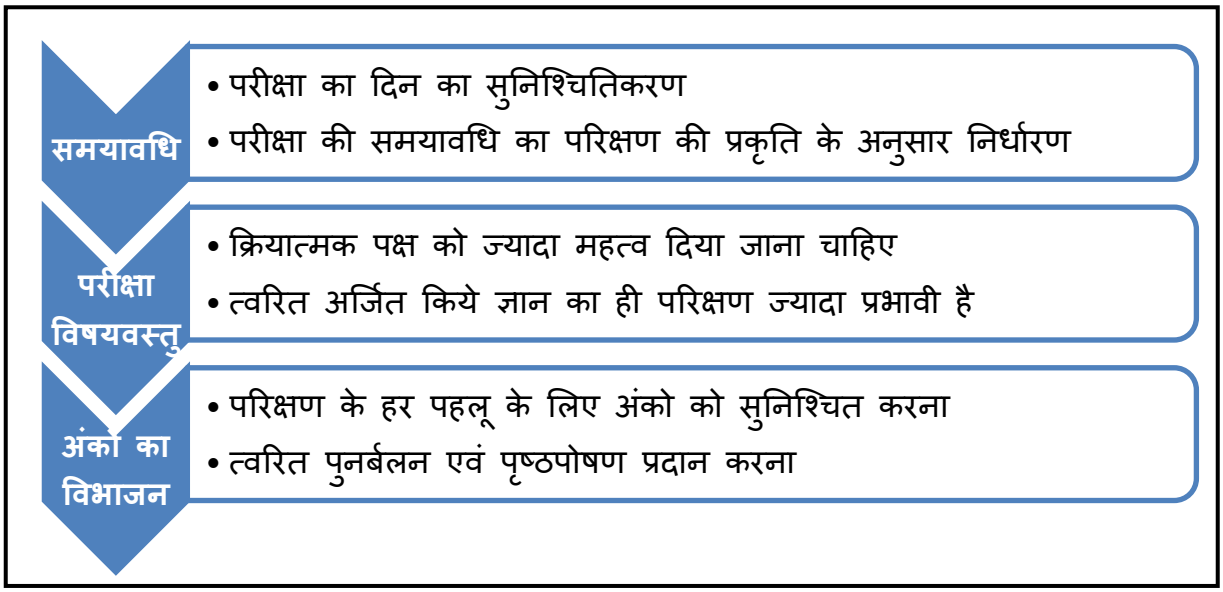

16.4.8 असामयिक परीक्षा

शाब्दिक अर्थानुसार 'बिना पूर्व समय निर्धारित परीक्षा',ऐसी परीक्षा जिसके लिए छात्रों को परीक्षा पूर्व उसके संचालन के समय की कोई सूचना प्रदान नहीं की जाती है। परीक्षणों की श्रेणी में असामयिक परिक्षण का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। असामयिक परीक्षणों के प्रति छात्रों में रूचि बहुत अधिक नहीं दिखती परन्तु, अर्जित ज्ञान के स्थाईकरण के स्तर केआकलन हेतु ये एक उत्तम विधि है। यह परीक्षण लम्बे अंतराल अथवा सूक्ष्म समयांतराल दोनों हेतु प्रयुक्त की जाती है। अतः इस प्रकार की परीक्षा के संचालन पूर्व परीक्षा उद्देश्यों का भली भांति निर्धारण करना आवश्यकीय है।

उद्देश्यों एवं छात्रों की योग्यताओं के आधार प्रश्नों का निर्माण कर छात्रों को समुचित प्रोत्साहन प्रदान करते हुए परीक्षा का संचालन किया जाना चाहिए। प्रश्नों की प्रकृति के आधार पर परीक्षा की समयावधि को घटाया अथवा बढाया जा सकता है।

16.4.9 पोर्टफोलियो आकलन

यह आकलन का वह उपकरण है जिसे छात्रों द्वारा विकसित किये शिल्प-तथ्यों के दस्तावेजीकरण के लिए प्रयुक्त किया जाता है। पोर्टफोलियो आकलन को एक प्रामाणिक और विश्वसनीय विधि माना जाता है। क्योंकि यह पारंपरिक आकलन

विधियों के विकल्प के रूप में स्थापित है। यह विधि अध्यापकों और छात्रों दोनों को पाठ्यवस्तु अधिगम के दस्तावेजीकरण ,पुनरावलोकन एवं विश्लेषण हेतु एक नियंत्रित स्थान प्रदान करता है। अर्थपरक रूप में पोर्टफोलियो छात्रों के कार्य का संकलन है जिसका आकलन विशिष्ट अनुदेशात्मक उद्देश्यों के आलोक में छात्रों के प्रयास और निष्पादन के साक्ष्यों के आधार पर किया जाता है।

पोर्टफोलियो आकलन छात्र स्वआकलन , समालोचनात्मक चिन्तन, विचारोत्प्रेरकता को प्रोत्साहित कर्ता है। यह सहकारी अधिगम क्रियाओं को सुगम बनाने में मदद करता है। इसके तहत लिखित नमूने, प्रयोगशाला आख्या, जर्नल्स, अभिलेखन,कलाएँ, दृश्यकला ,चित्रकला, अनुसन्धान पत्र, परियोजना आख्यायें, फ़ोटो, साक्षात्कार, परिक्षण, अवलोकन और प्रश्नोत्तरी आदि विषयवस्तु प्रयोग की जाती है। पोर्टफोलियो आकलन हेतु निम्नांकित तत्वों की नितांत आवश्यकता होती है।

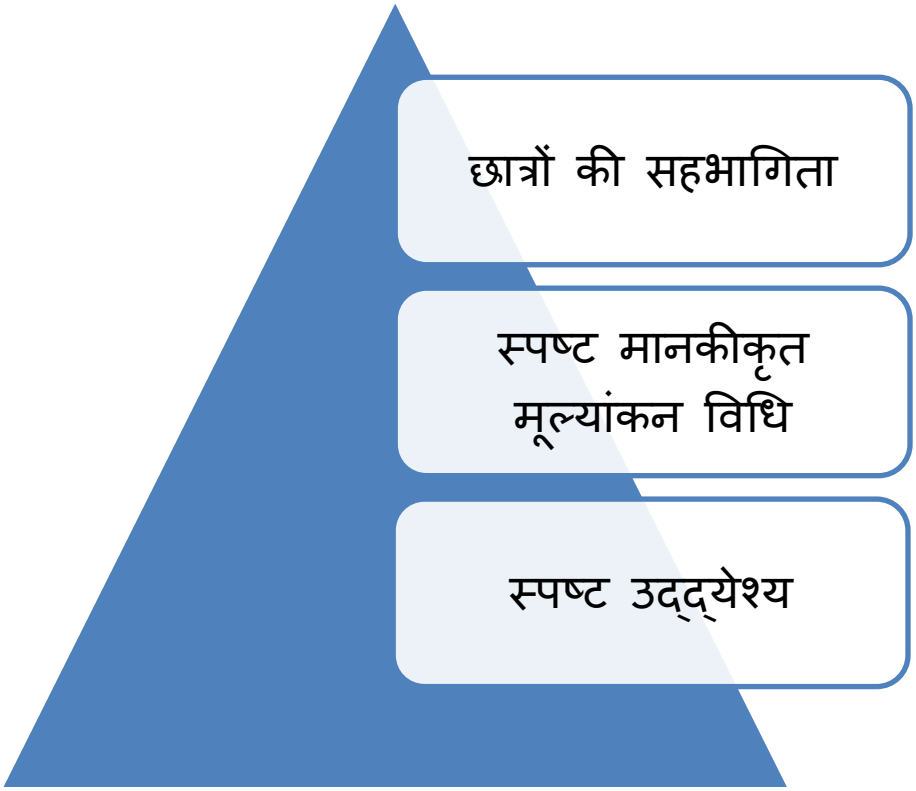

16.4.10 खुली पुस्तक परीक्षा

परीक्षाओं का इतिहास इस बात का साक्षी है की छात्रों पर परीक्षाओं में बेहतरीन प्रदर्शन करने का बेहद दबाब रहता है। यह दबाब अपने उच्चतम स्तर पर भयावह

रूप लेते हुए छात्रों के दिलोदिमाग में परीक्षा के प्रति भय का वातावरण बना देता है और इस दबाब को शिथिल अथवा कम करने के लिए छात्रों में रटने की प्रवृति, कुंजी से ज्ञानार्जन, अनुचित सामग्री का प्रयोग, व्यक्तिगत नक़ल, सामूहिक नक़ल एवं परीक्षाओं की गरिमा को भंग करने जैसी अवांछनीय आदतों का विकास होने लगता है। इसके फलस्वरूप छात्रों की बोधगम्यता, दक्षताओं एवं अनुप्रयोग जैसी क्षमताओं में प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है,साथ ही शिक्षण – अधिगम की प्रक्रियाओं में भी प्रश्न चिह्न लगता है।

परीक्षाओं के दबाब व इससे उत्पन्न होने वाले अवांछनीय कृत्यों को कम करने एवं छात्रों द्वारा परीक्षाओं की मौलिकता को बनाए रखने हेतु खुली पुस्तक परीक्षा एक सफलतम प्रविधि है। इसके तहत छात्रों को परीक्षाओं में पुस्तक से प्रश्न का सही उत्तर खोजकर लिखने की अनुमति होती है। परीक्षा की इस प्रक्रिया से उनके बोध, कौशल, संश्लेषण, विश्लेषण एवं अनुप्रयोग की मौलिकता बनी रहती है साथ ही रटने, नक़ल करने तथा अन्य अवांछनीय आदतों पर अंकुश लग जाता है और परीक्षा सम्बन्धी भय से निज़ात मिलती है। खुली पुस्तक परीक्षा में प्रश्नों का निर्माण सबसे चुनौतीपूर्ण कार्य है। प्रश्न एस तरह से निर्मित किये जाने चाहिए की छात्र उत्तरों को लिखने से पूर्व निर्धारित पुस्तकों से उचित उत्तरों का चयन समुचित रूप से कर सके। खुली पुस्तक परीक्षा आधारितआकलन हेतु प्रश्नों के निर्माण के पश्चात् उचित संदर्भित पुस्तक एवं पाठ्य पुस्तक की उपलब्धता, समय का निर्धारण महत्वपूर्ण कार्य है, जिसे पूरी सजगता के साथ क्रियान्वित किया जाना चाहिए। छात्रों को किसी भी दशा में कुंजी, गाइड या अन्य ऐसा साहित्य जो मानकानुसार न हो उसे प्रयोग में लाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। निर्धारित समय सीमा का कड़ाई से अनुपालन किया जाना बेहद जरूरी है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न: भाग 3

1. आकस्मिक विधि आकलन की प्रभावशाली विधि क्यों है?
2. असामयिक परीक्षा क्या है?
3. पोर्टफोलियो आकलन क्या है?
4. पोर्टफोलियो में किन तत्वों की आवश्यकता होती है?
5. खुली पुस्तक परीक्षा की आवश्यकता क्यों है?

16.5 सारांश

वर्तमान शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्रों को सृजनशील बनाना है। प्रत्येक छात्र के भीतर असीम क्षमता होती है। और इसी क्षमता के आधार पर वह ज्ञान का सृजन स्वयं करता है। प्राचीन परीक्षा प्रणाली से छात्रों का सिर्फ ज्ञानात्मक विकास होता था। छात्रों को विद्यालई गतिविधियों में इस प्रकार शामिल करना है ताकि वे ज्ञान का सृजन कर सके। इसलिए शिक्षा में परीक्षा प्रणाली को लचीला बनाने के लिए लगातार प्रयास किए जा रहे हैं। परंपरागत परीक्षा प्रणाली के स्थान पर अब लगातार छात्र की गतिविधियों का अवलोकन करने की बात की जा रही है। मूल्यांकन की इस नई तकनीक में आकलन को महत्वपूर्ण माना जा रहा है। आज हर समय छात्र के आकलन की आवश्यकता है क्योंकि ये माना जाता है की छात्र के भीतर असीम क्षमताएँ हैं। शिक्षक प्रतिदिन, प्रतिक्षण छात्र का अवलोकन करता है। विद्यालय परिसर में आते ही छात्र का आकलन आरम्भ हो जाता है। जिसमें शैक्षिक और गैर-शैक्षिक पक्ष दोनों ही सम्मिलित होते हैं। विषय के ज्ञान से हटकर भी छात्र का आकलन होना चाहिए। कोई छात्र यदि गणित में कमजोर है तो जरूरी नहीं की वह अन्य विषयों या गतिविधियों में कमजोर ही होगा। हो सकता है वह छात्र कला,संगीत, नृत्य, या अन्यसांस्कृतिक कार्यक्रम में बहुत अच्छा हो। बस उस छात्र की क्षमता को पहचानना है और उसे उसी के अनुसार प्रोत्साहित करना है। विद्यालयों में आकलन के कई तरीकों को अपनाया जाता है जैसे : प्रोजेक्ट कार्य व इसका प्रस्तुतिकरण, मासिक परीक्षाएँ, मौखिक परीक्षाएँ, अवलोकन, अचानक टेस्ट लेकर, समूह चर्चा आदि। इन सबसे छात्र का आत्मविश्वास मजबूत होता है। वह तार्किक व आलोचनात्मक ढंग से सोचने भी लगता है। परीक्षा का दबाव भी कम हो जाता है।

16.6 शब्दावली

प्रोजेक्ट विधि : 'करके सीखने' तथा 'अनुभव द्वारा अधिगम' के मूल सिद्धान्तों को फलीभूत करते हुए ये विधि छात्रों की न केवल संज्ञानात्मक अपितु संक्रियात्मक आकलन को सम्पादित करने अवसर प्रदान करती है।

निर्धारण मापनी : निर्धारण मापनी 3/5/7 बिन्दुओं तक व्यवहारिकता केआधार पर निर्मित की जाती है और निर्धारक द्वारा शिक्षण गतिविधि के तत्वों पर अपने ज्ञान के आधार पर अपेक्षित निशान अंकित करता है।

पुनर्बलन क्रिया जब छात्र कोई भी कार्य अच्छा करता है तब शिक्षक उसे प्रोत्साहित करता है तो छात्र उस कार्य को बार-बार करता है। यह सकारात्मक पुनर्बलन है ।

पोर्टफोलियो : पोर्टफोलियो छात्रों के कार्य का संकलन है जिसका आकलन विशिष्ट अनुदेशात्मक उद्देश्यों के आलोक में छात्रों के प्रयास और निष्पादन के साक्ष्यों के आधार पर किया जाता है।

16.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

भाग 1 :

4. प्रोजेक्ट एवं मौखिक परीक्षाएँ
5. मौखिक
6. झिझक घबराहट व संकोच ।
7. शाब्दिक रूप से ।
8. व्यक्तिगत विभिन्नताओं

भाग 2 :

1. किल्पेट्रिक
2. करके सीखना व अनुभव द्वारा सीखना
3. जाँच सूची, निर्धारण मापनी व साक्षात्कार ।
4. प्रस्तुतीकरण की विभिन्न सोपान :
   - प्रस्तुतीकरण के शीर्षक का चयन
   - उद्देश्यों का निर्धारण
   - प्रस्तुतीकरण की विधि का चयन
   - छात्रों द्वारा प्रस्तुतीकरण
   - प्रस्तुतीकरण के विभिन्न तत्वों का मूल्यांकन समुचित पृष्ठपोषण एवं पुनर्बलन
5. रचनात्मक

भाग 3 :

1. छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान के स्थाईकरण के स्तर को, ज्ञानात्मक पक्ष के विभिन्न अव्ययों तथा तात्कालिक सजगता, ज्ञान को जानने हेतु आकस्मिक परीक्षण, आंकलन की एक प्रभावशाली विधि है। ।
2. बिना पूर्व समय निर्धारित परीक्षा',ऐसी परीक्षा जिसके लिए छात्रों को परीक्षा पूर्व उसके संचालन के समय की कोई सूचना प्रदान नहीं की जाती है। :
3. पोर्टफोलियो आकलन का वह उपकरण है, जिसे छात्रों द्वारा विकसित किए शिल्प-तथ्यों के दस्तावेजीकरण के लिए प्रयुक्त किया जाता है।
4. पोर्टफोलियो में निम्न तत्वों की आवश्यकता होती है :

- छात्रों की सहभागिता
- स्पष्ट मानकीकृत मूल्यांकन विधि
- स्पष्ट उद्देश्य

5. परीक्षाओं के दबाब व इससे उत्पन्न होने वाले अवांछनीय कृत्यों को कम करने एवं छात्रों द्वारा परीक्षाओं की मौलिकता को बनाए रखने हेतु खुली पुस्तक परीक्षा एक सफलतम प्रविधि है।

16.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची .

- गुप्ता. एस.पी., आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन-11, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबादI
- **Ferguson,L.W., Personality Measurement. New York: Mc. Graw Hill Book Company, 1952.**
- **Scriven,M., "The Methodology of Evaluation": Rand Mc Naly and Company.**
- **Popham,W.J., Educational Evaluation. New Jersey: Prentice Hall, 1975.**

16.9 निबंधात्मक प्रश्न

4 आकलन से आप क्या समझते हैं? आकलन की विभिन्न रणनीतियों की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

5 प्रोजेक्ट विधि से आप क्या समझते हैं? सामाजिक विज्ञानं में किसी एक इकाई पर एक प्रोजेक्ट लिखिए।

6 लिखित परीक्षाओं से आप क्या समझते हैं? कक्षा 8 की लिखित परीक्षाओं के लिए छात्रों के ज्ञानात्मक, भावात्मक व क्रियात्मक पक्ष को ध्यान में रखते हुए किसी एक विषय के लिए प्रश्नपत्र का निर्माण कीजिए।

इकाई–17–आकलन: रणनीतियाँ एवं अभ्यास- भाग II

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 विश्लेषण
17.4 लेखन
17.5 व्याख्या
17.6 दस्तावेजीकरण
17.7 पृष्ठ पोषण
17.8 शिक्षा संबंधी निर्णय
17.9 सारांश
17.10 शब्दावली
17.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.12 सन्दर्भ ग्रन्थ
17.13 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

अधिगम की गुणवत्ता शिक्षण की गुणवत्ता से जुड़ी है। इसलिए यदि हमने छात्रों के अधिगम को सुधारना है तो निश्चित रूप से हमें अपने शिक्षण की गुणवत्ता को सुधारना होगा। इसके लिए शिक्षक को कुछ उद्देश्य निर्धारित करने होंगे : छात्र क्या सीख रहा है? सीखने का स्तर क्या है? कौन- कौन सी विधियाँ सीखने के लिए उपयुक्त होंगी? किस सामग्री से जल्दी सीख सकते हैं? शिक्षक प्रत्येक क्षण छात्र का आकलन करता रहता है । बात जब समावेशी कक्षाओं की होती है तो विविध प्रकार के छात्रों का सूक्ष्म आकलन एक समय में ही करना होता है। पिछली इकाइयों में आपने आकलन का विस्तार से अध्ययन किया है। शिक्षक द्वारा आकलन के लिए कई रणनीतियाँ बनाई जाती हैं। कुछ रणनीतियों का अध्ययन आप इकाई- 16 में कर चुके हैं। इन्हीं रणनीतियों के द्वारा शिक्षक छात्र के उपलब्धि स्तर को जानने का प्रयास करता है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम- 2009 के अंतर्गत NCF-2005 को प्रभावी बनाने के बावजूद, स्कूली पाठ्यचर्या में पढ़ना-लिखना काफी हद तक पाठ्य पुस्तकों तक ही सीमित रहा है । अधिकांश शिक्षकों का यही मानना है कि उनका मुख्य प्रयोजन निर्धारित पाठ्यक्रम को पूरा करना ही होता है। ऐसे में शिक्षक को छात्र की उपलब्धि स्तर का पता नहीं चल पता है। इस इकाई में आप आकलन की अन्य रणनीतियाँ जैसे- विश्लेषण, लेखन, व्याख्या, दस्तावेजीकरण, पृष्ठ पोषण एवं इन सबके अनुसार शिक्षा संबंधी निर्णय के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे ।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

1. आकलन में विश्लेषण को समझ सकेंगे।
2. आकलन में रिपोर्टिंग को समझ सकेंगे।
3. आकलन में व्याख्या को समझ सकेंगे।
4. आकलन में दस्तावेजीकरण को समझ सकेंगे।
5. आकलन में पृष्ठ पोषण को समझ सकेंगे।
6. इन सबके अनुसार शिक्षा संबंधी निर्णय को समझ सकेंगे।

17.3 विश्लेषण (Analysis)

विश्लेषण वह प्रक्रिया है, जिसमें कठिन विषयवस्तु को छोटे-छोटे टुकडों में बाँटा जाता है। इस तकनीकी का प्रयोग अरस्तु ने सबसे पहले गणित और विज्ञ जैसे कठिन विषयों के लिए

किया । वर्तमान में विश्लेषण का प्रयोग लगभग सभी विषयों में किया जाने लगा है । Analysis शब्द में दो शब्द हैं-Ana जिसका अर्थ है 'up' और lysis जिसका अर्थ है loosening अतः Analysis का अर्थ है – "a breaking up" अलग तरह से यदि विश्लेषण का अर्थ समझा जाय तो इसका अर्थ है " किसी भी चीज के बारे में विस्तृत परीक्षण" ।

छात्र के आकलन के उद्देश्य से छात्र के बारे में विस्तृत परीक्षण करना उसका विश्लेषण करना है। अध्यापक कक्षा में छात्रों का निरंतर आकलन करता रहता है। नियमित आकलन करना आवश्यक भी है। यदि रचनात्मक आकलन ठीक ढंग से किया जाय तो अध्यापक व छात्र दोनों को ही अंतिम ग्रेड प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होती । अधिगम तभी सफल हो सकता है जब अध्यापक छात्र को अच्छी तरह समझे। इसलिए वह छात्र के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से न देखकर उसका विश्लेषण करता है । अध्यापक निम्नलिखित तरीके से छात्र का आकलन कर सकता है :

छात्र के कार्य का विश्लेषण – छात्र के समस्त कार्यों का विश्लेषण जैसे – गृहकार्य, मासिक परीक्षा एवं अन्य गतिविधियाँ। जब शिक्षक छात्र के समस्त कार्यों का विश्लेषण करता है तो उसे छात्र संबंधी यह जानकारी मिलती है –

- छात्र का वर्तमान ज्ञान, रवैया और विषय संबंधी कौशल।
- कमजोरी, सामर्थ्य और पढ़ने का तरीका।
- भविष्य में किस तरह की सहायता की आवश्यकता है? (विशिष्ट या सामान्य)

विश्लेषण के लिए शिक्षकों के पास प्रारंभ में बच्चों का बेसलाइन आकलन होना चाहिए। छात्रों के कार्यों का विश्लेषण करके शिक्षक अपने अनुदेशन के तरीकों को भी बदल सकता है। ताकि वे भविष्य में अच्छा शिक्षण कर सकें।

बेसलाइन आकलन का प्रारूप :

छात्र का नाम ---------- कक्षा ----------

1. स्वच्छता - बहुत अच्छी / अच्छी/ सामान्य
2. प्रार्थना में उपस्थिति – नियमित / अनियमित
3. व्यवहार - अध्यापक से साथियों से
4. अनुशासन - बहुत अच्छा /अच्छा/ सामान्य
5. दक्षताएं - सुनना बोलना पढ़ना लिखना
6. विषयवस्तु की समझ – बहुत अच्छा / अच्छा / सामान्य

7. गतिविधियों में भागीदारी - बहुत अच्छी / अच्छी/ सामान्य
8. चीजों का रख रखाव - बहुत अच्छा /अच्छा/ सामान्य
9. कक्षा में प्रदर्शन - बहुत अच्छा /अच्छा/ सामान्य
10. आदतें - बहुत अच्छी / अच्छी/ सामान्य

17.4 लेखन (Reporting)

छात्र के बारे में विभिन्न सूचनाएं इकट्ठी करके अध्यापक उन सूचनाओं को क्रमबद्ध करता है, जिसे रिपोर्टिंग कहते हैं। रिपोर्टिंग आकलन की वह महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिससे छात्रों के बारे में जानकारी मिलती है कि वह क्या जानता है? और क्या कर सकता है? जिससे अध्यापक व छात्र दोनों ही भविष्य के लिए तैयारी कर सके। रिपोर्टिंग के द्वारा छात्र की उपलब्धि और अधिगम के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। सामान्यत: रिपोर्टिंग तीन प्रकार से की जाती है :

1. छात्र प्रगति रिपोर्ट कार्ड – भारत वर्ष के सभी विद्यालयों में छात्र की सूचना रिकार्ड करने का सबसे अच्छा तरीका रिपोर्ट कार्ड है।
   रिपोर्ट कार्ड बनाने से पहले शिक्षक इन बातों पर भी विचार कर सकता है जैसे-
   - प्रत्येक विद्यार्थी का प्रोफाइल तैयार किया जाय।
   - छात्र के कार्य के नमूने (लिखित, कला, शिल्प, परियोजनाएं, कविताएं आदि) पोर्टफोलियो में रखे जाएं।
   - छात्रों की किन्हीं असामान्य घटनाओं, परिवर्तनों, समस्याओं, शक्तियों और शिक्षण प्रमाणों को नोट किया जाय।

   रिपोर्ट कार्ड से छात्र के बारे में पूरी जानकारी मिल जाती है। यदि छात्र किसी दूसरे संस्थान में भी प्रवेश लेने जाता है तो इसी रिपोर्ट कार्ड के आधार पर उसे उसके पसंद के विषय में प्रवेश दिया जाता है। रिपोर्ट कार्ड से निम्नलिखित जानकारी मिलती है :
   - अभिभावकों को छात्र के बारे में व्यक्तिगत सूचना मिलती है।
   - छात्र के कमजोरी और सामर्थ्य वाले क्षेत्रों की पहचान की जाती है।
   - प्रगति रिपोर्ट कार्ड एक वर्ष के लिए बनाया जाता है।

   वर्तमान में छात्र प्रगति रिपोर्ट कार्ड इस तरह से बनाया जाता है :

भाग-1 शैक्षिक क्षेत्र

IA मुख्य विषय हिंदी अंग्रेजी संस्कृत गणित विज्ञान सामाजिक विज्ञान कम्पयूटर पर्यावरण विज्ञान सामान्य ज्ञान मूल्य शिक्षा कला आर्ट/क्राफ्ट	सत्र – 1 FA1 FA2 SA1 कुल 10% 10% 30% 50%	सत्र – 2 FA1 FA3 SA2 कुल 10% 10% 30% 50%	सत्र – I+II कुल कुल सम्पूर्ण ग्रेड FA SA ग्रेड बिंदु
उपस्थिति	कुल	कुल	ग्रेड

भाग 2A- गैर शैक्षिक क्षेत्र

जीवन कौशल	ग्रेड	विवरण
प्रभावशाली संचार		
सृजनात्मक चिंतन		
निर्णय लेने की क्षमता		
स्व-जागरूकता		
समस्या समाधान		

भाग 2B

गतिविधि	ग्रेड	विवरण
कार्य शिक्षा (ICT)		

भाग 2C

गतिविधि	ग्रेड	विवरण

दृश्य और प्रदर्शन कला		

भाग 2D

अभिवृत्ति एवं मूल्य	ग्रेड	विवरण
शिक्षक के लिए		
साथियों के लिए		

भाग 2E

गतिविधि	ग्रेड	विवरण
खेल		
योग एवं व्यायाम		
स्वास्थ्य	लम्बाई (m)	भार (kg)
अभिभावक-अध्यापक मीटिंग		

2. विद्यालय प्रगति रिपोर्ट कार्ड – प्रत्येक विद्यालय स्तर पर वहाँ के स्थानीय लोगों के लिए एक वार्षिक रिपोर्ट तैयार की जाती है, जिसमें विद्यालय की प्रगति और उपलब्धियों के बारे में जानकारी दी जाती है।
3. प्रणाली रिपोर्ट – प्रत्येक जिले, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर पूरे विभाग की रिपोर्ट तैयार की जाती है। इसी रिपोर्ट के आधार पर शिक्षा संबंधी आवश्यक सुधार किए जाते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न भाग 1

1. विश्लेषण का का प्रयोग ..... ने सबसे पहले गणित और विज्ञान जैसे कठिन विषयों के लिए किया।
2. विश्लेषण के लिए शिक्षकों के पास प्रारंभ में बच्चों का ..... होना चाहिए।
3. सूचनाओं के क्रमबद्ध करने को ..... कहते हैं।

17.5 दस्तावेजीकरण

छात्र का आकलन करने के लिए शिक्षक विभिन्न उपकरणों का प्रयोग करता है । उदहारण के लिए शिक्षक प्रतिदिन छात्र का अवलोकन करता है । इस अवलोकन के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों को वह रिकॉर्ड के रूप में अपने पास सुरक्षित रखता है, जिसे दस्तावेजीकरण कहते हैं। छात्र के रिकॉर्ड को अपने पास सुरक्षित रखने के कई तरीके हैं : जैसे- फोटो, वीडियो,आडियो रिकॉर्डिंग आदि । ये आकलन के लिए

छात्र के दस्तावेजीकरण के महत्वपूर्ण तरीके हैं । जब छात्र अपने साथियों के साथ महत्वपूर्ण प्रोजेक्ट बना रहे होते हैं, किताब पढ़ रहे होते हैं या अन्य गतिविधियाँ कर रहे होते हैं तो उनके द्वारा किए गए कार्यों को शिक्षक अपने पास सुरक्षित रख लेता है । अब शिक्षक इस दस्तावेजीकरण को विभिन्न माध्यमों से दिखाता भी है । जैसे- डिस्प्ले बोर्ड, स्क्रैप बोर्ड, एलबम, वेबसाइट एवं ईमेल और अभिभावकों के लिए newsletters. सभी तरह के दस्तावेजीकरण में शीर्षक और बच्चे के कार्य की फोटो होनी जरूरी है ।

इस प्रकार शिक्षक प्रत्येक छात्र से सम्बंधित फाइल बनाकर उन्हें सुरक्षित रख सकता है।

17.6 पृष्ठपोषण

Feedback is the breakfast of champions."- Ken Blanchard

अध्ययन - अध्यापन प्रक्रिया में पृष्ठपोषण महत्वपूर्ण भाग है । पृष्ठपोषण द्वारा छात्रों को उचित दिशा निर्देशन प्राप्त होता है। यह छात्रों के अधिगम स्तर में सुधार तथा परीक्षा में सफलता के लिए आवश्यक है । पृष्ठपोषण के मुख्य उद्देश्य हैं:

- छात्र के कार्य को विशिष्टता प्रदान करना ।
- छात्र को दिशा निर्देश देना ।
- छात्रों को स्व-अधिगम व स्वाकलन के लिए प्रेरित करना ।
- छात्र को आलोचनात्मक ढंग से सोचने के योग्य बनाना ।
- अपने अधिगम को नए तरीके से देखने के योग्य बनाना ।
- शिक्षक व छात्र के बीच अंत:क्रिया को बढ़ावा देने में सहायता करना ।

- छात्र को प्रोत्साहित करना।
- छात्र में सकारात्मक व्यवहार को बढ़ावा देना।

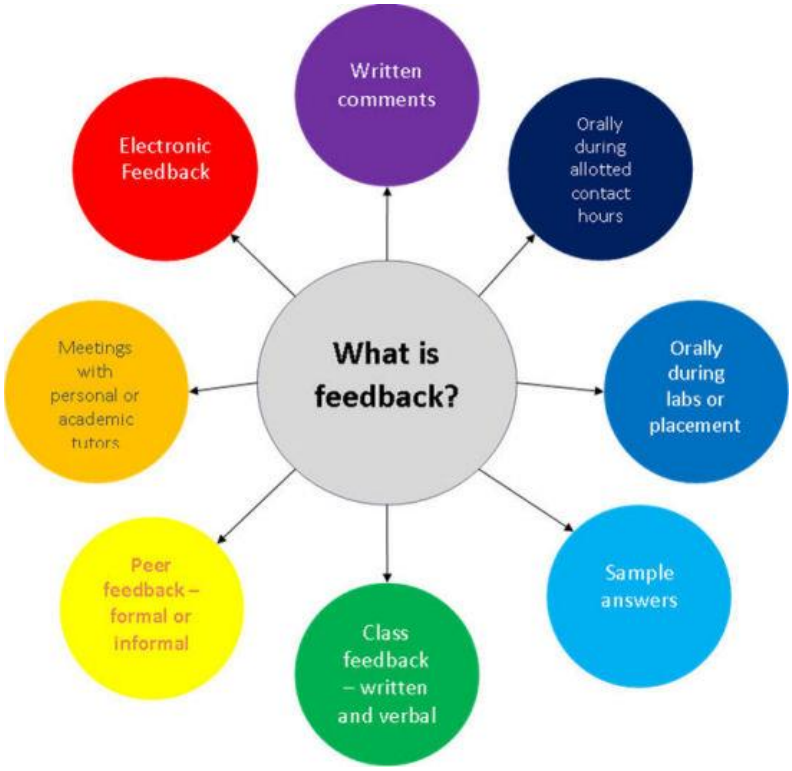

पृष्ठपोषण के कुछ उदाहरण:

यदि बच्चा कक्षा में देरी से आता है तो अध्यापक को उसे डाटने के बजाय यह कहना चाहिए – बेटा आप तो रोज समय पर आते हो आज किस कारण देरी से आए ? तबियत तो ठीक है न ।

कापी में अच्छा व साफसुथरा कार्य न करने पर – आप तो बहुत अच्छा कार्य करते हो । यदि इस कार्य को आपने इस तरह से किया होता तो ज्यादा अच्छा होता । अध्यापक के रूप में आप हमेशा सकारात्मक पृष्ठपोषण का ही प्रयोग करें । जैसे- Good, Exillent, बेहतरीन, Well done आदि । अध्यापक के चेहरे के हाव भाव भी सकारात्मक होने चाहिए ।

पृष्ठपोषण मुख्यत: दो प्रकार से कार्य करता है । प्रथम, यह छात्रों को को अध्ययन करने के सम्बन्ध में उपयोगी निर्देशन प्रदान करता है तथा द्वितीय, यह छात्रों को भावी अध्ययन के लिए अभिप्रेरणा प्रदान करता है । पूर्ववर्ती प्रयास की सफलता/असफलता के ज्ञान के आधार पर ही व्यक्ति अपनी क्रियाओं का सही ढंग से नियोजन कर सकता है । जब तक छात्रों को अपनी कमियों का ज्ञान नहीं होगा

तब तक वह उनको दूर करने का प्रयास नहीं कर सकता है। अधिक अंक प्राप्त करने के लिए सघन प्रयास करने की योजना बनाने के लिए वर्तमान उपलब्धि का ज्ञान आवश्यक है। यह ज्ञान केवल अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक परीक्षाओं के द्वारा ही प्राप्त नहीं होता है, वरन दिन-प्रतिदिन के कक्षा शिक्षण में भी छात्रों को अनेक प्रकार के छोटे-छोटे निर्णयों को लेने के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है, जिन्हें कक्षा अध्यापक मूल्यांकन की सहायता से ही ठीक प्रकार दे सकता है। पृष्ठपोषण द्वारा छात्र अभिप्रेरित होते हैं। यदि उन्हें सकारात्मक पृष्ठपोषण मिलता है तो उनमें अभिप्रेरणा बढ़ती है और नकारात्मक पृष्ठपोषण से अभिप्रेरणा में कमी होती है।

17.7 व्याख्या

सूचना और प्रमाण एकत्रित और अभिलिखित हो जाने के पश्चात उसकी व्याख्या करना जरूरी है। ताकि यह समझा जा सके कि प्रत्येक छात्र किस प्रकार सीख रहा है और प्रगति कर रहा है। इस पर सावधानी से विचार करने के आवश्यकता होगी। फिर उन निष्कर्षों के आधार पर काम करते हुए शिक्षक छात्रों को पृष्ठपोषण देकर, नए संसाधन खोजकर, समूहों को पुनर्व्यवस्थित कर या किसी अधिगम बिंदु को दोहराकर अधिगम को बेहतर करने का प्रयास कर सकते हैं। छात्र की प्रगति रिपोर्ट कार्ड के आधार पर स्पष्ट तौर उसकी तुलना दूसरे छात्र से की जा सकती है।

17.8 अध्यापक संबंधी निर्णय

अध्यापक का कार्य होता है छात्रों के विचारों, अवधारणाओं तथा चिंताओं को बाहर निकलना। शिक्षक द्वारा छात्र हित के लिए निर्णय लेना एक क्रमबद्ध, समर्पित प्रयास, आकलन एवं चिंतन का उत्पाद है। एक अच्छे निर्णय हेतु अध्यापक को निश्चित क्रमबद्ध चरणों का पालन करना होता है। जो निम्नलिखित है:

समस्या की पहचान ⟶ समस्या का निदान ⟶ विकल्पों की खोज ⟶ ⟶ विकल्पों का आकलन ⟶ उत्तम विकल्प का चयन ⟶ निर्णय का क्रियावयन व जाँच।

- समस्या की पहचान – अध्यापक को छात्रों की समस्याओं की पहचान करनी अति आवश्यक है। छात्रों की समस्या व्यक्तिगत भी हो सकती है, सामूहिक भी।
- समस्या का निदान - समस्या की पहचान के पश्चात उसके निश्चित स्वरुप एवं कारणों का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। कभी- कभी अध्यापक

किसी तथ्य को समझकर उसका समाधान ढूँढने में लग जाते हैं, जबकि वास्तविक समस्या कुछ और ही होती है।

- विकल्पों की खोज – समस्या व उसके कारणों का पता लगाने के पश्चात अध्यापक की दृष्टि उसके समाधान पर रहती है। समाधान के लिए वह अनेक विकल्पों की खोज करता है। समस्त समाधान किन- किन माध्यमों से हो सकता है। इसका ज्ञान होने पर ही वह किसी एक समाधान को चुनता है।
- विकल्पों का आकलन - विकल्पों की खोज के पश्चात उनका विश्लेषण एवं आकलन होना आवश्यक है, ताकि यह पता लगाया जा सके कि कौन सा विकल्प समस्या समाधान हेतु उपयोगी है।
- उत्तम विकल्प का चयन – विकल्पों के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन करने के पशचात उपलब्ध विकल्पों से अधिकतम योग्य विकल्प के चयन की बारी आती है। सदैव ऐसे विकल्प का चयन करना चाहिए जो कि निश्चित उद्देश्यों के परिणाम की प्राप्ति हेतु निरंतर कारगर साबित हो।
- निर्णय का क्रियान्वयन व जाँच – विकल्प के चयन के पश्चात उससे जुड़े निर्णय के क्रियान्वयन की बारी आती है। अध्यापक छात्र हित में कुछ निर्णय लेता है। निर्णय के क्रियांवयन के पश्चात भी उसका मूल्यांकन किया जाता है। इस प्रकार अध्यापक को अपने निर्णय से सम्बंधित जानकारी मिल जाती है कि निर्णय कितने प्रभावी रहे हैं अथवा कितने अप्रभावी।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न भाग 2

1. दस्तावेजीकरण के महत्वपूर्ण तरीके कौन-कौन से हैं?
2. पृष्ठपोषण के कोई दो उद्देश्य लिखिए।
3. अध्यापक संबंधी निर्णय के मुख्य चरण लिखिए।

17.9 सारांश

शैक्षिक आकलन छात्रों के कौशल, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अभिलेखीकरण है। यह छात्रों की उपलब्धियों और योग्यताओं को प्राप्त करने का एक उपकरण है। इससे छात्र की प्रगति का निरंतर पता चलता रहता है। आकलनों का महत्त्व मूल्यांकन करने के औजारों की तरह है क्योंकि ये शैक्षणिक प्रक्रियाओं तथा उनके परिणामों के बारे में बुनियादी

सवालों - हम कक्षाओं में क्या पढ़ा रहे हैं, विद्यार्थी सीखने की सामग्री के साथ किस तरह काम कर रहे हैं, स्कूल के परिवेश में कैसा ज्ञान दिया जा रहा है, सीखी गई बातों को विद्यार्थी किस तरह आत्मसात और उपयोग कर रहे हैं, संसार के जानकार तथा फिक्रमन्द नागरिकों के रूप में विद्यार्थी कैसे विकसित हो रहे हैं? - के उत्तर देने में मदद करते हैं। आकलन से प्राप्त आकडों का विश्लेषण करके अध्यापक उनका लेखन, व्याख्या, और दस्तावेजीकरण करता है। उसके पश्चात पृष्ठपोषण प्रदान करके शैक्षिक निर्णय लेता है। इस इकाई में आपने इन्हीं रणनीतियों का विस्तार से अध्ययन किया है।

17.10 शब्दावली

विश्लेषण - जिसमें कठिन विषयवस्तु को छोटे-छोटे टुकडों में बाँटा जाता है। इस तकनीकी का प्रयोग अरस्तु ने सबसे पहले गणित और विज्ञान जैसे कठिन विषयों के लिए किया।

दस्तावेजीकरण- किसी भी रिकॉर्ड को अपने पास सुरक्षित रखना दस्तावेजीकरण कहलाता है।

पृष्ठपोषण - पृष्ठपोषण द्वारा छात्रों को उचित दिशा निर्देशन प्राप्त होता है। यह छात्रों के अधिगम स्तर में सुधार तथा परीक्षा में सफलता के लिए आवश्यक है ।

17.11 स्वमूल्यंकित प्रश्नों के उत्तर

भाग 1:

1. अरस्तु
2. बेसलाइन आकलन
3. रिपोर्टिंग

भाग 2:

1. फोटो, वीडियो,आडियो रिकॉर्डिंग आदि ।
2. पृष्ठपोषण के कोई दो उद्देश्य:
    - छात्र के कार्य को विशिष्टता प्रदान करना ।
    - छात्र को दिशा निर्देश देना ।
3. अध्यापक संबंधी निर्णय के मुख्य चरण:
    - समस्या की पहचान →
    - समस्या का निदान
    - विकल्पों की खोज

- विकल्पों का आकलन
- उत्तम विकल्प का चयन
- निर्णय का क्रियावयन व जाँच।

17 12. संदर्भ ग्रन्थ सूची

- शर्मा महेश,&महरोत्रा,ममता,(2011), शिक्षा का अधिकार, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, ISBN-978-81-7315-931-2
- www.google.com- assessment- analysis and documentation
- गुप्ता,अल्का,गुप्ता, बी.एस.पी, दूरस्थ शिक्षा, शारदा पुस्तक भंडार, इलाहाबाद।
- IGNOU, ES-333, शैक्षिक मूल्यांकन,अध्येता मूल्यांकन।

17 13. निबन्धात्मक प्रश्न

1. दस्तावेजीकरण से क्या अभिप्राय है? आप छात्रों के रिकॉर्ड को सुरक्षित रखने के लिए किस प्रकार के दस्तावेज का प्रयोग करेंगे?व्याख्या कीजिए।
2. पृष्ठपोषण क्या है ? इसकी कक्षा कक्ष में आवश्यकता पर एक निबंध लिखिए।
3. एक योग्य अध्यापक छात्र हित के लिए किस प्रकार के निर्णय लेता है ? उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए

ईकाई- 18- विशिष्ट आवश्यकता के बालकों का मूल्यांकन: छूट, सुविधाएं, अनुकूल, उपान्तरण एवं अनुग्रहण

18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3 मूल्यांकन का अर्थ

18.4 मूल्यांकन के प्रकार

18.5 मूल्यांकन के चरण

18.6 सुविधाएं

18.6.1 अनुग्रहण

18.6.2 उपान्तरण

18.6.3 अनुकूलन

18.7 सारांश

18.8 शब्दावली

18.9 स्वमूल्यंकित प्रश्नों के उत्तर

18.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

18.11 निबंधात्मक प्रश्न

18.1- प्रस्तावना

मूल्यांकन किसी व्यक्ति के प्रदर्शन का आकलन करने हेतु की जाने वाली प्रक्रिया है। विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों के मूल्यांकन की विधि व प्रक्रियाएं सामान्य बालकों की तुलना

में भिन्न होती है। ऐसे बालकों का मूल्यांकन हेतु अध्यापक स्व-निर्मित मूल्याकन परीक्षण का प्रयोग अत्यधिक करता है। विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों को विशेष सुविधाएं छूट देना अति आवश्यक होता है। इन बालकों के अनुग्रहण, अनुकूलन व उपान्तरण सुधार हेतु शिक्षक को जागरूक होना अति आवश्यक होता है। विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों की जरूरतें क्षमताएं व प्रदर्शन भी विशिष्ट होते हैं। ऐसे बालकों के मूल्यांकन में यदि ध्यान न दिया जाय तो ये बच्चे भटक भी सकते है। चूंकि विशिष्ट बालक भी समाज का एक हिस्सा है अतः इन्हें भी समाज की मुख्यधारा से जोड़ना अति आवश्यक है। इस ईकाई में हमारा प्रयास है कि आपको मूल्यांकन के अर्थ, प्रकार व विभिन्न अंगों से परिचित करा दें। विशिष्ट बालकों के मूल्यांकन की समुचित परिभाषा तक पहुंचने के लिये हमने इस क्षेत्र के विभिन्न विचारकों के विचार आपके लिये प्रस्तुत किया है जो इसकी विशेषताओं का समझाने में मदद करेगें साथ ही हमने विशिष्ट आवश्यकता के बालकों को दी जाने वाली सुविधाएं, छूट को बताने का प्रयास किया है तथा इन बालकों के अनुग्रहण अनुकूलन व उपान्तरण को समझाने का प्रयास किया है।

18.2-उद्देश्य

इस ईकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

1. मूल्यांकन का अर्थ बता सकेंगे ।
2. मूल्यांकन के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे।
3. मूल्यांकन के विभिन्न चरणों का वर्णन कर सकेंगे।
5. मूल्यांकन के चरणों में अन्तर समझ सकेंगे।
6. विशिष्ट आवश्यकता के बालकों के मूल्यांकन छूट की व्याख्या कर सकेंगे।
7. विशिष्ट आवश्यकता के बालकों के अनुग्रहण को समझ सकेंगे।
8. विशिष्ट आवश्यकता के बालकों के अनुकूल की व्याख्या कर सकेंगे।
9. विशिष्ट आवश्यकता के बालकों के उपान्तरण को समझ सकेंगे।

18.3-मूल्यांकन का अर्थ

मूल्यांकन का प्राथमिक उद्देश्य सूचना व डेटा एकत्रित करना है, डेटा कई रूपों में हो सकता है। जैसे- परीक्षण प्राप्तांक, अभिक्रियाएं, प्रश्नावली, रेटिंग इत्यादि। मूल्यांकन अध्यापक व विद्यार्थी को यह जानने के योग्य बनाता है कि अधिगम की गुणात्मक व गहराई कितनी हो सकती है।

18.4-मूल्यांकन के प्रकार

मूल्यांकन एक सामान्य शब्द है। जिसमें सूचनाओं का संग्रहण, विश्लेषण व प्रस्तुतिकरण विभिन्न तरीकों से किया जाता है। सामान्यतः विद्यार्थियों के अधिगम का मूल्यांकन अध्यापक 3 प्रकार से करता है- मानकीकृत परीक्षण, व्यवसायिक रूप से निर्मित मूल्यांकन परीक्षण, अध्यापक निर्मित मूल्यांकन परीक्षण।

18.4.1-मानकीकृत परीक्षणः-

साधारण शब्दों में परीक्षण से आशय ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें विषय-वस्तु विधि एवं निष्कर्ष सभी समरूप से निश्चित है तथा जिसके लिये किन्हीं निश्चित मानकों को निर्धारित किया जाता है।

सी0 वी0 गुड के अनुसार "एक मानकीकृत परीक्षण वह परीक्षण है जिसमें विषय-वस्तु का चयन अनुभव के आधार पर किया गया हो, जिसके मानक ज्ञात हो, जिसके प्रशासन एवं फलांकन की समरूप विधियों को विकसित किया गया हो तथा फलांकन को वस्तुनिष्ठ विधि से किया गया हो।" मानकीकृत परीक्षण दो प्रकार के होते हैं । आदर्श सन्दर्भित परीक्षण ; (Norm Referenced Test) व कसौटी सन्दर्भित परीक्षण (Criteria Referenced Test).

- **आदर्श सन्दर्भित परीक्षण (Norm Referenced Test): में किसी विशेष परीक्षण में विद्यार्थी के प्रदर्शन की तुलना अन्य विद्यार्थियों से प्रदर्शन से किया जाता है।**

- **कसौटी सन्दर्भित परीक्षण (Criteria Referenced Test): में विद्यार्थी के प्रदर्शन का मूल्यांकन किसी निश्चित विषयवस्तु के प्रवीणता के सापेक्ष किया जाता है।**

18.4.2.-व्यवसायिक रूप में निर्मित मूल्यांकन परीक्षण:

कक्षा में अनुदेशन हेतु प्रयुक्त होने वाले कई पाठ्यपुस्तकें, सहायक सामग्रियों व्यवसायिक निर्मित मूल्यांकन परीक्षण में आते हैं। इन परीक्षणों का प्रयोग छटनी, निदानात्मक अधिगम समस्याएं, प्रगति निरीक्षण व विशिष्ट अनुदेशन कार्यक्रम में अधिगमकर्त्ता के परिणामों की जाँच हेतु किया जाता है। ये परीक्षण अध्यापक द्वारा पढ़ाये गये विषयवस्तु का वास्तविक मूल्यांकन करते हैं।

18.4.3-अध्यापक निर्मित मूल्यांकन परीक्षण:-

वे परीक्षण जिन्हें अध्यापक अपने कक्षा मूल्यांकन हेतु निर्माण करता है। इन्हें निर्मित करने में अध्यापक को कठिनाई के स्तर को विद्यार्थियों के अनुकूल बनाना महत्वपूर्ण होता है। अध्यापक शिक्षण से पहले जिन उद्देश्यों का निर्धारण करता है। उन्हीं को ध्यान में रखते हुए परीक्षण निर्मित करता है इस परीक्षण में अध्यापक निबन्धात्मक, लधुउत्तरीय व बहुविकल्पीय प्रश्नों को सम्मिलित करता है।

18.5 मूल्यांकन के चरण

कक्षागत शिक्षण में विद्यार्थियों के सम्प्रत्यय व कौशलों के अधिगम को जानने हेतु विद्यार्थियों का परीक्षण किया जाता है यह परीक्षण तीन चरणों में पूर्ण किया जाता है

(1) पूर्व मूल्यांकन (pre evaluation) ⑵ जारी मूल्यांकन (ongoing evaluation) ⑶ अन्तिम मूल्यांकन (final evaluation)

1. **पूर्व मूल्यांकन (pre evaluation) - पूर्व मूल्यांकन विद्यालय के प्रारम्भ में अथवा अनुदेशन की ईकाई के प्रारम्भ में की जानी वाली नियमित प्रक्रिया है, यह अध्यापक को विद्यार्थियों हेतु उपयुक्त अनुदेशन प्रक्रिया को चयनित करने सम्बन्धित निर्णय लेने में मदद करता है। विद्यार्थियों की पूर्व उपलब्धि एवं पूर्व परीक्षण के आधार पर पूर्व मूल्यांकन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सामान्य अवलोकन**

व वार्तालाप से विद्यार्थियों की रूचि, कार्य आदतों व व्यक्तिगत गुणों से अवगत हो सकते हैं। यह सूचना विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने हेतु भी उपयुक्त होती है।

2. जारी मूल्यांकन (**ongoing evaluation**) - यह मूल्यांकन शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के दौरान सूचना प्रदान करता है व विद्यार्थियों के कार्यों के निष्पादन को विश्लेषित करने में सहायता प्रदान करता है। जारी मूल्यांकन में व्यापक व विविध सूचना संग्रहित तकनीकी सम्मिलित रहती है। जब अध्यापक दैनिक च साप्ताहिक प्रश्नोत्तरी देना व विविध प्रदर्शन का क्रमिक अवलोकन कर रहा होता है व जारी मूल्यांकन ही संचालित कर रहा होता है, जारी मूल्यांकन विशेष रूप से दो प्रकार का होता हैं

    - स्व मूल्यांकन- इस प्रक्रिया में विद्यार्थी अपने कार्य व्यवहार व प्राप्त उपलब्धि का स्वतः मूल्यांकन करता है यह मूल्यांकन विद्यार्थियों को अधिगम प्रक्रिया में बाँधने का उपयुक्त तरीका माना जाता है।
    - पाठ्यक्रम आधारित मूल्यांकनः- यह शिक्षण के सम्बन्ध में समय-समय पर विद्यार्थियों के प्रदर्शन का नियतकालीन मूल्यांकन है। यह अध्यापक को उनके विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम को प्रगति से अवगत कराता है।

3. अन्तिम मूल्यांकन (**final evaluation**) - यह मूल्यांकन ईकाई के अन्त में सेमेस्टर व वर्ष के अन्त में पढ़ाये गये विषय वस्तु के अधिगम को जानने हेतु किया जाता हो यह मूल्यांकन निम्न उद्देश्य हेतु किया जाता है

- विद्यार्थियों के ग्रेड निर्धारित करना ।
- विद्यार्थियों के उपलब्धि की प्रमाणित करना।
- पदोन्नति हेतु आधार प्रदान करना।
- अभिभावकों व अध्यापकों को विद्यार्थी के प्रदर्शन से सम्बन्धित सूचना प्रदान करना।

अन्तिम मूल्यांकन लिखित परीक्षा, प्रदर्शन परीक्षण (प्रयोगशाला परीक्षण, मौखिक विवरण), प्रोजेक्ट (थीम, चित्रकारी व शोध विवरण) द्वारा किया जा सकता है, अन्तिम मूल्यांकन का मुख्य सम्बन्ध विद्यार्थियों का विषयवस्तु की प्रधानता की जाँच करना होता है।

पूर्व, जारी व अन्तिम मूल्यांकन की तुलना

	पूर्व मूल्यांकन	जारी मूल्यांकन	अन्तिम मूल्यांकन

उद्देश्य	➢ अनुदेशन के प्रारम्भिक बिन्दुओं की पहचान ➢ विद्यार्थियों के पूर्वपेक्षित कौशल का निर्धारण	➢ अनुदेशन को निर्देशित करने हेतु प्रतिपुष्टि प्रदान करना	➢ अनुदेश नतीजे मूल्यांकि प्रदान
समय सीमा	➢ अनुदेशन के प्रारम्भ में	➢ नियमित, सतत व समयकालिक	➢ अनुदेश में
मूल्यांकन के प्रकार	➢ पूर्व परीक्षण ➢ निदानात्मक परीक्षण ➢ नियोजन परीक्षण	➢ पाठ्यक्रम आधारित परीक्षण ➢ अध्यापक निर्मित परीक्षण ➢ स्वतः मूल्यांकन	➢ ईकाई परीक्षा परीक्षा

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न : भाग 1

1. **मूल्यांकन का क्या तात्पर्य है?**
2. **अध्यापक निर्मित मूल्यांकन का क्या अर्थ है?**
3. **मूल्यांकन के कितने चरण हैं?**

18.6 छूट सुविधा

जिन अधिगमकर्ताओं में गहन शारीरिक अक्षमतायें पाई जाती है उनके मूल्यांकन हेतु जो विभिन्न प्रविधियाँ अपनाई जाती हैं, वे मूल्यांकन सुविधा या छूट कहलाती है।

आवश्यकतानुसार मूल्यांकन छूट तीन प्रकार ही होती है-

1. **अनुग्रहण** (Accommodation)
2. अनुकूलन (Adaptation)
3. उपान्तरण (सुधार) (Modification)

18.6.1 अनुग्रहण-

इस प्रकार की मूल्यांकन छूट में छात्रों द्वारा किये गये कार्य का मूल्यांकन विभिन्न ढंग से प्रशासित एवं प्रस्तुत किया जाता है। अनुग्रहण को प्रभावित करने वाले दो कारक हैं-

- **मूल्यांकन व्यवस्था (मूल्यांकन का स्थान व अधिगमकर्ताओं की संख्या)**
- **मूल्यांकन का समय ज्यादा समयावधि व मूल्यांकन के दौरान अधिक अन्तराल देना)**

18.6.2 उपान्तरण

उपान्तरण एक प्रकार का संशोधित मूल्यांकन है क्योंकि इसमें मूल्यांकन सामग्री को आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया जाता है । अर्थात मूल्यांकन सामग्री के कुछ वर्गों को हटाकर नये वर्गो को सम्मिलित किया जाता है। परिणाम के आधार पर मूल्यांकन का अर्थ यह होगा कि शिक्षक अधिगमकर्ता की अक्षमता को ध्यान में रखते हुए प्रकरण के प्रश्नों की प्रकृति में परिवर्तन कर छात्रों का उचित मूल्यांकन कर सकता है। तदापि मूल्यांकन के परिणामों में अन्तर होगा, क्योंकि मूल्यांकन में प्रयुक्त उपकरण पृथक होगें । इस कारण इस प्रकार की मूल्यांकन छूट में मूल्यांकन तुल्यता सामान्य एवं विशिष्ट छात्रों के मध्य निम्न स्तर की होगी।

18.6.3 अनुकूलन

इस प्रकार की मूल्यांकन छूट में, मूल्यांकन सामग्री में इस उद्देश्य से परिवर्तन लाया जाता है ताकि उनको दूसरे उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये अनुकूलित किया जा सके । अर्थात् एक मूल मूल्यांकन उपकरण को संशोधित कर किसी अन्य उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु लचीला बनाया जा सके।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सुधार हेतु कई विकल्प खोजे जा रहे हैं, जिससे नागरिकों के शिक्षा के प्रति मूलभूत अधिकारों को सुनिश्चित किया जा सके एवं सभी नागरिकों को समान शिक्षा प्राप्त हो सके।

इसके अन्तर्गत उन नागरिकों को सम्मिलित किया जाता है, जिनमें किसी प्रकार की शारीरिक अक्षमताएं पाई जाती हैं तथा वह विद्यार्थी जिनकी शैक्षिक आवश्कताओं की पूर्ति प्रचलित विधियों द्वारा नहीं हो पाती है। प्रचलित शिक्षा प्रणाली की मुख्य बाधा मूल्यांकन प्रणाली का जटिल होना है। जिसका सर्वाधिक प्रभाव शरीरिक रूप से अक्षम विद्यार्थियों के अधिगम पर पड़ता है। अत: विशिष्ट आवश्यकता वाले बालको के अधिगम को सरलीकृत हेतु अधिगम व मूल्यांकन की विभिन्न प्रविधियों का प्रयोग किया जाना चाहिये। "Curriculum assessment guidelines for inclusion (2002)" के अनुसार शिक्षा प्रणाली मूल्यांकन प्रणाली के विभिन्न स्वरूपों को खोजकर विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों के अधिगम को सरल बनाने हेतु प्रतिबद्ध है।

विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों के अधिगम को सरल बनाने हेतु शिक्षक निरन्तर निर्देशों व मूल्यांकन सामग्रियों मे सुधार करते हैं। नियमित कक्षा कक्ष की परिस्थितियों में मूल्यांकन छूट को हमेशा स्वीकार्य नहीं किया जा सकता परन्तु युक्ति संगत परिस्थितियों में अनुग्रहण दिया जा सकता है अर्थात् शिक्षण व मूल्यांकन के मध्य में इस प्रकार का तारतम्य स्थापित किया जाए जिससे अधिकतम को सरल भी बनाया जा सके व छात्र के वास्तविक ज्ञान का उचित मूल्यांकन भी हो सके परन्तु इसके लिए शिक्षक को यह ज्ञान होना चाहिए कि छात्र को किस प्रकार की मूल्यांकन छूट दी जाए, जिससे छात्र को अधिकाधिक लाभ मिल सके।

यू0एस0में 1894 में हुए एक शोध के अनुसार विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों को उनकी जरूरत अनुसार निम्नलिखित छूट देना उचित माना गया है-

- अलग परीक्षण कक्ष
- ज्यादा समयावधि
- संकेतिक भाषा के अनुवादक
- कम्प्यूटर

मूल्यांकन छूट का वर्गीकरण-मूल्यांकन छूट को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

- वैकल्पिक मूल्यांकन (मूल्यांकन सामग्री में परिवर्तन)- इसके अन्तर्गत उपान्तरण जिसमें मूल्यांकन सामग्री की कुछ पदों को हटाकर नये पदों को सम्मिलित किया जाता है एवं अनुकूलन जिसमें सीमित सुधार द्वारा मूल्यांकन सामग्री को परिवर्तित कर मूल्यांकन हेतु अनुकूलित किया जाता है।

- अनुग्रहण- इसके अन्तर्गत तर्कसंगत ढंग से मूल्यांकन को प्रशासित किया जाता है जिसका मूल्यांकन के परिणामों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न: भाग 2

1. मूल्यांकन छूट कितने प्रकार की होती है?
2. अनुग्रहण को प्रभावित करने वाले कितने कारक हैं?
3. वैकल्पिक मूल्यांकन में मूल्यांकन सामग्री में परिवर्तन किया जाता है । (सत्य/असत्य)
4. तर्कसंगत ढंग से मूल्यांकन को प्रशासित किया जाता है :

क-अनुग्रहण में ख-उपांतरण में ग-अनुकूलन में घ-इनमें से कोई नहीं

18.7 सारांश

विशिष्ट सामान्य शिक्षा प्रणाली द्वारा शिक्षण देना कठिन है परन्तु शिक्षा प्राप्ति उनका भी मूलभूत अधिकार है, इसी को ध्यान में रखते हुए शिक्षा व्यवस्था में कुछ परिवर्तन आवश्यक है जिससे वह सामान्य छात्रों के स्तर की शिक्षा प्राप्त कर सके इसके लिये शिक्षण प्रणाली में विभिन्न प्रविधियों का प्रावधान किया गया है। इसमें सबसे प्रचलित प्रविधि मूल्यांकन छूट है जिसके अन्तर्गत अनुग्रहण उपान्तरण व अनुकूलन समाहित है। इनके द्वारा विशिष्ट छात्रों के मूल्यांकन को सरलीकृत किया गया है। इनके प्रयोग से पूर्व निम्नाकिंत बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है -

- मूल्यांकन छूट को प्रयोग करने का उद्देश्य
- शारीरिक अक्षमता की श्रेणी
- वांछित परिणाम
- प्रयुक्त मूल्यांकन छूटों का प्रभाव
- मूल्यांकन छूटों की अवधि
- मूल्यांकन छूटों की उपयोगिता

18.8 शब्दावली

अनुग्रहण- इस प्रकार की मूल्यांकन छूट में छात्रों द्वारा किये गये कार्य का मूल्यांकन विभिन्न ढंग से प्रशासित एवं प्रस्तुत किया जाता है।

Curriculum assessment guidelines for inclusion (2002)" **के अनुसार शिक्षा प्रणाली मूल्यांकन प्रणाली के विभिन्न स्वरूपों को खोजकर विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों के अधिगम को सरल बनाने हेतु प्रतिबद्ध है।**

अनुग्रहण- इस प्रकार की मूल्यांकन छूट में छात्रों द्वारा किये गये कार्य का मूल्यांकन विभिन्न ढंग से प्रशासित एवं प्रस्तुत किया जाता है।

18.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

भाग 1 :

14. मूल्यांकन का सामान्य अर्थ है – मूल्यों का अंकन करना।

15. अध्यापक निर्मित मूल्यांकन वह है, जिसमें अध्यापक स्वयं मूल्यांकन उपकरण का निर्माण करता है।

16. मूल्यांकन के तीन चरण हैं: (1) पूर्व मूल्यांकन (2) जारी मूल्यांकन (3) अन्तिम मूल्यांकन

भाग 2 :

1. मूल्यांकन छूट तीन प्रकार की होती है :

- **अनुग्रहण**
- अनुकूलन
- उपान्तरण (सुधार)

2. दो

3. सत्य

4. अनुग्रहण में

18.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Airasian, P. W. (1996). *Assessment in the classroom.* New York: McGraw-Hill.

- Beech, M. (1998). *Developing classroom assessment (Vol. 1-4).* Tallahassee, FL: Florida Department of Education.

- Beech, M., McKay, J. P., Frey, N., & Ward, T. (2004). *Dealing with differences:*
Strategies that work. (Replicable Workshop) Tallahassee, FL: Florida Department of Education.

- Bender, W. M. (2002). *Differentiating instruction for students with learning disabilities*. Thousand Oaks, CA: Corwin Press.

- Gronlund, N. E. (1988). *How to construct achievement tests* (4th ed.). Englewood Cliffs, NJ: Prentice Hall.

- Guskey, T. R. (2003, February). *How classroom assessments improve learning*. Educational Leadership, 6-11.

- Houston, D., & Beech, M. (2002). *Designing lessons for the diverse classroom: A handbook for teachers.* Tallahassee, FL: Florida Department of Education.

- Linn, R. L., & Gronlund, N. E. (2000). *Measurement and assessment in teaching* (8th ed.). Upper Saddle River, NJ: Merrill.

- Miller, S. P. (2002). *Validated practices for teaching students with diverse needs and abilities.* Boston: Allyn and Bacon.

- Popham, W. S. (1999). *Classroom assessment: What teachers need to know* (2nd ed.). Boston: Allyn and Bacon.

- Stiggins, R. J. (1999). *Assessment, student confidence, and school success.* Phi Delta Kappan, 81(3).

18.11 निबंधात्मक प्रश्न

1 मूल्यांकन से आप क्या समझते हैं? मूल्यांकन के विभिन्न प्रकारों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

2 विशिष्ट छात्रों को मूल्यांकन में किस प्रकार छूट दी जाती है ? विस्तृत वर्णन कीजिए।

इकाई-19 -वर्तमान परीक्षा प्रणाली (Current Examination System)

19.1 प्रस्तावना
19.2 उद्देश्य
19.3 परंपरागत परीक्षा प्रणाली
19.4 वर्तमान परीक्षा प्रणाली
5.4.1 वर्तमान परीक्षा प्रणाली की विशेषताएँ
5.4.2 वर्तमान परीक्षा प्रणाली की कमियाँ
19.5 परीक्षा सुधार हेतु प्रयास
5.5.1 सतत एवं व्यापक आकलन (CCA)
5.5.2 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या फ्रेमवर्क (NCF-1905)
5.5.3 शिक्षा के अधिकार अधिनियम-1909
19.6 सारांश
19.7 शब्दावली
198. स्वमूल्यंकित प्रश्नों के उत्तर
19.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
19.10 निबंधात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

आप जानते हैं कि किसी भी शिक्षा व्यवस्था में परीक्षाएँ जीवनी शक्ति का कार्य करती हैं। परीक्षाएँ, विशेष रूप से राज्य (बोर्डों) द्वारा ली जाने वाली सार्वजानिक परीक्षाएँ वस्तुतः शिक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग बन चुकी हैं। विद्यालयी स्तर पर भी परीक्षाएँ कराई जाती हैं, जिसमें रचनात्मक और योगात्मक आंकलन करके छात्रों को उनकी योग्यता का प्रमाण पत्र दिया जाता है। इन दो आंकलन का विस्तृत अध्ययन आप इकाई ..... में कर चुके हैं। विगत अनेक वर्षों से परीक्षा प्रणाली में सुधार किए जा रहे हैं क्योंकि परीक्षा प्रणाली में सुधार के पश्चात ही शैक्षिक प्रणाली में सुधार हो सकता है। अतः सभी शिक्षाशास्त्री इस बात पर ही सहमत हैं कि परीक्षाओं में आवश्यक सुधार करके शिक्षा प्रणाली को पुनर्जीवित किया जा सकता है। वर्तमान में पूर्व की अपेक्षा परीक्षाओं में बहुत परिवर्तन देखने को मिलते हैं। जैसे सेमेस्टर प्रणाली, सी.सी.ई.आदि। इनसे परीक्षा प्रणाली में तो सुधार अवश्य हुआ है लेकिन शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो रही है। आज भी छात्र अंक या प्रतिशत लाने के लिए ही शिक्षा प्राप्त रहा है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य तो छात्र को विद्या प्रदान करना है। आज का छात्र परीक्षा के भय में जी रहा है। इस इकाई में आप परम्परागत शिक्षा प्रणाली, वर्तमान परीक्षा प्रणाली की आलोचनात्मक समीक्षा, परीक्षा सुधार हेतु प्रयास (सी.सी.ई.,एन.सी.एफ-2005 तथा आर.टी.ई.-2009) का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

19.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- परंपरागत परीक्षा प्रणाली को समझ सकेंगे।
- वर्तमान परीक्षा प्रणाली की विशेषताओं एवं कमियों को समझ सकेंगे।
- सतत एवं व्यापक मूल्यांकन को स्पष्ट कर सकेंगे।
- परीक्षा के सन्दर्भ में एन.सी.एफ-2005 को स्पष्ट कर सकेंगे।
- परीक्षा के सन्दर्भ में आर.टी.ई.-2009 को स्पष्ट कर सकेंगे।

19.3 परंपरागत परीक्षा प्रणाली

- साधारणतः परीक्षाएँ शैक्षिक वर्ष के अंत में ली जाती हैं। अर्थात ये परीक्षाएँ सत्रांत प्रकृति (Terminal Nature) की होती हैं।

- परीक्षाओं की प्रकृति बाह्य होती है अर्थात अध्यापक अपने छात्रों की परीक्षा के मूल्यांकन में प्रत्यक्ष रूप से सहभागी नहीं होते हैं। कुछ विश्वविद्यालयों में आतंरिक मूल्यान्कन का भी प्रावधान किया जाता है।
- परीक्षाएँ प्राय: लिखित होती हैं। प्रयोगात्मक विषयों की परीक्षा ही मौखिक ली जाती है।
- प्रश्नपत्र में निबंधात्मक प्रश्नों की संख्या का अधिक प्रयोग है, जिसमें परीक्षार्थियों को विस्तृत उत्तर देने की छूट होती है।
- इन परीक्षाओं के आधार पर ही छात्रों का एक प्रमाण पत्र तैयार किया जाता है, जिस पर अंक और प्रतिशत दर्शाया जाता है और इन्हीं अंकों के आधार पर छात्र दूसरी कक्षा या विद्यालय या चयन परीक्षाओं तथा रोजगार के लिए योग्य हो जाता है।

समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा इस परंपरागत परीक्षा प्रणाली की आलोचना की गई। रैले आयोग ने सन 1902 में कहा था कि भारतीय शिक्षा में अध्यापन कार्य परीक्षा के अधीन है न कि परीक्षा अध्यापन के अधीन। सन 1929 में हर्टांग समिति ने भी शिक्षा पर जोर देने का विरोध किया था। 1948 में राधाकृष्णन आयोग ने भारतीय शिक्षा के ख़राब पक्षों में परीक्षा प्रणाली को भी सम्मिलित किया था। राधाकृष्णन आयोग ने तो सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए परीक्षा में सुधार को सर्वोच्च प्राथमिकता देने को कहा। मुदालियर आयोग (1952-54) तथा कोठारी आयोग (1964-66) ने भी परीक्षा सुधार के प्रश्न पर विचार किया तथा अनेक सुझाव दिए। सन 1986 में घोषित नई शिक्षा नीति में परीक्षा सुधार के प्रकरण को सम्मिलित किया गया और अनेक उपायों की चर्चा की गई। परीक्षाओं में अत्यंत दोषों को देखते हुए कई शिक्षाविदों ने परीक्षा प्रणाली को ही ख़त्म करने की बात कही, लेकिन अन्य किसी विकल्प के परीक्षाओं को पूर्ण रूप से ख़त्म करना संभव भी नहीं था। अत: परीक्षाओं में परिवर्तन की बात कही गई, जिसमें मूल्यांकन प्रक्रिया में सुधार करने पर जोर दिया गया। सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के द्वारा छात्रों का निरंतर अवलोकन किया गया लेकिन मूल्यांकन भी व्यापक प्रक्रिया है इसलिए वर्तमान में मूल्यांकन शब्द की जगह आंकलन शब्द का प्रयोग किया गया। सतत एवं व्यापक आंकलन के लिए CAB ने महत्वपूर्ण बिन्दुओं को हमारे सामने रखा। आज परीक्षा कई परिवर्तन तो देखने को मिल रहे हैं, लेकिन अभी भी छात्रों का लक्ष्य सिर्फ ग्रेड या प्रतिशत प्राप्त करना ही है। आज भी छात्र तनाव, अवसाद, निराशा तथा दबाव में जी रहा है। आइये अब वर्तमान परीक्षा प्रणाली के गुण दोषों पर चर्चा करते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न: भाग 1

1. परंपरागत शिक्षा प्रणाली की दो विशेषताएँ लिखिए।

19.4. वर्तमान परीक्षा प्रणाली:

कोठारी आयोग की सिफारिशों के अनुसरण में हमारे देश में 10+2 वाली शिक्षा प्रणाली लागू हुई। इसमें प्रथम वर्ष में तो सामान्य शिक्षा दी जाती है और अगले दो वर्ष छात्र अपने रूचि के विषय चुनता है। इस प्रकार प्रथम दस वर्ष की अवधि प्राथमिक, उच्च प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा में बँटी है और अगले दो वर्ष की अवधि उच्च माध्यमिक में। हमारे देश में शिक्षा व्यवस्था की संरचना इस प्रकार है- 10 + 2

प्राथमिक उच्च माध्यमिक

(1-5) प्राथमिक (9-10) उच्च माध्यमिक

(6-8) (11-12)

19.4.1 वर्तमान परीक्षा प्रणाली की विशेषताएँ

- सेमेस्टर प्रणाली : इस प्रणाली के अंतर्गत सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को छह-छह माह के कुछ खण्डों में विभक्त किया जाता है। प्रत्येक सेमेस्टर के पाठ्यक्रम का शिक्षण करने के उपरांत परीक्षा आयोजित की जाती है। इसमें शिक्षा सत्र एक वर्ष का न होकर छह महीने का होता है। छह माह के लिए पाठ्यक्रम को सुनियोजित किया जाता है। इस प्रकार एक वर्षीय पाठ्यक्रम में दो सेमेस्टर, द्विवर्षीय में चार और तीन वर्षीय में छह सेमेस्टर होते हैं। यह परीक्षा बाह्य या पूर्णतः आतंरिक या बाह्य-आतंरिक का मिलाजुला रूप हो सकती है। वर्तमान में स्नातक,तथा परास्नातक दोनों ही स्तर पर सेमेस्टर प्रणाली चल रही है।

  सेमेस्टर प्रणाली वार्षिक प्रणाली की कमियों को समाप्त करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। यह प्रणाली ऊर्ध्वमुखी गतिशीलता का अतिरिक्त लाभ प्रदान करती है। अगले सेमेस्टर में चले जाने के बाद भी छात्रों को अपने पिछले बकाया काम को पूरा करने की सुविधा रहती है। एक लाभ यह भी है कि छात्र अपनी गति के अनुसार अध्ययन कर सकते हैं। सेमेस्टर प्रणाली में समय कम होने के कारण छात्रों को निरंतर अध्ययन करना पड़ता है और वर्ष में एक ही बार होने वाली परीक्षाओं में व्यापक पाठ्यक्रम के बोझ से बच जाते हैं। निरंतर अध्ययन करने से उनमें विषयवस्तु की समझ के साथ-साथ आत्मविश्वास भी बढ़ता है। इसमें एक

सेमेस्टर का परिणाम आए बिना ही दूसरे सेमेस्टर में प्रवेश लिया जा सकता है। केवल अंतिम सेमेस्टर में बाध्यता हो सकती है।

- सतत और व्यापक आंकलन : एक वर्षीय परीक्षा प्रणाली में छात्रों के संज्ञानात्मक पक्ष का ही आंकलन किया जा रहा था। छात्र के भीतर और भी बहुत सी योग्यताएं होती हैं, जिनका आंकलन किया जाना आवश्यक है। शिक्षा का उद्देश्य छात्र का सर्वांगीण विकास है। अतः यह माना गया कि छात्र जब से विद्यालय परिसर में आता है तभी से उसका आंकलन आरम्भ हो जाता है। शिक्षक हर पल छात्र का आंकलन ही तो करते हैं। छात्र का अनुशासन, बोलने का तरीका, साथियों से व्यवहार, स्वच्छता, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेना, तथा अन्य विद्यालयी गतिविधियाँ हैं, जिसका हर पल आंकलन किया जाना आवश्यक है। सतत एवं व्यापक आंकलन प्रक्रिया अपनाए जाने के पीछे प्रेरक भावना यह है कि अध्यापक ही अपने छात्र को अच्छी तरह पहचानता है, और उसी के माध्यम से हम यह जान सकते हैं कि छात्र अपनी पहले वाली उपलब्धियों, अपने साथियों और अध्यापक द्वारा पूर्व निर्धारित संभावित उपलब्धि स्तर की तुलना में अब कैसी तरक्की कर रहा है? सतत एवं व्यापक आंकलन का विस्तृत अध्ययन आप इसी इकाई में आगे करेंगे।
- ग्रेड प्रणाली : पहले परीक्षा परिणाम में अंकों का योग करके प्रतिशत लिख दिया जाता था। ऐसा करने से जो छात्र .1 या .2 से प्रथम श्रेणी में आने से वंचित रह जाते थे तो वे हीन भावना का शिकार हो जाते थे। जैसे कोई छात्र 59.75% लाने के बावजूद भी प्रथम श्रेणी में नहीं आ सका तो वह अपने को हीन समझने लगता था, उस छात्र से जो 60% लाकर प्रथम श्रेणी में है। जरा से इस अंतर के कारण पहले वाले छात्र के परिणाम में द्वितीय श्रेणी लिख दिया जाता था। इसी अंतर को कम करने के लिए ग्रेड प्रणाली लागू की गई। नई ग्रेडिंग प्रणाली इस प्रकार CBSE बोर्ड में लागू की गई है।

शैक्षिक क्षेत्र (Scholastic Area)

अंक रेंज	ग्रेड	ग्रेड बिंदु
91-100	A1	10
81-90	A2	9
71-80	B1	8

गैर शैक्षिक क्षेत्र (Co-Scholastic Area)

ग्रेड	अंक रेंज
A	4.1-5.0
B	3.1-4.0
C	2.1-3.0
D	1.1-2.0
E	0.0-1.0

61-70	B2	7	
51-60	C1	6	
41-50	C2	5	
33-40	D	4	
21-32	E1	3	
00-20	E2	2	

- क्रेडिट-संग्रहण और क्रेडिट-अंतरण : दूरस्थ प्रणाली से शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र पाठ्यक्रम को क्रेडिटों द्वारा प्राप्त करते है। एक क्रेडिट 36 घंटे का होता है। जैसे B.Ed कार्यक्रम में A1 प्रश्नपत्र ..... क्रेडिट का है तो इसका अर्थ यह हुआ कि ..... । इससे छात्र अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार सीखते हैं । यह प्रणाली भारत के मुक्त विश्वविद्यालयों और राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय तक ही सीमित है।
- खुली पुस्तक परीक्षा : वर्तमान में नई धारणा विकसित हुई है कि परीक्षाएँ पुस्तक खोलकर करवाई जाएँ। इस परीक्षा के पीछे निहित तर्क है कि छात्रों में ज्ञान संचय के संकुचित दृष्टिकोण को समाप्त करने के लिए परीक्षा में रटने के स्थान पर बोध, चिंतन, मनन, विश्लेषण,संश्लेषण तथा समस्या समाधान आदि योग्यतायों के मापन को अधिक वरीयता देने की आवश्यकता है । इस परीक्षा के लिए प्रश्न पत्र बनाना टेढ़ी खीर साबित होगा। इसे व्यवहार में परिणत करना बहुत कठिन है।
- पुनर्मूल्यांकन और अंकित उत्तर पुस्तिकाओं का लौटाया जाना : कई लोगों का मानना है कि मूल्यांकन प्रक्रिया में जवाबदेही, विश्वसनीयता और पारदर्शिता तय करने के लिए छात्रों को उनकी उत्तर पुस्तिका लौटा दी जानी चाहिए । क्या यह विकल्प प्रशासनिक दृष्टि से संभव है ? विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जब परीक्षा केन्द्रों को लाखों की तादाद में परीक्षार्थियों के परीक्षा- परिणाम तैयार करने और भेजने आदि के कम में दिन रात जुटा रहना पड़ता है। हर छात्र चाहता है कि उसका

मूल्यांकन सही हो। अतः उत्तर पुस्तिका का मूल्यांकन पारदर्शिता से होना चाहिए ताकि उत्तर पुस्तिकाओं को लौटने की नौबत ही नहीं आए। पुनर्मूल्यांकन अलग है। यदि छात्र अंकों से संतुष्ट नहीं है तो वह पुनर्मूल्यांकन करवाता है।

19.4.2 वर्तमान परीक्षा प्रणाली की कमियाँ

- **रटना :** रटंत शिक्षा प्रणाली के कारण परीक्षा प्रणाली में मेहनतकश पृष्ठभूमि के छात्र-छात्राओं की जीवनदशाओं का कोई ख्याल नहीं रखा जाता है। यह उन छात्र-छात्राओं के बारे में नहीं सोचती, जो प्रतिदिन कई घंटे स्वतंत्र तौर पर या पारिवारिक रोजगार में लगातार अपने परिवार की आजीविका में सहयोग करते हैं। यह उन लड़कियों के बारे में नहीं सोचती जिनके कई घंटे दैनिक घरेलू कामकाज में निकाल जाते हैं और पढ़ने के लिए बहुत कम समय मिलता है। प्रयोगात्मक परीक्षाए होती हैं किन्तु उनका क्या हाल है, सभी अच्छी तरह से जानते हैं। साल भार कुछ जानकारियों और सूत्रों को अनुपयोगी ढंग से रटते रहना और अन्त में परीक्षा के कापी में उतार देना, यही इस परीक्षा व्यवस्था का पैमाना है। जो छात्र इस कार्य को जितने बेहतर ढंग से कर पाता है, वही सफल माना जाता है। भले ही अपनी जानकारियों का एक भी व्यावहारिक इस्तेमाल करने में वे कितने ही अक्षम क्यों न हो।
- **पक्षपात :** सत्रीय कार्य या प्रोजेक्ट कार्य में शिक्षक पक्षपात करते हैं। वे अपने पसंदीदा छात्र को अधिक अंक या ग्रेड देते हैं, जिससे अन्य छात्र अच्छा करते हुए भी पीछे रह जाते हैं और हीन भावना का शिकार हो जाते हैं।
- **भय तथा तनाव :** 'परीक्षा का बुखार' जिससे बहुत कम लोग ही बच पाते हैं। आज की परीक्षा प्रणाली से छात्र अभिप्रेरित नहीं होता बल्कि औसत छात्र तो इससे तनाव और दबाव में रहते हैं मनोवैज्ञानिक रूप से छात्र के ऊपर परीक्षा प्रणाली का नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। परीक्षाएँ छात्रों के भावी जीवनोपयोगी जीवन में प्रमुख भूमिका निभाती है, इसलिए भी छात्रों के मन में तनाव व भय बना रहता है। परिणाम यह होता है कि छात्र परीक्षाओं में केवल सफलता प्राप्ति हेतु कई प्रकार के साधन अपनाने लगते हैं।
- **सीखने से ज्यादा परीक्षा को महत्व :** आज भी छात्र और उसके अभिभावक अंको के पीछे भाग रहे हैं क्योंकि परीक्षा से प्राप्त परिणाम ही बालक के भावी जीवन में उसकी प्रगति के निर्धारक कारक होते हैं। इसलिए अभिभावक भी चाहते हैं कि येन-केन प्रकारेण उनका बालक अगली कक्षा में चला जाय। अतः अध्यापक भी अभिभावकों की इस इच्छा को पूरा करते हुए सिर्फ परीक्षा में आने वाले प्रश्नों को ही छात्रों को पढ़ाते हैं। उनका भी यही लक्ष्य होता है कि छात्र सर्वोच्च अंक प्राप्त कर

सकें। इस प्रकार सीखने से ज्यादा परीक्षा को अधिक महत्व दिया जाता है और 'पूर्ण अधिगम' का वास्तविक लक्ष्य अधूरा ही रह जाता है। अतः प्रयत्न यह होना चाहिए कि ऐसी स्वस्थ परंपरा विकसित की जाए जिसमें जो पढ़ाया गया हो उसका ही परीक्षण हो,न कि जो कुछ परीक्षा में पूछा जाना है, वह पढ़ाया जाए।

- विश्वसनीयता की कमी : कक्षा 12 की परीक्षा पास करने के पश्चात जब छात्र उच्च शिक्षा के लिए जाता है तो उसे कई प्रकार की प्रवेश परीक्षाओं के दावानल से होकर गुजरना पड़ता है। भारी भरकम फीस देने के बावजूद भी छात्र प्रवेश परीक्षा में सफल नहीं हो पाता है। यदि वह सफल भी हो जाता है तो उसे अपने मन का विषय नहीं मिल पाता है, जिससे छात्र मन मनोस कर रह जाता है। बालक जब से स्कूली शिक्षा में प्रवेश लेता है तब से ही परीक्षा का यह 'बुखार' अपने कन्धों पर लेकर चलता है और पूरे शैक्षिक कैरियर में उसे ढोता चलता है।
- कुप्रबंधन : जब से परीक्षा में नई तकनीकी का प्रयोग होने लगा है, तब से परीक्षा में तेजी तो आई लेकिन लापरवाही और गड़बड़ी भी देखने को मिल रही है। जैसे अक्सर समाचार पत्र में प्रकाशित किया जाता है कि अमुक विषय का पर्चा लीक हो गया, उत्तर पुस्तिकाओं में गड़बड़ी पाई गई, किसी का रोल न. है तो नाम गायब, नाम है तो रोल न. गायब, परीक्षा परिणाम गलत घोषित किया आदि-आदि।
- मूल्यांकन तकनीकी का सीमित अनुप्रयोग : अधिकतर अध्यापक मूल्यांकन में सिर्फ खाना पूर्ति करते हैं। वे CCE रजिस्टर भरकर अपना कर्तव्य पूरा कर देते हैं। मूल्यांकन की नई-नई तकनीकों का प्रयोग नहीं करते हैं। यदि वे मूल्यांकन की बहुविध तकनीकों का प्रयोग करें तो परीक्षाएँ वैध और विश्वसनीय मानी जाएँगी।
- समय की बाध्यता : प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तरों वाली शिक्षा व्यवस्था में छात्रों को क्रमशः 10 और 12 वर्ष का समय लगाना पड़ता है। शिक्षा के लिए इतना लंबा समय और परीक्षा सिर्फ तीन घंटे की, वह भी सीमित मात्रा में पूछे गए प्रश्न। ऊपर से परीक्षक ने सिर्फ तीन मिनट में मूल्यांकन करके छात्र की मेहनत को अंकों में समेट कर उसे होशियार या कमजोर की श्रेणी में रख दिया तो छात्र के साथ कितनी नाइंसाफी है। इससे पूरी परीक्षा प्रणाली पर बड़ा सा प्रश्न चिह्न लगता है। छात्र ने वर्ष भर जो कार्य किए उसका आंकलन सिर्फ इस तीन घंटे और तीन मिनट में ? सच में यहाँ पर तो पूरी शिक्षा व्यवस्था पर गंभीर प्रश्न चिहन लग जाता है।
- प्रश्न पत्रों का निम्न स्तर : किसी भी शिक्षा प्रणाली में प्रश्न पत्र महत्वपूर्ण घटक होता है। यद्यपि प्रश्न पत्रों के निर्माण, स्वरुप और विषयवस्तु के प्रबंधन में गंभीर चिंतन

और विचारविमर्श के फलस्वरूप कई प्रकार के सुधार किए जा चुके हैं, फिर भी इससे विश्वसनीयता नहीं आ पाती है । अंक देने की प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है, ताकि उत्तर पुस्तिकाओं में अंकन पद्यति की वर्तमान व्यक्तिनिष्ठता को कम से कम किया जा सके।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. सतत एवं व्यापक आकलन क्या है ?
2. वर्तमान परीक्षा प्रणाली की कोई दो कमियाँ लिखिए।
3. ग्रेड प्रणाली को क्यों लागू किया गया है ?
4. हमारे देश में 10+2 शिक्षा व्यवस्था किस आयोग की सिफारिश पर लागू हुई

19.5 परीक्षा सुधार हेतु प्रयास :

हमारे देश में परीक्षा से सम्बंधित समय-समय पर कई सुधार हुए हैं । मुदालियर आयोग ने तनाव को कम करने के लिए आन्तरिक आकलन व वस्तुनिष्ठ तरह की परीक्षाएँ कराने की बात कही। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन एवं सेमेस्टर प्रणाली को लागू करने की बात कही । इस प्रकार चाहे कोई भी आयोग हो उन सभी ने विभिन्न कार्यशालाओं व विचारगोष्ठियों में परीक्षाओं में सुधार करने के लिए अनेक सुझाव दिए हैं। वास्तव में परीक्षा-सुधार के दो मुख्य उद्देश्य हैं – प्रथम परीक्षाओं में सुधार करने के लिए अनेक उपलब्धि का मापन करने वाले विश्वसनीय तथा वैध साधन के रूप में स्थापित करना । द्वितीय, परीक्षाओं को शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया को अधिक प्रभावशाली बनाने के साधन के रूप में प्रतिष्ठित करके इनके शैक्षिक महत्व को बढ़ाना । अतः परीक्षा सुधारके द्वारा निम्नांकित उद्देश्यों कि प्राप्ति की संकल्पना निहित रहती है –

1. परीक्षक आत्मनिष्ठता को समाप्त करना ।
2. रटंत-स्मरण पर दिए जा रहे बल को समाप्त करना ।
3. परीक्षा परिणामों की तर्कसंगत व्याख्या करना ।
4. परीक्षा परिणामों का प्रभावशाली ढंग से उपयोग करना ।
5. शिक्षण अधिगम सामग्री में सुधार करना ।

19.5.1सतत एवं व्यापक आकलन(CCA) :

आज छात्रों को सिर्फ पढ़ाने या गणितीय योग्यता को प्राप्त करने की ही आवश्यकता नहीं है, वरन उन कौशलों की आवश्यकता है जिनके द्वारा वह बदलती हुई इस दुनिया में अपने

को ढाल सके। उनमें गंभीर रूप से सोचने, विश्लेषण करने तथा अनुमान लगाने के कौशलों का विकास करना जरूरी है। अत: नए कौशलों के विकास के लिए नए अधिगम उद्देश्य बनाए जाते हैं और इन्हीं नए अधिगम उद्देश्यों ने आकलन और अनुदेशन के बीच गहरा सम्बन्ध स्थापित किया है।

प्रत्येक शैक्षिक कार्यक्रम का लक्ष्य विद्यार्थी के व्यक्तित्व का समग्र विकास करना होता है। इसलिए विद्यालय में दिए जाने वाले शिक्षण संबंधी अनुभवों से अपेक्षित लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता मिलनी चाहिए। अध्यापन अधिगम की प्रक्रिया में अनुदेशात्मक उद्देश्य, अध्यापक व विद्यार्थी महत्वपूर्ण होते हैं। अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षक छात्रों का निरंतर आकलन करते रहता है। आकलन क्या है? आकलन एक रचनात्मक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा शिक्षक को यह ज्ञात होता है कि विद्यार्थी का उचित अधिगम हो रहा है या नहीं। इसका उद्देश्य निदानात्मक तथा शिक्षण-अधिगम कार्यक्रम में सुधार करना, छात्रों व अध्यापकों को पृष्ठपोषण प्रदान करना तथा छात्रों की अधिगम संबंधी कठिनाइयों को ज्ञात करना होता है। यह निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। आकलन, अनुदेशन का महत्वपूर्ण भाग है। इससे हमें इन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त होते हैं – क्या हम वैसा ही शिक्षण कर रहे हैं, जैसा हम सोचते थे? क्या छात्र वैसा ही सीख रहे हैं, जैसा कि वे अधिगम के लिए सोचते थे?क्या विषयों को पढ़ाने के और भी तरीके हैं, जिससे अच्छा अधिगम हो सके?

व्यापक आकलन : अध्यापक छात्रों का निरंतर आकलन करता रहता है। वे कौन से क्षेत्र हैं, जिनका आकलन अध्यापक द्वारा किया जाता है? विद्यालय में छात्रों के व्यक्तित्व के विकास संबंधी लगभग सभी क्षेत्रों को शामिल किया जाता है। इसमें शैक्षिक और गैर शैक्षिक क्षेत्र दोनों ही शामिल हैं। अर्थात आकलन व्यापक स्तर पर होना चाहिए। शैक्षिक क्षेत्र वह है जिसका सम्बन्ध विषयों के ज्ञान, अवबोध तथा किसी भी स्थिति में उन्हें उपयोग करने संबंधी योग्यता से है। गैर शैक्षिक क्षेत्र वह है जिसका सम्बन्ध छात्र की रुचियों, अभिवृत्तियों, वैयक्तिक और सामाजिक गुणों तथा स्वाथ्य से है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के 1992 में संशोधित प्रलेख में भी यह उल्लिखित किया गया है कि आकलन में शैक्षिक विषयो और गैर- शैक्षिक क्षेत्रों के सभी अधिगम अनुभवों को शामिल किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT) ने विद्यालयी आकलन के लिए स्कीमें तैयार की हैं, जिसका एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है :

छात्र	विषय	आकलन की तकनीकें	आकलन के साधन

शैक्षिक	पाठ्येत्तर कार्यकलाप -ज्ञान -अवबोध -ज्ञान का प्रयोग, -कौशल आदि	लिखित, मौखिक या प्रायोगिक	प्रश्नपत्र,निदान परीक्षण,मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण,दत्त कार्य, प्रश्नावली
गैर शैक्षिक	1. शारीरिक स्वाथ्य -स्वाथ्य संबंधी मूल ज्ञान -शारीरिक स्वच्छता	स्वास्थ्य जाँच, शिक्षक द्वारा प्रेक्षण	निर्धारण मापनी,डाक्टर के अपने उपस्कर
	2. आदतें -स्वास्थ्य संबंधी आदतें, -अध्ययन संबंधी आदतें, -कार्य संबंधी आदतें	प्रेक्षण	वृत्तान्त अभिलेख निर्धारण मापनी जाँच सूची
	3. अभिरुचियाँ -साहित्यिक अभिरुचि -कलात्मक अभिरुचि -वैज्ञानिक अभिरुचि -संगीतिक अभिरुचि -सामाजिक अभिरुचि	प्रेक्षण	वृत्तान्त अभिलेख निर्धारण मापनी जाँच सूची
	4. अभिवृत्तियाँ -अध्ययन के प्रति अभिवृत्ति -शिक्षकों के प्रति अभिवृत्ति -सहपाठियों के प्रति अभिवृत्ति -विद्यालय की संपत्ति के प्रति अभिवृत्ति	प्रेक्षण	वृत्तान्त अभिलेख निर्धारण मापनी जाँच सूची

	5. चरित्र निर्माण संबंधी गुण -सफाई -सत्यप्रियता -परिश्रमी -समानता -सहयोग	प्रेक्षण	वृत्तान्त अभिलेख निर्धारण मापनी जाँच सूची
	6. पाठ्य सहगामी क्रियाओं में भाग लेना -क्रीडा, खेलकूद, व्यायाम आदि -साहित्यिक और वैज्ञानिक गतिविधियाँ - सांस्कृतिक,सामाजिक और सामुदायिक सेवा संबंधी कार्यकलाप	प्रेक्षण	वृत्तान्त अभिलेख निर्धारण मापनी जाँच सूची

19.5.2 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या फ्रेमवर्क(NCF- 2005) :

भारत में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCF) का निर्माण करने वाली संस्था NCERT है ।यह संस्था समय-समय पर इसकी समीक्षा भी करती है । NCF-2005 के बनने का कार्य NCERT के तत्कालीन निदेशक प्रो. कृष्ण कुमार के नेतृत्व में संपन्न हुआ । इसमें शिक्षा को बाल्केंद्रित बनाने, रटंत प्रणाली से निजात पाने, परीक्षा सुधार करने और जेंडर, जाति, धर्म आदि आधारों पर होने वाले भेदभाव को समाप्त करने की बात कही गई है। शोध आधारित दस्तावेज तैयार करने के लिए 21 राष्ट्रीय फोकस समूह बने जो विभिन्न विषयों पर केंद्रित थे । इसके मार्गदर्शी सिद्धांत इस प्रकार हैं :-

- **ज्ञान को बाहरी जीवन से जोड़ा जाय ।**
- **पढ़ाई को रटंतप्रणाली से मुक्त किया जाय ।**
- **पाठ्यचर्या पाठ्यपुस्तक केंद्रित न रह जाए।**
- **कक्षा कक्ष को गतिविधियों से जोड़ा जाय ।**

- राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति आस्थावान विद्यार्थी तैयार हों।

NCF-2005 के तीसरे अध्याय में आकलन और मूल्यांकन को स्पष्ट किया गया है, जिसमें निम्नांकित बिंदु शामिल हैं।

आकलन और मूल्यांकन – भारतीय शिक्षा में मूल्यांकन शब्द परीक्षा तनाव और दुश्चिंतासे जुड़ा हुआ है। हमें परीक्षा के उन दुष्प्रभावों की चिंता है जो सीखने सिखाने की प्रक्रिया को सार्थक बनाने और बच्चों के लिए आनदंदायी बनाने के प्रयासों पर पड़ते हैं। एक अच्छी मूल्यांकन और परीक्षा पद्धति सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन सकती है, जिसमें छात्र और शिक्षा तंत्र दोनों को ही विवेचनात्मक और आलोचनात्मक प्रतिपुष्टि से फायदा हो सकता है। यह भाग मूल्यांकन और आकलन को संबोधित करते हुए शुरु होता है क्योंकि ये सीखने सिखाने की प्रक्रिया के लिए पाठ्यचर्या के भाग की तरह प्रासंगिक होते हैं।

आकलन का उद्देश्य- वर्तमान में चल रही मूल्यांकन की प्रक्रिया जो कुछ ही योग्यताओं को मापती और आकलित करती है, बिलकुल ही अपर्याप्त है और शिक्षा के उद्देश्यों की ओर प्रगति की सम्पूर्ण तस्वीर नहीं खींचती है। आकलन का उद्देश्य निश्चय ही सीखने सिखाने की प्रक्रियाओं एवं सामग्री का सुधार करना है और उन लक्ष्यों पर पुनर्विचार करना है जो स्कूल के विभिन्न चरणों के लिए तय किए गए हैं। दैनिक गतिविधियों और अभ्यास के उपयोग से अधिगम का बहुत ही अच्छा आकलन हो सकता है। विश्वसनीय आकलन एक रपट देता है या दूसरे विद्यालय,शैक्षिक संस्थानों समुदाय और भावी मालिकों को अधिगम की गुणवत्ता और सीमा के बारे में जानकारी मिल जाती है।

विद्यार्थियों का आकलन- बच्चे की अधिगम की गुणवत्ता और विस्तार पर लिखी गए एक सार्थक रपट को समावेशी होना चाहिए। हमें ऐसी पाठ्यचर्या की आवश्यकता है, जिसमें सृजनात्मकता, नवप्रवर्तकता और बालक का सम्पूर्ण विकास हो। ऐसे में पाठ्यपुस्तक आधारित अधिगम और रटे हुए तथ्यों को जांचने वाले परीक्षण दोनों ही बेकार हैं।

शिक्षण के क्रम में आकलन- प्रगति पत्र तैयार से शिक्षा को अपने प्रत्येक विद्यार्थी के बारे में यह सोचने का मौका मिलता है कि उसने सत्र के दौरान क्या सीखा और किस क्षेत्र में उसको अधिक मेहनत करने की जरूरत है। ऐसे रिपोर्ट कार्ड को लिखने के लिए शिक्षक को प्रत्येक छात्र के बारे में सोचना होगा और प्रतिदिन के शिक्षण के दौरान उस पर ध्यान देना होगा। इसके लिए विशिष्ट परीक्षाओं की जरूरत नहीं है।

पाठ्यचर्या के वे क्षेत्र जो अंकों के लिए जांचे नहीं जा सकते – पाठ्यचर्या के सभी विषय परीक्षा द्वारा नहीं जांचे जा सकते, बल्कि ऐसा करना तो पाठ्यचर्या के उन क्षेत्रों के सीखने

की प्रकृति के विपरीत होगा। इसमें कार्यानुभव, योग,संगीत एवं कला शामिल हैं। 'अंक' दिए बिना भी बच्चों का इन क्षेत्रों में विकास के लिए आकलन किया जा सकता है। भागीदारी, रुचि और जुड़ाव से शिक्षक यह पता लगा सकता है कि छात्रों ने इन क्षेत्रों में कितना सीख लिया है।

आकलन की रूपरेखा और उसका संचालन- आकलन और परीक्षाओं को विश्वसनीय होना चाहिए और अधिगम को मापने के वैध तरीकों पर आधारित होना चाहिए। जब तक परीक्षाए बच्चों की पाठ्यपुस्तकीय ज्ञान को याद करने की क्षमताओं का परीक्षण करती रहेंगी, तब तक पाठ्यचर्या को सीखने की तरफ मोड़ने के सभी प्रयास विफल होते रहेंगे। परीक्षाए ये जन पाएं कि बच्चों ने क्या सीखा और उस ज्ञान को समस्या सुलझाने और व्यवहार में लाने की क्षमता को जाँच पाए।ऐसे प्रश्नों को भी इस्तेमाल करना चाहिए जिनका कोई एक उत्तर न हो और जो छात्र के समक्ष एक चुनौती के रूप में हो। शिक्षकों को अच्छे प्रश्न पत्र बनाने के लिए समय- समय पर प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

स्व-आकलन और प्रतिपुष्टि- विद्यार्थियों की मौजूदगी में की गई जाँच व सुधार उन्हें इस तरह की प्रतिपुष्टि देती है कि उन्होंने क्या सही किया,क्या गलत और क्यों? ऐसी प्रक्रियाएँ परीक्षाओं के डरावने और निर्णायक गुण को भी दूर कर देती हैं और बच्चों को सक्षम बनाती है कि वे अपनी गलतियों को समझे और उनसे सीखे। न केवल अधिगम के परिणाम बल्कि अधिगम के अनुभवों का भी मूल्यांकन होना चाहिए। बच्चे अपने अधिगम अनुभवों पर बड़ी खुशी खुशी टिप्पणी करते हैं। इससे उनमें स्व- आकलन की क्षमता विकसित होती है, जो 'सीखने के लिए सिखाने' की खातिर जरूरी होता है।

वे क्षेत्र जिनके बारे में नए सिरे से सोचने की आवश्यकता है – पाठ्यचर्या के कई क्षेत्र हैं, जिनमें आकलन किया जा सकता है। जैसे नाट्य कार्यानुभव एवं हस्तकला। इनके आकलन के लिए हमारे पास कोई विश्वसनीय उपकरण नहीं है अतः इन क्षेत्रों में नए सिरे से सोचने की आवश्यकता है।

विभिन्न चरणों में आकलन- कक्षा 1 व 2 में गतिविधि को देखकर ही मूल्यांकन होना चाहिए। कक्षा 3- 8 तक छोटी-छोटी परीक्षाएँ लेकर मूल्यांकन होना चाहिए। परीक्षाएँ डरावनी नहीं होनी चाहिए। कक्षा 7 से सत्रीय परीक्षाएँ होनी चाहिए जब छात्र बड़े हिस्से पढ़ने के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार हों। कक्षा 9-12 में पाठ्यचर्या के ज्ञान आधारित क्षेत्रों के लिए आकलन, परीक्षाओं और परियोजनाओं की रिपोर्ट पर आधारित हो सकता है साथ ही छात्रों का स्व- आकलन भी शामिल हो।

अध्याय 5 में परीक्षा सुधार में 'शिक्षा बिना बोझ के' में कहा गया है कि दसवीं और बारहवीं के अन्त में होने वाली परीक्षा की इस दृष्टि से समीक्षा की जानी चाहिए कि अभी के पाठ आधारित और प्रश्नोत्तरी प्रकार की परीक्षा को बदल दिया जाय क्योंकि इससे तनाव का स्तर काफी बढ़ जाता है। असफलता की ऊँची दर, विशेषकर ग्रामीणों, गरीबों, सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के बच्चों में जिस तरह से देखने को मिलती है, उससे लगता है कि सम्पूर्ण मूल्यांकन और परीक्षा पद्धति पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। मौखिक परीक्षा, समूह कार्य, खुली पुस्तक परीक्षा लचीली सीमा रहित परीक्षा को देश भर में प्रायोगिक तौर पर लागू किए जाने की आवश्यकता है। इन नवाचारों का फायदा यह है कि वे परीक्षाओं को स्मृति जाँच से हटाकर व्याख्या, विश्लेषण और समस्या समाधान करने जैसी उच्चतर क्षमताओं की जाँच की ओर ले जा सकेंगे।

19.5.3 शिक्षा का अधिकार अधिनियम - 2009

RTE-2009, 6-14 वर्ष के बच्चे के लिए गुणवत्तापूर्ण और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान है, जिससे ज्ञान, कौशल और मूल्यों से लैस करके उन्हें भारत का प्रबुद्ध नागरिक बनाया जा सके। UNESCO की शिक्षा के लिए वैश्विक मानिटरिंग 2010 के अनुसार "लगभग 135 देशों ने संविधान में शिक्षा को अनिवार्य कर दिया है तथा मुफ्त एवं भेदभाव रहित शिक्षा सबको देने का प्रावधान किया है" ।12 दिसंबर 2002 को संविधान में 86 वां संशोधन किया गया है और इस संशोधन में शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया गया है। इस अधिनियम का सर्वाधिक लाभ श्रमिकों के बच्चों, बाल मजदूरों, प्रवासी बच्चों, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों या फिर ऐसे बच्चों को, जो सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भौगोलिक, भाषाई या लिंग कारकों की वजह से वंचित बच्चों में शामिल हैं। परीक्षा के लिए RTE में स्पष्ट किया गया है :

- प्राथमिक स्तर पर पढ़ाई के दौरान किसी भी बच्चे की परीक्षा नहीं ली जाएगी,जब तक वह स्तर पूरा ना कर लिया जाए।
- प्राथमिक स्तर पूरा करने के बाद परीक्षा आयोजित होगी और बच्चों को सम्बंधित विद्यालय द्वारा प्रमाण पत्र उपलब्ध कराया जाएगा।
- नो डिटेंशन पालिसी के तहत कक्षा 8 तक किसी भी बच्चे को फेल नहीं किया जाएगा। (RTE- 30(1)) इस पालिसी पर शिक्षा की सबसे बड़ी सलाहकार समिति केब (Central Advisory Board of Education) ने सरकार से सिफारिश की है कि फैसला राज्यों पर छोड़ दिया जाए कि पाँचवीं कक्षा से वह इस नीति का पालन करना चाहते हैं या नहीं। चौथी कक्षा तक यह अनिवार्य बनी रहेगी।

स्वमूल्यांकित प्रश्न : भाग 2

CCA और सेमेस्टर प्रणाली लागू करने की बात कब कही गई ?

NCF-2005 के सिद्धांत क्या है ?

RTE-2009 का लाभ किन बच्चों को मिल रहा है?

19.6 सारांश

शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग परीक्षा प्रणाली है। विगत अनेक वर्षों से परीक्षा प्रणाली में सुधार किए जा रहे हैं। परंपरागत परीक्षा प्रणाली को यदि हम देखें तो तब दो समय ही परीक्षाएँ ली जाती थी, जिन्हें अर्द्धवार्षिक और वार्षिक परीक्षाएँ कहा जाता था। तब छात्रों पर परीक्षा का बड़ा दबाव रहता था। क्योंकि एक वर्ष में ही मोटी- मोटी किताबों से ही सिर्फ पांच प्रश्न पूछकर छात्र की योग्यता का आकलन किया जाता था। धीरे-धीरे शिक्षाशास्त्रियों के मत पर यह निष्कर्ष निकला गया कि यह परीक्षाएँ छात्र के केवल ज्ञानात्मक पक्ष को ही सबल बना रही है, अन्य पक्षों का नहीं। अतः परीक्षाओं में बदलाव की बात को स्वीकार किया गया। कोठारी आयोग की सिफारिशों के आधार पर हमारे देश में 10+2 वाली शिक्षा प्रणाली लागू हुई । वर्तमान में परीक्षाओं के लिए CCA,CBM, सेमेस्टर प्रणाली, ग्रेड प्रणाली, पुनर्मूल्यांकन आदि लागू किए गए हैं। परीक्षाओं में सुधार के लिए NCF-2005 में कहा गया कि ज्ञान को बाहरी जीवन से जोड़ने की आवश्यकता है। RTE-2009 में कहा गया कि नो डिटेंशन पालिसी के तहत किसी भी बच्चे को कक्षा 8 तक फेल नहीं किया जाएगा। इतना सुधार करने के बाद भी आज का छात्र तनाव में जी रहा है। परीक्षाएँ आज भी उसके लिए भय और दबाव का सबब बन चुकी हैं। हम छात्र को इस भय से दूर क्यों नहीं कर पा रहे हैं ?

19.7 शब्दावली

NCF-2005 : राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (National Curriculum Framwork) का निर्माण NCERT द्वारा किया जाता है तथा समय समय पर इसकी समीक्षा भी करती है।

CCA: सतत एवं व्यापक आकलन (continuous and comprehensive assesment) अध्यापक छात्रों का निरंतर आकलन करता है। शैक्षिक और गैर शैक्षिक दोनों ही क्षेत्रों में छात्र का आकलन किया जाता है।

CBM: पाठ्यचर्या आधारित मूल्यांकन (Curriculum Based Measurment)। CBM शिक्षकों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली वह विधि है, जिससे वे छात्र के बुनियादी शैक्षिक क्षेत्रों जैसे- गणित, पढ़ना, लिखना तथा वर्तनी में उनकी प्रगति का पता लगाते हैं।

19.8 स्वमूल्यंकित प्रश्नों के उत्तर

भाग 1 :

9. परीक्षाएँ प्रायः लिखित होती हैं। प्रयोगात्मक विषयों की परीक्षा ही मौखिक ली जाती है।
10. प्रश्नपत्र में निबंधात्मक प्रश्नों की संख्या का अधिक प्रयोग है, जिसमें परीक्षार्थियों को विस्तृत उत्तर देने की छूट होती है।

भाग 2 :

1. छात्र जब से विद्यालय परिसर के अंदर प्रवेश करता है तभी से उसका आकलन आरम्भ हो जाता है। छात्र का निरंतर और उसके सभी पक्षों का आकलन करना सतत एवं व्यापक आकलन कहलाता है।
2. भय तथा तनाव।
   सीखने से ज्यादा परीक्षा को महत्व।
3. पहले कोई छात्र 59.75% लाने के बावजूद भी प्रथम श्रेणी में नहीं आ सका तो वह अपने को हीन समझने लगता था, उस छात्र से जो 60% लाकर प्रथम श्रेणी में है। जरा से इस अंतर के कारण पहले वाले छात्र के परिणाम में द्वितीय श्रेणी लिख दिया जाता था। इसी अंतर को कम करने के लिए ग्रेड प्रणाली लागू की गई।
4. कोठारी आयोग

भाग 3 :

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति में
2. NCF-2005 के सिद्धांत:
   - ज्ञान को बाहरी जीवन से जोड़ा जाय।
   - पढ़ाई को रटंतप्रणाली से मुक्त किया जाय।
   - पाठ्यचर्या पाठ्यपुस्तक केंद्रित न रह जाए।
   - कक्षा कक्ष को गतिविधियों से जोड़ा जाय।
   - राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति आस्थावान विद्यार्थी तैयार हों।
3. RTE-2009 का सर्वाधिक लाभ श्रमिकों के बच्चों, बाल मजदूरों, प्रवासी बच्चों, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों या फिर ऐसे बच्चों को, जो सामाजिक, सांस्कृतिक,

आर्थिक, भौगोलिक, भाषाई या लिंग कारकों की वजह से वंचित बच्चों में शामिल हैं,उन्हें मिलेगा।

19.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- शर्मा महेश,&महरोत्रा,ममता,(2011), शिक्षा का अधिकार, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, ISBN-978-81-7315-931-2
- www.google.com- RTE-2009, current examination system
- गुप्ता,अल्का,गुप्ता, बी.एस.पी, दूरस्थ शिक्षा, शारदा पुस्तक भंडार, इलाहाबाद।
- IGNOU, ES-333, शैक्षिक मूल्यांकन,अध्येता मूल्यांकन।

19.10 निबंधात्मक प्रश्न

3 वर्तमान परीक्षा प्रणाली की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।

4 मान लीजिए कि आप कक्षा 8 को विज्ञान विषय पढ़ा रहे हैं। आप अपने छात्रों का सतत एवं व्यापक आकलन कैसे करेंगे। उदाहरण सहित समझाइए।

5 परीक्षा सुधार के लिए NCF-2005तथा RTE-2009 की विस्तृत व्याख्या कीजिए।